ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि

वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 27 10 1976 पुष्प 34 महाराजा हनुमान की जन्म कथा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र.ा वेदवाणी में उस मेरे देव अथवा प्रभु की आभा का वर्णन किया जाता है। जो संसार का नियन्ता है अथवा निर्माण करने वाला है। आज हम उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसकी आनन्दमयी महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे।

आज का हमारा प्रारम्भ का वेदमन्त्र यह उच्चारण करता चला जा रहा था कि परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान है अथवा उसका जो विज्ञान है वह अनन्तत माना गया है। उसको कोई मानव बेटा! सीमाबद्ध नहीं कर सका। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में ऋषि मुनि विराजमान होकर प्रायः अनुसन्धान करते रहे हैं और एक एक वाक्य पर बहुत ऊँची उड़ान और नितान्तता में उनका विचार रहा है परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के अब तक वर्तमान काल तक कोई भी मानव ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके।

पुरातन काल में बेटा! वेद का ऋषि अपनी वाक् शक्ति के द्वारा उड़ान उड़ने लगता है परन्तु वह उड़ान उड़ता हुआ मानो लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने लगता है अथवा वो ऋत और सत् में रमण करने लगता है विचारता है ऋतश्मचम् व्रेह वृतं देवाः यह जो ऋत और सत् से गुथा हुआ यह ब्रह्माण्ड है जिसमें ऋत अपना कार्य कर रहा है और सत् अपने प्रतिनिधित्व को धारण कर रहा है। जब बेटा! वेद का ऋषि यह उड़ान उड़ने लगा कि इस ऋत और सत को जानना चाहते हैं तो ऋत और सत के सम्बन्ध में चिन्तन करते हुए वह लोक लोकान्तरों के ऊपर चिन्तन करने लगा, विचारने लगा कि यह जो नाना प्रकार का लोक लोकान्तरवाद है मानो यह क्या है? एक दूसरे के गर्भ में बेटा! एक दूसरे लोक की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगी। एक दूसरे के मण्डल एक दूसरे के मण्डल में मानो उसके गर्भ में ओत प्रोत हुआ यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगा। मेरे

प्यारे! जैसे पृथ्वी, मण्डल हैं, यह सूर्य के गर्भ में दृष्टिपात आने लगा और सूर्य बृहस्पति के गर्भ में और बृहस्पति आरुणि के गर्भ में और आरुणि ध्रुव के गर्भ में और ध्रुव जेष्ठाय नक्षत्र के गर्भ में और जेष्ठाय नक्षत्र देखो, नाना स्वाति नक्षत्रों में स्वाति रोहिणी में और रोहिणी भरणी में और भरणी मुनिवरों! देखो, वृत केतुओं में और वृतकेतु मुनिवरों! देखो, पुनर्वसुओं में और पुनर्वसु मेरे प्यारे! देखो, और भी नाना लोक लोकान्तरों में तो विचार विनिमय क्या वेद का ऋषि जब यह चिन्तन करने लगा उड़ान उड़ने लगा तो बेटा! यह ब्रह्माण्ड एक दूसरे में ओत प्रोत होता दृष्टिपात आने लगा जैसे मुनिवरों! देखो, माता के गर्भस्थल में मानो माता के पुत्र का निर्माण हो रहा है। परन्तु वो माता के गर्भ में निर्माण हो रहा है उसकी कृतिभा बन रही है मानो नाना अंगों उपांगों का निर्माण हो रहा है वो निर्माण माता के गर्भ स्थल में हो रहा है परन्तु वो वाल्य जिसको हम मानव कहते हैं पुरुष कहते हैं वो माता के गर्भ में ओत प्रोत है। और माता मानो देखो, प्रकृति के तथ्यों में ओतप्रोत है और प्रकृति बेटा! ब्रह्म के गर्भ में ओत प्रोत हो रही है तो परिणाम क्या मुनिवरों! देखो, यह ब्रह्माण्ड एक दूसरे में दृष्टिपात आ रहा है वहाँ एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र मानो उसका सहकारी बना हुआ है। एक मानव दूसरे मानव का सहकारी बना हुआ है परिणाम क्या मानो यह ब्रह्माण्ड एक दूसरे से गुंथा हुआ है तो आओ मेरे प्यारे! मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें इस सम्बन्ध में उच्चारण नहीं करूंगा। ये गम्भीर विषय बन जाते हैं। गम्भीर वाक्यों का विश्लेषण करना हमारे लिए तो बेटा! वास्तव में तो सौभाग्य है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र और ही कुछ कह रहा है। बेटा! वेद के एक एक वाक्य पर मानो परम्परागतों से टिप्पणियां करता चला अया है अथवा विचार विनिमय करता चला आया है। आज ही नहीं, बहुत परम्परागतों से नाना प्रकार की आकाश गंगाएं दृष्टिपात आती रहती हैं। मानो निहारिकाएं उसके गर्भ में ओत प्रोत हैं। एक निहारिका एक दूसरी में ओत प्रोत होती दृष्टिपात होती हैं।

एक आकाश गंगा दूसरी आकाश गंगा में ओत प्रोत होती दृष्टिपात होती है। परन्तु मेरे देव का यह ब्रह्माण्ड बेटा! गतिशील हो रहा है। मानो यह अपने अपने आसन पर नृत्य कर रहा है। ब्रह्माण्ड एक लोक बेटा! एक अपने आसन पर नृत्य कर रहा है। परन्तु

इसी प्रकार ये मानव भी अपने अपने आसनों पर नृत्य कर रहा है। कर्म की जो विचित्रता है, कर्म का जो चक्र है, बेटा! इस मानो देखो, चक्र में चकित हो रहा है अथवा रमण कर रहा है। तो मेरे पुत्रे! देखो, विचार विनिमय क्या हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है। हे मानव! तू अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाने का प्रयास कर!

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है मैं बेटा! इससे पूर्व काल में तुम्हें भगवान राम की चर्चा कर रहा था। मेरे प्यारे! हमारे यहाँ, परम्परागतों में मानो देखो, अपनी अपनी विद्याएं मानव के समीप रहती थीं और मानव उस विद्या में पारायण होता था। मुनिवरों! देखो, माता सीता अपने कार्य में बड़ी दक्ष रहती थीं क्योंकि वे सदैव आयुर्वेदिक, धनुर्विद्या के मर्म को जानने वाली विदुषी कहलायी जाती हैं। मानो उसका जो मर्म है वह उसका वेद है। आयु का वेद है, धनुर्वेद है, जिस धनुर्विद्या को पान करने के पश्चात मेरे प्यारे! धनुर्विद्या मानव के समीप आकर नृत्य करने लगती है क्योंकि माता का यह कर्तव्य है माता जो अपने पुत्र को योग्य बनाती है क्योंकि वेद में माता को पृथा कहा है वो अपनी प्रतिभा अपनी महानता के द्वारा अपने बाल्य को ऊँचा बनाती है।

मेरे प्यारे! देखो, जब यह माता अपने प्यारे पुत्रों! को कहती है वसुन्धरा कहलाती है अपने में धारण करने वाली है तो पुत्रे! देखो, यह धनुर्विद्या से आयु की विद्या से बाल्य को मानो पारायण करा देती है और यह कहा करती है बाल्य आओ तुम ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हो तो मैं तुम्हें ब्रह्म की पिपासा वहाँ शान्त हो और यदि तुम संसार के वैभव, संसार के कार्यों में रत्त रहना चाहते हो तो मानो कौन से मार्ग को अपनाना चाहते हो, मेरे पुत्रे जब माता अपने पुत्र से यह कहती है तो माता के इन शब्दां को पान करने वाला ब्रह्मचारी कहता है कि माता जैसी तुम्हारी इच्छा मानो जैसी प्रेरणा मुझे प्राप्त होगी, उसी आधार पर अपने कार्य में रत्त रहना चाहता हूँ।

मुनिवरों! देखो, जब बाल्य यह कहता है तब माता उसे भयंकर वनों में ले जाती है। आचार्य के कुलों में ले जाती है और यह कहती है बाल्य तुम धनुर्विद्या में पारायण हो जाओ। मेरे प्यारे! देखो, लव और कुश को कौन कौन सुयोग्य बनाने वाली है? बेटा! वह है माता कौशल्या। कौशल्या बृहे वृतविद्याः यह कहा करती थी सीता हे वाल्य माता

कौशल्या भी तुम्हारे पितर को इसी प्रकार शिक्षा दिया करती थी। कौशल्या ये कौशल वृत कहलाया जाता है क्योंकि कुशल हो जाना जीवन में बहुत अनिवार्य है। मेरे पुत्रे देखो, माता सीता अपने पुत्रों! को धनुर्विद्या प्रदान कर रही है। प्रातःकाल में यज्ञ करना, देव पूजा करना, ब्रह्म का चिन्तन करना और बाल्यों को शिक्षा देना यह माता का कार्य होता है। यह माता की कर्तव्यवाद की एक प्रतिभा होती है, परन्तु आज बेटा! मैं इन वाक्यों में न ले जाता हुआ केवल तुम्हें ये वाक्य प्रकट कराने जा रहा हूँ कि मुनिवरों! देखो, हमारे यहाँ माताएं अपने जीवन में दक्ष रही हैं। परम्परा से मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा था कि हमारे यहाँ हनुमानजी मानो देखो, सूर्य को अपने मुखारविन्द में अपने में अर्पित कर लिया।

मेरे प्यारे! तुम्हें यह प्रतीत होगा जब भयंकर वनों में ये रहते थे तो मानो उनकी माता अंजना सदैव अपने वाल्य को शिक्षा देती रहती थी और शिक्षित बनाती कहा करती थी कि हे बाल्य! सूर्य विद्या पर भी तुम्हारा अधिपथ्य होना चाहिए तो महाराजा हमुमान जी का नामकरणः अव्रहीः मानो देखो, वे आचार्य के कुल में प्रविष्ट हुए। मेरे प्यारे! देखो, उनके जो राज पुरोहित थे वे सुधन्वा नामक, मानो उनके पुरोहित कहलाते थे और सुरेश्वर ऋषि भी राजपुरोहित कहलाते थे तो सुरेश्वर ऋषि महाराज धनुर्विद्या प्रदान करते थे तथा सूर्य विद्या को प्रदान करते थे। मेरे प्यारे! यह सूर्य क्या क्या कार्य करता है? सूर्य क्या है? तो मानो इनके ऊपर अपनी टिप्पणियां अपने विचार देते रहते थे। बाल्य काल में ही महाराजा हनुमान जी ने मेरे प्यारे! देखो, कालं ब्रीहि वृतेः तो सूर्य विद्या को अपने में निगलने का प्रयास किया। सूर्य विद्या को निगल लिया। सूर्य लोक को नहीं निगला जाता है। सूर्य में जो विद्या है, सूर्य में जो प्रतिभा है उस प्रतिभा को निगलने का नाम ही बेटा! सूर्य को निगलना है क्योंकि सूर्य में जो विद्या है और यह प्रातः काल में उदय होता है। उदय होकर यह संसार को जागरूक कर देता है। नाना प्रकार की वनस्पतियां को तपा देता है। पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिजों को तपा देता।

मेरे प्यारे! देखो, सूर्य की आभा से अन्तरिक्ष में विद्युत का भरण हो जाता है विद्युत का

भरण होते हुए सर्वत्र सूर्य से विद्या प्राप्त होती है परन्तु प्राणायाम ब्रह्मं लोकं ब्रीहिः वृतः वेद का आचार्य कहता है कि ये जो प्राणत्व है प्राण है ये प्राण मानो देखो, विद्युत में प्रवेश कर रहा है। प्राण शक्ति को लाने का प्रयास करना, प्राण को ऊँचा बनाना मेरे प्यारे! परमात्मा की अनुपम वेद की विद्या को जानना है। आज कोई भी मानव ऊँचा बनना चाहता है। मानवता को लाना चाहता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, अपने गृह को स्वर्ग बनाना होगा और गृह को स्वर्ग बनाने से विद्यालय को स्वर्ग बनाना होगा और विद्यालयों का स्वर्ग जब बन जाता है तो राष्ट्र भी स्वर्गमय हो जाता है। परिणाम क्या मानो देखो, हनुमान जी ने भी यही कहा था। वे अपने उपदेश में अपने वाक्यों में कहा करते थे कि जब मैं आचार्य कुल में प्रवेश करता रहता था तो आचार्य कुल में जो ब्रह्मचारी अध्ययन करते रहते थे वे ब्रह्मचारियों के द्वारा किसी प्रकार का व्यसन उनके समीप नहीं रहता था। तो सदैव अपने प्रभु का चिन्तन करते हुए आचार्य के चरणों को स्पर्श करते हुए अपनी विद्या में सदैव पारायण रहते विद्या को जानने का प्रयास करते रहे। मेरे पुत्रे देखो, उन्होंने ये कहा है कि संसार को ऊँचा बनाना है तो हमें सूर्य विद्या को जानना चाहिए। ये तेजोमयी विद्या कहलाती है। ये अग्निमयी विद्या है। मानो देखो, सूर्य का हमें तप भी करना है। सूर्य की विद्या को जानकर नाना प्रकार के यन्त्रों का अध्ययन भी करना है।

मेरे प्यारे! जब माता अञ्जना के गर्भस्थल में बाल्य था तो मानो उस काल में वह सूर्य का तप करती थी। सूर्य का तप क्या होता है? सूर्य की प्रातःकाल में जो रश्मियां आती हैं वे जो किरणें आती हैं उन रश्मियों को वे उषाकाल में बेटा! पान करती। कौन माता पान करती? मानो अन्न जल का पान नहीं करती। सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं उनमें जो तथ्य हैं उन्हें ग्रहण करती रहती हैं और ग्रहण करके मानो उसको निगलती हुई विद्या में पारायण होती रहती है। परिणाम क्या मुनिवरों! देखो, मुझे वो काल स्मरण आता रहता है माता अंजना जब मानो बाल्य काल में आपातकाल तो उसका था ही परन्तु देखो, वो अञ्जना अपने जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए बाल्य को ऊँचा बनाने के लिए मेरे प्यारे! देखो, प्रातःकाल होता। प्रातःकालीन ऊषाकाल में मेरे प्यारे! देखो,

उन किरणों को अपने में धारण करती रहती। आह! नगण्य होकर के उदर ब्रीहि मेरे प्यारे! देखो, नग्न उन किरणों को निगलती रहती थी। और निगल करके कहा करती थी हे प्रभु! हे देव! आज तू मेरा स्वामित्व है तो मेरे गर्भस्थल से जब बाल्य का जन्म हो तो महान और पवित्र होना चाहिए जो मेरे गर्भाशय को ऊँचा बनाने वाला हो।

मेरे प्यारे! देखो, वह अञ्जना का आपातकाल तो प्रत्येक प्राणी जानता है लेकिन मुझे जब उनकी गाथा स्मरण आने लगती है उनका तथ्य जब मुझे स्मरण आता है तो बेटा! गद् गद् होने लगता हूँ मानो देखो, व्याकुल भी होने लगता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, जब वह अञ्जना को जब दुहागनी बना दिया। दुहागनी बनाने के पश्चात् पवन के हृदय में, जब पवन राजा रावण की सहायता को मानो देखो, कुबेर को विजय करने के लिए राजा रावण ने सहायता के लिए महाराजा पवन की निमन्त्रण दिया कि महाराज! मेरी सहायता करो, तो मेरे प्यारे! देखो, वह सहायता के लिए कौन पवन पुत्र अपने गृह को त्याग करके अपनी सेना के सहित वहाँ से गमन किया जब गमन किया तो मार्ग में मानो वो किसी नदी पर अश्क्तम् नद पर मुनिवरों! देखो, उन्होंने अपना विश्राम किया। रात्रि काल में वहाँ दो पक्षियों को चक्रय ग्रहीति के और चक्रयग्रहीवी को दोनों को दृष्टिपात करके मेरे प्यारे! उनके हृदय में एक व्याकुलता आई। और उस व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि राजा ने कहा अपने मन्त्री से कि यह पक्षी कहते हैं। उन्होंने नहीं कहा कि महाराज! देखो, ये प्रभु के नियम के अनुसार ये दिवस भर एक आसन पर रहते परन्तु जब रात्रि आ जाती है तो ये दोनों पक्षी एक दूसरे मानो दूरी रहते हैं। मुनिवरों! महाराज पवन के हृदय में यह विचार आया अन्न ब्रीहि वृतम् क्या मैंने अपनी पत्नी को बारह वर्ष हो हैं उनको त्याग दिया है। क्या इसी प्रकार मानवता में व्याकुलता होती है?

मेरे प्यारे! देखो, पवन में उन दोनों पक्षियां को दृष्टिपात करके व्याकुलता हुई। व्याकुलता का परिणाम यह हुआ कि वाहन पर विराजमान हो करके उस रात्रिकाल में अंजना के द्वार पर जा पहुंचे। अंजना ने अपने पति देव को दृष्टिपात करते हुए उनके चरणों को स्पर्श किया। अंजना ने कहा आइए भगवन! मैं तो आपके गुण गान गाती रहती हूँ।

आपने मुझे दुहागनी बना दिया। परन्तु उसके पश्चात् भी मैं आपका अनिष्ट नहीं चाहती हूँ। मेरे प्यारे! देखो, इन्होंने कहा देवी! धन्य है मेरे प्यारे! देखो, वहाँ उन्होंने अपने अपने आभूषणों का परिवर्तन किया और परिवर्तन करके मानो उन्होंने कहा मैं रावण की सहायता में जा रहा हूँ। कुबेर को विजय करना है। क्योंकि लंका को विजय करना है। रावण को और मानो देखो, मुझे उसकी विजय की सहायता के लिए मैं यहाँ से गमन कर गया था। मार्ग में से तुम्हारे लिए आया हूँ उन्होंने कहा कि मैं तो स्वतः ही दुहागनी हूँ मानो यदि तुम्हें देरी हो गई तो मानो देखो, माता पिता मुझे इस गृह से दूरी कर देंगे। उन्होंने कहा देवी! कोई वाक्य नहीं परन्तु यह तो विषय दूरी है इतने में तो मैं विजय करके अपने राष्ट्र में आ पहुचूंगा। मेरे प्यारे! देखो, अपने आभूषणों को परिवर्तन करके पवन ने वहाँ से गमन किया। और भ्रमण करके मेरे प्यारे! देखो, वह अपने मन्त्रियों में जा पहुंचे। दिवस आया वो लंका को विजय करने के लिए रावण की मानो देखो, वरुण की सहायता के लिए पवन ने वहाँ से गमन किया।

मेरे प्यारे! देखो, वहाँ संग्राम करते देरी हो गई। कुछ समय के पश्चात् अंजना के गर्भ स्थल में बेटा! वही बाल्य था। हनुमान देवव्रतः मुनिवरों! माता देखो, सदैव सूर्य की उपासना करती रहती थी मानो देखो, माता अपने पुत्र को ऊँचा बना सकती हैं और कोई नहीं बना सकता क्योंकि माता जब तपस्वी होती है तो माता का गर्भाशय भी ऊँचा होता है। मेरे प्यारे! देखो, ये कहा करती कि हे बालक तू संसार में वीर है तू महान बनना। मानो देखो, सूर्य की प्रातःकाल में उपासना करती चन्द्रमा की रात्रि काल में उपासना करती जब पूर्णिमा का दिवस आता तो रात्रि काल में वह अमृत को अपने में धारण करती रहती, अमृत कैसे धारण किया जाता है मानो देखो, रसना को ऊर्ध्वामुख करके चन्द्रमा के समीप मुनिवरों! देखो, उसमें कान्ति को लेकर शनैः शनैः प्राण को अपने आन्तरिक जगत में सींचा जाता है। जिह्वा के द्वारा सींचा जाता है। मानो देखो, वह बाल्य अमृत को विशेष पान करता है। मेरे प्यारे! देखो, सूर्य को प्रातःकाल में अपने वाणों से सींचा जाता है। मानो शनैः शनैः अपने आंतरिक जगत में उसका प्रवेश किया जाता है। आज कोई मानव सूर्य का तप करना चाहता है तो सूर्य का कल्प होता है

सूर्य का कल्प कैसा होता है उस कल्प में निर्जला रह करके केवल वह जल में अपने आन्तरिक जगत में किरणों को लेता है और सूर्य की किरणों को अपनी जिह्वा से और जल के सहयोग से अपने में सींचने लगता है। मेरे प्यार उसे अग्नि का ज्ञान हो जाता है। अग्नि को प्रतिपदा में जानने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, उसको जानता है। तपस्थली में माता उसको कहती रहती है कि वाल्य में वो शक्ति आ जाती है कि वह सूर्य के तेज को अपने में धारण करने लगता है। और सूर्य के गुणों को अपने में धारण करने लगता है।

मेरे प्यारे! देखो, बाल्य व्रीहिव्रतः वह माता जब गर्भवती थी, उस समय मानो देखो, पवन के पिता महेन्द्र ने यह कहा कि मातामही यह अंजना हमारे गृह को कलंकित करने के लिए आई है। मानो देखो, जब यह कहा तो मुनिवरों! देखो, काले रथ पर विराजमान करा करके कहा कि हे अंजना तू कहाँ जाना चाहती है। हमारे राष्ट्र का यह नियम है कि कोई भी कन्या इस प्रकार से कलंकिनी हो जाती है उसको काला मुख काले ही धोड़े और काले ही रथ पर विद्यमान करके भयंकर वनों में त्याग दिया जाता है। या जहाँ वो जाना चाहती है वहाँ त्यागा जाता है। तो मुनिवरों! देखो, महारानी अंजना ने कहा कि हे मातेश्वरी इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैं दोष की पात्र नहीं हूँ। उन्होंने कहा कि मैं अपने पुत्र को यह स्वीकार नहीं कर ही सकती परिणाम क्या हुआ कि अंजना कहती है कि मेरे पिता के गृह में मुझे प्रवेश करा दो मानो देखो, काला रथ, और काला सारथी मानो देखो, काले ही अश्व मुनिवरों! देखो, उस पर विद्यमान करके उसको त्यागने लगे। काले ही वस्त्रों में त्यागा जाता था। मुनिवरों! देखो, जब वह पिता के द्वार पर जाने लगी तब पिता ने ये दृष्टिपात किया कि ये कौन आ रहा है? काले रथ में ऐसे तो कोई कलंकिनी आती है। परन्तु देखो, रथवान जब पिता के गृह में जा पहुंचा तो पिता ने कहा कि यह तो हमारी पुत्री अंजना है। उन्होंने कहा जाओ भयंकर वन में कजली वनों में त्याग दो।

मेरे पुत्रे देखो, अंजना को कजली बनों में त्याग दिया कजली वनों में त्यागने के पश्चात् सारथी रथ को अपने राष्ट्र में ले आया। तो मानो देखो, वह व्याकुल हो रही थी कि हे

विधाता! ये आपने मेरे लिए क्या किया है मैं पापिनी तो नहीं थी परन्तु मेरा कौन सा भोग मेरे समीप आया है मेरे अन्तः करण में कोई और अपवित्रता नहीं। मैं सदैव अपने जीवन में शुद्ध और पवित्र रही हूँ। मेरा ब्रह्मचर्य भी नितान्त रहा है और ब्रह्मचर्य की गति भी ऊरुर्ध्वा में रही है। हे प्रभु! यह क्या हुआ। मेरे प्यारे! देखो, भयंकर वनों में व्याकुल हो रही है। व्याकुल होती हुई, बेटा! कन्दरा में मानो देखो, कन्दरा में विद्यमान हो गई शरद ऋतु का काल था, शरद वायु चल रही है और अंजना व्याकुल होती हुई मेरे प्यारे! वह निद्रा में तल्लीन हो गई। अगला दिवस आया कुछ समय के पश्चात् मेरे प्यारे! देखो, कन्दरा में विद्यमान हो करके मानो देखो, उस काल अग्रतम भयंकर वनों में पुत्र का जन्म हुआ। अहा! हनुमान का जन्म कहाँ हुआ? कजली वनों में हुआ पर्वतों की मालाओं में हुआ। ऐसे महापुरुषों का जन्म कहाँ होता है बेटा! पर्वतों की माला में मेरे प्यारे! देखो, व्याकुल हो रही थी हे वाल्य! तेरा जन्म राष्ट्रगृह में होता तो न प्रतीत क्या क्या दान इत्यादि किए जाते और देखो, ऊँचे ऊँचे याग होते। हे वाल्य। यह तेरा कैसा सौभाग्य है तू कैसा दुर्भागी है। हे वाल्य! देखो, इन कजली वनों में मैं तुम्हें क्या पान करा सकती हूँ।

मेरे प्यारे! वह व्याकुल हो रही थी। इतने में ही मानो देखो, अंजना के मामा व्रीहिवृणाः वृतः केतुः मानो देखो, व्रीहिवृणा उनका नाम था। व्रीहिवृणा अपने पुष्प विमान को लिए हुए पर्वतों की माला में भ्रमण कर रहे थे मानो देखो, उन्होंने एक स्थली पर उस स्थली पर अपने विमान को स्थिर किया मानो विमान को स्थिर करके उन्होंने कहा कि यह मध्य रात्रि है कौन व्याकुल हो रहा है इन भयंकर वनों में निर्जन वनों में कौन व्याकुल हो रहा है? उसने कहा अरे, कौन है? उन्होंने कहा कि भगवन! मैं हूँ। तुम कौन हो? मैं अंजना हूँ मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने अंजना को जान लिया। जान करके भयंकर कन्दरा में से उन्हें बाहर किया अपने पुष्प विमान में कहा चलो देवी! हे पुत्री! मैं तुम्हें अपने गृह लिए जा रहा हूँ। मेरे पुत्रे! देखो, मामा उसे अपने गृह ले गए और मुनिवरों! देखो, वो जो पुष्प विमान में जो मानो कृतिश्लोंग थे मुनिवरों! देखो, वे सूर्य के प्रकाश में प्रकाश दे रहे थे। वे हनुमान ऐसा बज्र ऐसा बज्र था ऐसा वज्र शरीर वाला था उसके

माता की लोरियों में से ब्रीहि उछल करके मानो देखो, उसको लट्टू को अपने मुख में देना चाहा तो मानो देखो, वो पर्वत पर उस पुष्प विमान से नीचे गिर गए। मुनिवरों! देखो, उसका मुखारविन्द मानो देखो, कुछ अपनी स्थली से द्वितीय रूप में परणित हो गया। मेरे प्यारे! देखो, अंजना ने कहा कि मामा मेरा पुत्र तो समाप्त हो गया होगा। तुरन्त पुष्प विमान नीचे किया तो वाल्य केवल मेरे प्यारे! जो कुछ ही समय का था परन्तु वह वज्र शरीर था। वह आनन्द से मानो कुछ व्याकुल सा था कुछ आनन्दमय था। उसे माता ने अपना कण्ठ दिया। कण्ठ में धारण करने के पश्चात् पुष्प विमान पर पुनः स्थिर होकर के मेरे प्यारे! देखो, नौतन पुरी अपने राष्ट्र में आ गएं और राष्ट्र में आकर के मेरे पुत्रे! देखो, वहाँ उसकी पालना होने लगी। परिणाम यह हुआ कुछ समय के पश्चात् मानो देखो, कुबेर को विजय करने के पश्चात महाराजा पवन भी अपने राष्ट्र में आ पहुंचे। और माता से कहा हे माता! वह अंजना कहाँ है? उन्होंने कहा हे पुत्रे! वह तो बड़ी कलंकिनी थी। मानो हमने उसे गृह से दूरी कर दिया है। उसके पिता ने भी उसे स्वीकार नहीं किया। वह कजली वनों में जा पहुंची है। उन्होंने कहा हे मातेश्वरी। यह तो एक मानो महा पाप हुआ है गृह में। उन्होंने कहा पुत्र मैं क्या करूं तुम मुझे सूचना दे करके नहीं गये। जब तुमने यहाँ से गमन किया था। हमने तो मानो उसको अपराधी कलंकिनी जानकर के अपने गृह से दूरी कर दिया।

मेरे प्यारे! पवन ने यह संकल्प कर लिया कि हे माँ यदि अंजना मुझे कहीं प्राप्त हो गई तो मानो मैं गृह आऊँगा अन्यथा मैं भी अपने प्राणों को कजली वनों में त्याग दूंगा। मेरे पुत्रे! देखो, वह तो कजली वनों में जा पहुंचे और उसी दिवस अंजना कह रही थी अपने मामा से हे प्रभु! मुझे हे देव! मेरे गृह में पहुंचा दीजिए। मेरे पति के गृह में ही मैं सुशोभित होऊँगी क्योंकि मेरे पति भी अब तक भयंकर संग्राम से आ गएं होंगे। उन्होंने कहा अच्छा देवी, तो मुनिवरों! देखो, वो हनुमान और माता अंजना जहाँ श्वेत्तामगृह राष्ट्र में आये। मेरे प्यारे! देखो, राष्ट्र में आ करके जब यह सूचना प्राप्त हुई कि पवन तो अंजना को प्राप्त करने के लिए कजली वनों में जा पहुंचे हैं। तो बेटा! उन्होंने कहा कि हे मातेश्वरी कजली वन तो मेरा दृष्टिपात किया हुआ है। मेरे पुत्रे!

देखो, उन्होंने भी कजली वनों को अपने पुत्र को लेकर गमन कर दिया। मुनिवरो, देखो, अब वहाँ कजली वनों में भ्रमण करते हुए उसी स्थली पर पवन जा पहुंचे जहाँ हनुमान का जन्म हुआ था और मुनिवरों! देखो, वहाँ अंजना की कहीं एक अंगूठिका प्राप्त हो गई मानो देखो, स्वर्ण की मुद्रिका प्राप्त हो गई। मुद्रिका प्राप्त होकर के उन्होंने कहा अंजना तो नष्ट हो गई है। उन्होंने बेटा! समिधा एकत्रित करके और अपने मानो देखो, शव यात्र में परणित होने लगे। अग्न्याधान करके जब वह शव यात्र में परणित होने लगे। इतने में ही अंजना भी जा पहुंची। उन्होंने कहा देव! यह क्या कर रहे हो। उन्होंने कहा देवी! मैं कर क्या रहा हूँ, ब्रह्मवृती देवी सनिकृतिः देवाः नित्यम् ब्रह्म ब्रीहिवृतोः मानो कि अपना जो स्नेही होता है कोइ्र प्राणी किसी के दाह में नष्ट हो जाता है। मानो मैं तेरे दाह में नष्ट हो रहा हूँ। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा देव! मैं तो जीवित हूँ तो मुनिवरों! देखो, दोनों का मिलन हुआ। कजली वनों से राष्ट्र में आए। तब मानो देखो, ऐसे महापुरुषों का जो जन्म होता हैं वो कैसी स्थलियों में होता है। यह महान विचारने का विषय रहता हैं मानो देखो, प्रत्येक वाक्य विशेष होता हैं विचारना है कि उन तपस्विनियों के गर्भ से तपस्वी पुत्रों! का जन्म होता है। यहाँ मेरे प्यारे! देखो, तप ही मानव को ऊँचा बनाता है। आज कोई भी मानव ऊँचा बनना चाहता है तो उसे तपस्वी बनने की आवश्यकता है। मेरी माता जब तपस्विनी बन जाती है तो यह संसार और राष्ट्र ऊँचा बन जाता है। यह समाज ऊँचा बन जाता है। जब मुनिवरों! देखो, मानव तपस्वी बन जाता है तो मुनिवरों! देखो, लोक और परलोक ऊँचे बन जाते हैं। आओ मेरे प्यारे! देखो, माता अंजना का मैंने तुम्हें कुछ संक्षिप्त परिचय दिया है। महाराजा हनुमान का कुछ सूक्ष्म परिचय दिया। वो मेरे प्यारे! विद्यालय में उनका कोई विषय था। अध्ययन करने का विषय था सूर्य की विद्या को जानना क्योंकि माता ने सूर्य की विद्या को मानो जाना था, और माता के गर्भ स्थल में जब वाल्य था। तो प्यारे देखो, हनुमान ऋषि के द्वारा वे प्रातः कालीन मानो देखो, सूर्य की तपस्या करते रहते थे। वे अपनी रसना के द्वारा प्रातःकालीन ऊषा और शान्ता दोनों किरणों को सींचते रहते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, जब वे गान गाते थे वेद का गान गाते थे। वेदों की ध्वनियों को जानते थे। तो

मेरे प्यारे! देखो, वे ध्वनि से ओतप्रस्तृप्तः हो जाते थे। पक्षी गण भी तृप्त हो जाते थे। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब मुनिवरों! देखो, वह भयंकर वनों में जब गान गाते थे साम गान गाते थे, सूर्य की विद्या का उसमें पुट लगा हुआ था वो गान गाते थे मेरे प्यारे! देखो, भयंकर अंधकार में प्रकाश हो जाता था वे प्रकाश को जानते थे। हनुमान जी का मुझे जीवन चरित्र स्मरण आता रहता है। मेरे प्यारे! देखो, वे इस विद्या में परणित रहते थे। अपनी वाणी के द्वारा मन्त्रों से वृष्टि भी करते थे। अपनी वाणी के द्वारा मानो देखो, वे प्रकाश भी कर लेते थे। क्योंकि वे सूर्य की विद्या को जानते थे। मानो सूर्य की विद्या को जो क्रियात्मक जानता है मानो देनों प्रकार की आभाओं को जानता है।

मुनिवरों! देखो, वह हनुमान जी का जीवन मुझे स्मरण आता रहता है। जब मैं महापुरुषों की वार्त्ता को लेकर के अपना नृत्य करना प्रारम्भ करता हूँ। तो हृदय गद्गद हो जाता है मैं यह कहा करता हूँ कि महाराजा! हनुमान जी जैसे संसार में प्रत्येक मानो बाल्य होने चाहिए कि जिससे यह संसार महान और पवित्र बन जाए। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि के द्वारा जब एक समय वे गान गा रहे थे तो ऋषि कहते हैं कि हनुमान! हे ब्रह्मचारी! हमारे आश्रम में प्रकाश होना चाहिए तो मेरे प्यारे! सूर्य विद्या के ऊपर कुछ मन्त्र होते हैं। वेद में मन्त्र आते हैं। सूर्य मन्त्र ही उनका नामोकरण होता है। मेरे प्यारे! जब वो गान गाने लगे तो मुनिवरों! देखो, तल्लीन हो करके गान गाने लगे। गान गाते हुए मुनिवरों! देखो, गाने से मानो उस राग से मानो देखो, उनके आश्रम में प्रकाश हो गया। जब प्रकाश हो गया तो गुरुजी कहते हैं। धन्य है! हे वाल्य! यह विद्या तुमने कहाँ से पाई है। उन्होंने कहा कि ये विद्या मेरे मामा मानो देखो, मेरी माता के मामा मेरे महामामा इस विद्या को जानते हैं। परन्तु देखो, यह विद्या मैंने बाल्यकाल में उनसे प्राप्त की है। इसी विद्या को देखो, जो हमारे राजपुरोहित हैं वे भी इस विद्या को जानते हैं इस विद्या को मेरी माता भी जानती हैं। मैंने माता के द्वार से यह विद्या प्राप्त की है।

पुत्रो! आज हम नाना प्रकार की विद्याओं में परणित होना चाहते हैं। क्योंकि वेद के एक एक मन्त्र को लेकर के मानव जब गान गाता है। मुनिवरों! देखो, मानव कृतार्थ हो जाता

है। धन्य हो जाता है। वे जहाँ दीप मालिका राग को जानते थे। मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण है। दीपमालिका जो निर्माण हुआ है। दीपमालिका तो परम्परा से ऋषियों मुनियां के मस्तिष्कों में रही है। परन्तु दीपमालिका का जो निर्माण हुआ है वह प्रचलित है। मानो देखो, जब अयोध्या में राम आ पहुंचे थे लंका को विजय करके। उस समय मानो देखो, उनकी जो जानकारी थी कि हनुमान जी ने राम के समीप मानो देखो, ये गान गाया था। जब दीपक गान गाने लगे तो अयोध्या में दीपक ही दीपक प्रकाशित हो गए। जब प्रकाशित हो गए तो देखो, महाराज भरत को यह प्रतीत हो गया कि राम आ गए हैं अयोध्या में लंका को विजय करके। क्योंकि हनुमान जी का यह गान है। मानो देखो, गान के द्वारा ये दीप मालिका का प्रकाश होता है। परन्तु इस विद्या को मेरे प्यारे! देखो, आदि ब्रह्मा भी जानते थे। इस विद्या को ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा भी जानते थे। जब अथर्वा इस विद्या का गान गाते थे तो मुनिवरों! देखो, दीपमालिका प्रकाशित हो जाती थी। दीपमालिका का प्रकाश क्या है? मानो देखो, दीपमालिका है कि मानव की वाणी से दीपकों का प्रकाश हो जाना उसको दीपमालिका कहते हैं। मेरे प्यारे! देव गृह में याग होने को दीपमालिका कहते हैं। मैं इस विद्या के वाक्य कल प्रकट करूंगा। आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? आज का वाक् हमारा यह कह रहा है कि प्रत्येक मानव को प्रत्येक मेरी पुत्री को प्रत्येक मेरे प्यारे! ऋषि मुनियों को मेरे प्यारे! उस अनुपम विद्या का पुनः से अध्ययन करना चाहिए। इस विद्या के द्वारा मानव कृतार्थ होता है। मानो अपने में यह स्वीकार करता है कि वास्तव में यह विद्या मेरे द्वारा होनी चाहिए। इस विद्या से मेरा मानवीय जीवन ऊँचा बनेगा तो देखो, ये विद्या बिना तप के नहीं आती।

मेरे प्यारे! देखो, हनुमान जी ने बारह वर्ष तक एकान्त निर्जला बन करके उपवास करके अन्न का त्याग करके उन्होंने इस विद्या का अध्ययन किया था क्योंकि वे मानो सूर्य विद्या का अध्ययन करते रहते थे। सूर्य विद्या में क्या नाना प्रकार के अणुओं और महाणुओं को जानते रहते थे। और अपने मुखारविन्द में इनको अर्पित करना, बेटा! दीपमालिका का प्रकाश होना मानो देखो, हनुमान जी के द्वारा एक अनुपम विद्या थी।

इस विद्या को जानने वाले ऋषिजन सूक्ष्म होते हैं। इस विद्या के लिए तप की आवश्यकता होती है मानो अपने मानवीय जीवन को ऊँचा बनाने वाली ये विद्या है। इस विद्या को धारण करने के पश्चात् ऐसे महापुरुषों का जन्म ऐसे बुद्धिमानों का जन्म ऐसे मानो देखो, ऐसे ब्रह्मचारियों का जन्म बेटा! कहाँ होता है? कजली वनों में। माता का कितना आपत्तिकाल आ जाता है परन्तु देखो, वही माता सुखद को प्राप्त होती है। जो निष्ठा को नहीं त्यागती मानव वही ऊँचा होता है जो निष्ठावान होता है। जिसके द्वारा निष्ठा होती है और निष्ठित बनकर के मेरे प्यारे! यह संसार ऊँचा बनता है। ऐसी निष्ठा में मुनिवरों! देखो, मानो मानव रमण करता रहता है।

मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें ये वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ क्या देखो, दीपमालिका की चर्चा तो मैं कल करूंगा। आज का विचार तो केवल हमारा यह है कि हमारा जो साहित्य है। हमारा जो मानवीय नव जीवन है यह इतना ऊँचा बनना चाहिए कि साहित्यिक रचनाओं में साहित्यिक आभाओं में मेरे प्यारे! देखो, तथ्य होते हैं और उन तथ्यों को धारण करना। अपने में उन तथ्यों को लाना यह हमारा कर्तव्य कहलाया जाता है। आओ मेरे प्यारे! आज के वाक्य के उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए और इस विद्या में परणित होते हुए नाना प्रकार की जो विद्याएं हैं मैं क्रियात्मक विद्याओं को कल प्रकट करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हमें उस परमपिता परमात्मा की आनन्द मयी देवी इस मानो प्रकृति के ऊपर अध्ययन करते इस सागर से पार होना चाहिए।

यह है बेटा! आज का वाक् ऋत और सत में मानव को रमण करना है। एक दूसरा मानव प्राणी प्राणी में आभायित हो रहा है। रमण कर रहा है। बेटा! ये आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि कुछ हनुमान जी के जीवन के सम्बन्ध में वे कैसे गान गाते थे इसके सम्बन्ध में कुछ चर्चाएं करेंगे। आज का वाक्

समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। अच्छा भगवन्! आज्ञा। आनन्द मंगलम् स्थान बिमला गोयल दिल्ली

२ 21 02 1977 पुष्प 34 अग्नि की व्यापकता

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रें का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रें का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का वर्णन किया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन कर रहा है और यह कह रहा है कि वह परमात्मा अनन्त कहलाया गया है। वह इतना अनन्त है उस मानवता में रमण करने वाला मानव चाहे वह विज्ञान में रपमण करने वाला हो, चाहे वह ज्ञान में रमण करने वाला हो परन्तु वे परमपिता परमात्मा को सीमाबद्ध नहीं कर सका। वह परमात्मा को सीमा में नहीं ला सका है।

वह इतना अनन्त है कि नाना प्रकार के वैज्ञानिक हुए, उन वैज्ञानिकां ने बेटा! नाना प्रकार की उड़ान उड़ी। परमाणुवाद के सम्बन्ध में क्या, विज्ञान के सम्बन्ध में क्या, नाना प्रकार के विज्ञानवेत्ता इस पृथ्वी मण्डल पर क्या और भी नाना लोक लोकान्तरों में हुए हैं। परन्तु उसके विज्ञान को सीमाबद्ध नहीं कर सके। वह इतना महान् वैज्ञानिक है इतना विज्ञान में रमण करने वाला है कि नाना प्रकार के अणु अणु में, एक एक परमाणु में सर्व ब्रह्माण्ड का चित्रण हो रहा है।

हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था पुत्रो! मानव जब योग में प्रवेश करता है, मानव जब साधना में प्रवेश करता है तब वह प्राणों का निधान करता है। प्राणों को एक दूसरे में समावेश करने की उसकी उत्सुकता बनती है। परन्तु वह प्राणों का निधान, प्राणों को एक सूत्रता में लाने के लिए वह परम्परा से प्रयास करता रहा है और इस सम्बन्ध में वह नाना प्रकार की उड़ान उड़ता हुआ वह यह विचारता रहता है कि यह एक एक जो परमाणु है जो सूर्य की किरणों के साथ साथ परमाणु

जो गति करता है, मानो एक एक परमाणु को जब वैज्ञानिकों ने क्या, बेटा! योगियों ने जब अनुभव किया कि एक एक परमाणु में बेटा! इस ब्रह्माण्ड का चित्रण हो रहा है। वे ही लोक लोकान्तरों के परमाणुओं में उसी रूप से गति कर रहे हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु को सहायता दे रहा है परन्तु अणु की परिक्रमा कर रहा है। मेरे पुत्रो! वह एक दूसरे में ओत प्रोत हुआ सा यह जगत् आज हमें दृष्टिपात आ रहा है। एक मानव दूसरे मानव का सहायक बना हुआ मुनिवरों! देखो, यह मानवत्व प्राणीमात्र में बेटा! एक दूसरे में निहित हो रहा हैं आज उस निहित होने वाली चर्चाओं में हम जाना नहीं चाहते हैं। आज का हमारा विचार क्या कह रहा है?

बेटा! कल के कुछ विचार हमने प्रकट किए। आज का विचार क्या कह रहा था? आज हम आपोत्योति की उपासना कर रहे थे। आपो में ही रमण करते रहते हैं। वह जल ही वृष्टि कहलाता है। वह आपो में ही ज्योति है। संसार का निर्माण जो करने वाला है वह आपोमय है। उसे आपोमय कहते हैं। उसे हिरण्यगर्भः भी कहा जाता है। क्योंकि उसके गर्भ में, उसके अन्तर्गत सर्वत्र मुनिवरों! देखो, यह कार्य हो रहा है। जितना स्थूल जगत् आज हमें नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है, नाना प्रकार के रूपों में उसका चित्रण हो रहा है। क्योंकि वह चित्रण हमें अपनी आभाओं में दृष्टिपात आ रहा है। आओ मेरे पुत्रो! आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें गम्भीर दार्शनिक विचारों में ले जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि आज का हमारा विचार क्या है? कि यह जो आपोमयी ज्योति है जिसमें यह पृथ्वी समाहित हो रही है। मानो पृथ्वी का रूप जिसमें दृष्टिपात आ रहा है। वही मेरे प्यारे! आपोमयी ज्योति अग्नि में ओत प्रोत ज्योति दृष्टिपात हो रही है।

मेरे प्यारे! देखो, यह जो अग्नि है यह अग्नि तेजोमयी है, यह अग्नि इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के रूप धारण किए रहती है। एक अग्नि वह होती है बेटा! जो यज्ञशाला में प्रदीप्त रहती है। मानो कैसी विचारों की अग्नि वह है। दूसरी अग्नि साकल्य को रूपान्तर करती रहती है। अहा! यज्ञमान! जब यज्ञशाला में विद्यमान होकर के मुनिवरों! देखो, जब आहुति देता है, स्वाहा कहता है तो मुनिवरों! वह इस महान् अग्नि की धाराओं पर

विद्यमान हो करके, अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके बेटा! मानो वह जलपोत में जाता हुआ सा दृष्टिपात आता है। मेरे पुत्रें को जलपोत में प्रवेश करना है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है बेटा! जब योगीजन इस नाना प्रकार की अग्नियों में अपने जीवन को ले जाते हैं। इसी अग्नि में बेटा! योगेश्वर अपनी यौगिकता को ले जाता है। जैसे मुनिवरों! देखो, मानव यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान होकर के पत्नी से कहता है, हे देवी! आज हम साकल्य को अग्नि में प्रवेश करके इसके स्थूलता को समाप्त करके आज हम इसका सूक्ष्म रूप बनाकर देवताओं का भोजन बना रहे हैं। आज जब यह सामग्री स्थूल प्राणियों की बनी हुई थी आज हम इस अग्नि को देवताओं का दूत बना रहे हैं। इससे साकल्य को देवताओं का भोजन बना रहे हैं। देवता इसको पान करके हमें नाना प्रकार के पदार्थों को प्रदान करेंगे। वे देवता हैं, वे देते ही रहते हैं। जैसे परमात्मा नाना प्रकार की तरंगें देता रहता है वेद ज्ञान देता रहता है। मानव उस परमात्मा को अपने से दूर कर सकता है। परन्तु वह मेरा देव ऐसा है कि वह हमें दूर नहीं करता। वह हममें सदैव ओत प्रोत रहता है, गतिशील बना रहा है, वह गति प्रदान कर रहा है। तो मेरे पुत्रो! हमें उस परमपिता परमात्मा की उपासना करनी है। वही नाना अग्नि के स्वरूप को धारण कर रहा है। एक अग्नि वैज्ञानिक, अग्नि विज्ञानशाला में अग्नि परमाणुओं को एकत्रित करता हुआ अग्नि के परमाणुओं को मुनिवरों! वह आभा में ले जाता है। एक वह अग्नेश्वर कहलाता है। जो अपनी मानवीय अग्नि को बाह्य अग्नि में समावेश कराता है। मेरे पुत्रो! देखो, जब मानव गर्हपत्य नाम की अग्नि की पूजा करता है वह दक्षिणा अगिन की पूजा कर रहा है। अग्नि की पूजा का अभिप्राय क्या? प्रत्येक मानव पूजा के विषय में नाना प्रकार की आभा प्रकट करता रहता है परम्परा से।

परन्तु यहाँ आभा का अभिप्राय क्या है? आभा कहते हैं मानो जो पूजा कर रहा है। पूजा का अभिप्राय यह कि हम अग्नि को अपने में धारण करें। अग्नि का हम सदुपयोग करते चले जाएं। क्योंकि अग्नि जो नाना प्रकार की धाराओं में विद्यमान है। उस अग्नि को लेकर के हम अग्रणीय बना करके जब पथ के गामी बनते हैं उस पथ के हम पथिक बन जाते हैं, तो मानो वह अग्नि नाना रूपों वाली अग्नि बन करके मानव के

जीवन को प्रकाश तो मेरे प्यारे! मानव के शब्द को ले जाकर द्यु लोक में विचरण करा देती है। यह द्यु लोक में रमण करा देती है। उस अग्नि को जानकर के मेरे पुत्रो! योगेश्वर योगी बनता है और वैज्ञानिक जान कर के वैज्ञानिक बन जाता है। अग्नि से हमारा शब्द द्यु लोक में रमण करता है। वह शब्द क्या है? बेटा! उसको यौगिक शब्द कहते हैं। उसमें रूढ़ि नहीं होती। वह शब्द द्यु लोक या अन्तरिक्ष में रमण करता है। वही मानव के संस्कारों की दुगदुगी बनाता है। वही प्राण है मानो जो तेजोमय कहलाता है जो मुनिवरों! प्राणों के रूप में रमण करता रहता हैं वह नाना प्रकार के कोषों के रूप में रमण करता रहता है। जैसे मुनिवरों! देखो, एक मानव शब्दों को आज उच्चारण कर रहा है। परन्तु वह शब्द अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाते हैं।

वह अग्नि ब्रह्मेः। यह तो अभ्रेः कोषा, कहलाया गया है। उसी कोष में यह नाना शब्द मानव के संस्कार रूपों में विद्यमान रहते हैं और वे जो संस्कारों के रूप में विद्यमान रहते हैं। मेरे पुत्रो! वही मानव के संस्कारों के रूप में आवागमन का मूल कारण बना करते हैं। विचार विनिमय क्या? कि वही शब्द अभ्रे प्रकाशः। वही अग्नि की तरंगें हैं जो मानव के प्रत्येक शब्द के साथ में चित्रवली बन करके अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाते हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब बेटा! गार्गे ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारी कवन्धी ब्रह्मचारी गार्गी, रोहिणी केतु इत्यादि ब्रह्मचारी अपने अपने आसन पर विद्यमान थे और विद्यमान हो करके अपने विचारों की उड़ान उड़ रहे थे। अग्नि के ऊपर एक शब्द आया अग्नम् प्रळः भयः व्रतम् देवः अग्निः। द्व हे अग्ने, तूं प्रज्ञामयी है। , मानो उस अग्नि के ऊपर वह अपना विचार देता हुआ वह अग्नि के ऊपर अपनी विचारधारा को ले जा रहा है और यह कह रहा है, हे अग्नि, तू देवता है, तू मानव के जन जीवन का कल्याण करने वाली है। , तो वह जो कल्याणमयी अग्नि है, उस अग्नि के लिए मानव अपनी कल्पना कर रहा है। अपनी विचार धारा और अपनी उड़ान उड़ रहा है बेटा! वह द्यु लोक में जाने के लिए स्थित हो रहा है। तो मेरे पुत्रो! देखो, वह जो अग्नि है जो विचारों की अग्नि है, मानव के विचारों की अग्नि कैसी विचित्र है? वह भी अग्नि है जो एक राजा अपने राष्ट्र में विद्यमान हो करके वह राष्ट्र को ऊँचा बनाता है, राष्ट्र को पवित्र बनाता

है। एक वह अग्नि है जिससे राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है। वह भी एक अग्नि है। एक अग्नि वह कहलाती है जो बेटा! अन्तरिक्ष में विद्यमान हो करके नाना प्रकार के संस्कारों को आदान प्रदान कर रही है। हे अग्नेय! तू क्या है? तू काष्ठ में रहने वाली है, हे अग्नि, तू मानव के वाणी रूप में मानव के शरीर में वाणी रूप से गति करने वाली है। हे अग्नि तू प्रत्येक प्राणी को तेजस्वी बना रही है। मेरे पुत्रो! यह अग्नि कैसी विचित्र है? जिस अग्नि की हमें पूजा करनी है।

अब पूजा का अभिप्राय यह कि जैसा भी प्रकरण आए उसी आधार पर अग्नि का प्रयोग किया जाता है। ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने में वाणी का प्रयोग किया जाता है, वहाँ वाणी वाणी की आवश्यकता है। एक अग्नि वह जिसमें मेरी प्यारी माता भोजनालय में भोजन तपाती रहती है तपायमान करती हुई उसको महान् बनाती है। पवित्र बना करके माता उस मानव के शरीर में अन्न जा करके पवित्रता को उत्पन्न करता रहता है, तो आओ मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार क्या कह रहा है? वह यह कह रहा था कि नाना ब्रह्मचारी अपने अपने आसन पर विद्यमान हैं, विवेचना हो रही है। चर्चाएं हो रही हैं। चर्चा क्या कर रहे हैं?

पुत्रो! मैं आज सूक्ष्म सी उस चर्चा की महत्ता प्रकट करना चाहता हूँ। वे चर्चाएं क्या थीं? मुनिवरों! ऋषि यह कह रहा था, गार्गी ने यह कहा हे कबंधि हमारे विचार में यह अभी तक नहीं आया है। यह जो पञ्च प्राण कहलाते हैं इन पञ्च प्राणों में एक एक प्राण का एक एक कोश विद्यमान रहता है जैसे पञ्चतनमाताएं हैं उनका एक एक कोष विद्यमान है। जैसे पञ्च महाभूत हैं। उनका एक एक कोष विद्यमान है और वह कोष केवल पांच के पास रहते हैं। वे पांच ये कहलाते हैं मेरे प्यारे! उनका विचार विनिमय होने लगा। उन्होंने सबसे प्रथम यह कहा कि यह जो अन्नों में सबसे प्रथम कोष कहलाता है इस कोष में मुनिवरों! मानव विद्यमान हो करके जिस प्रकोष्ठ के ऊपर अधिपथ्य करता हुआ वह पृथ्वी के गर्भ में चला जाता है। पृथ्वी के ग्रर्भ में जो अग्नि प्रचण्ड हो रही है जो अग्नि संसार को क्या, नाना प्रकार की वनस्पतियों को ऊँचा बनाती है और नाना स्वर्ण की धातुएं तप रही हैं। उन धातुओं का उसे ज्ञान हो जाता है, अमुक स्थली पर इस

प्रकार का धातु के पाक का निर्माण हो रहा है। वहाँ इतने प्रकार की अग्नि है और इतनी मात्र में अग्नि है, बेटा! यह अन्नमय कहलाया गया है क्योंकि अन्न का सम्बन्ध पृथ्वी से होता है पृथ्वी में तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, यह पृथ्वी गति कर रही है इसको वेद ने वसुन्धरा कहा है और यह वसुन्धरा कहलाती हुई, मेरे प्यारे! देखो, वसुन्धरा हो करके यह संसार को अपने वशीरूप से धारण कर रही है और यह धारण करके इसका पालन कर रही है।

अपने में धारण करता हुआ नाना प्रकार के पदार्थों को तपायमान कौन कर रहा है बेटा! वह मेरा चैतन्य देव है। परन्तु मानव यह कहता रहता है, बेटा! हम भी यह उच्चारण करते रहते हैं कि मानव के जीवन की जो तरंगें हैं, मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं नाना प्रकार का वाक्य प्रकट करते रहते हैं। आज तो केवल मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ पुत्रो! कि जो नाना प्रकार की अग्नि है, यह नाना कोषों के रूप में विद्यमान रहती है। यह पृथ्वी में विद्यमान रहती है। अन्न में विद्यमान रहती है, खनिज में विद्यमान रहती है, अग्नि के नाना प्रकार के स्वरूप ही नहीं और भी रूप ले लिए जाएं। एक अग्नि दक्षिणा अग्नि होती है, एक गार्हपत्य होती है, एक गृहपत्य होती है एक वैश्वानर होती है। वे नाना प्रकार की जो अग्नि हैं मानो जो दक्षिणा अग्नि है, इनसे यह जगत् अपना कार्य कर रहा है। यह जगत् अपनी अपनी आभाओं में रमण कर रहा है। अपनी अपनी आभा देता हुआ यह संसार को ऊँचा बना रहा है। आओ, मेरे पुत्रो! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर तो कल ही दे सकूँगा। आज तो केवल इतना वाक्य प्रकट करना है। क्योंकि यह विचारों की कड़ी प्रारम्भ हो गई है। यह विचारों का प्रवाह चला इसका आगे विचार आता रहेगा। हमारा यह प्रकरण आगे ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता रहेगा।

आज का विचार केवल यह कि रेवक ऋषि का आगमन ऊँचे द्वार पर हुआ तो ऋषि कहता है। हे ऋषिवर! तुम्हारा जीवन तुम्हारी प्रशंसा मेरे हृदय को छू रही है। क्या चाहते हो तुम? तो गार्गी ऋषि ने रेवक मुनि महाराज से कहा कि महाराज! मेरी कोई

इच्छा नहीं है। परन्तु मैं आपके चरणों की चन्दना करने के लिए आया हूँ। उन्होंने कहा, बोलो तुम्हारी क्या वन्दना है? उन्होंने कहा मेरी यह इच्छा है प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि विज्ञान में रमण करने वाला, विज्ञान में गति करने वाला जो प्राणी है, उसकी दशा, उसकी रूपरेखा को मैं जानना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! उस समय ब्रह्मचारी के वाक्यों को ऋषि, गार्गी के वाक्यों को पान करने वाला महर्षि रेवक मुनि कहता है, हे ब्रह्मचारी! हे ऋषिवर! हे ब्रह्मवेत्ता! आत्मबृही लोकः। हे अनुसन्धान करने वाले मुनि तुम विज्ञान में जाना चाहते हो। तुम्हारी जो मनोभावना है वह यह कहती है कि तुम्हें विज्ञान में जाना चाहिए। परन्तु विज्ञान में जाने से पूर्व तुम अपने मनोनीत हृदय में यह निश्चय करो, अपने में धारण करो कि वास्तव में हमारे जीवन में एक मानवता की आभा उत्पन्न होनी चाहिए। मानव की आभा में रमण करने वाला मानव अपने जीवन की ऊर्ध्व गति को ऊँचा बनाता रहता है। आज का विचार क्या कहता है? रेवक मुनि कहता है, हे गार्गी तुम विज्ञान में जाना चाहते हो।

यह जो विज्ञान में रमण करने वाला यन्त्रवाद है, परमाणुवाद है इसको हम भली भांति जानते रहते हैं। परन्तु यह जो विज्ञानधारा है, वेद का मन्त्र कहता है विज्ञानः तमृही लोकः। मानो वायुमण्डल में ऐसे ऐसे परमाणु हैं जिन परमाणुओं को हम एकत्रित कर लेते हैं और वह यन्त्र मानो कुछ ही रूपों में हम एकत्रित करके एक पुष्पक विमान में उन यन्त्रें को स्थिर कर देते हैं। उन निर्मित किए हुओं को, एकत्रित किए हुओं को तो वह पुष्प विमान 100 वर्ष तक इस वायुमण्डल में गति करता रहता है। इस प्रकार के परमाणुओं पर मानव को विचार और उनको संग्रहित करना चाहिए। यह मानव कैसे कर सकता है? यह वो मानव कर सकता है जिसके द्वारा आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों की उड़ान उड़ने वाला प्राणी हो। इसलिए दोनों प्रकार के विज्ञान को जानना चाहिए।

मुझे वह स्मरण है, रेवक ने यह कहा कि मैंने बारह वर्ष तक यह अभ्यास किया कि जल का पान नहीं करूंगा। योगाभ्यास करता रहा। मैं चन्द्रमा की किरणों की शीतलता से मैं अन्तरिक्ष से जल को लेता रहा। उसी से मेरी पिपासा शान्त होती रही। उसी से

मानो चन्द्रमा मेरे जल की पिपासा को शान्त कर देता था और मुझे जब क्षुधा की पीड़ा होती तो प्राण के द्वारा मैं परमाणुओं को खेचरी मुद्रा से मैं प्राणायाम करता हुआ मैं अपने में उन परमाणुओं को लेता रहा हूँ जिन परमाणुओं से मेरे अन्न की क्षुधा शान्त हो जाती थी। इस प्रकार का बारह वर्षों का मैंने कल्प किया है और उस कल्प करने का अभिप्राय यह हुआ, उस कल्प में यह शक्ति आ गई कि मैं परमराणुओं को अपनी आभा में प्राण के द्वारा अपने में सीच लेता हूँ। इन्हीं परमाणुओं को यन्त्र में ले करके यन्त्रलय में इनको स्थिर करके 100 वर्षों तक का उसमें शक्ति प्रदान कर सकते हैं अणुओं के द्वारा। तो मेरे प्यारे! यह महर्षि रेवक मुनि महाराज ने कहा था। तो आज बेटा! मैं यह नहीं कहता हूँ। गार्गी मुनि महाराज ने यह कहा कि धन्य हैं प्रभु!

परन्तु देखो, यह विज्ञान कैसा आता है? मुनिवरों! देखो, यह वैज्ञानिकों के रूप में आता रहता है। राजा रावण के पुत्र नरान्तक ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। उस यन्त्र को पुष्पांजली कृतअध्यानम यन्त्र, कहते थे। उन्होंने अन्तरिक्ष से परमाणु लेकर के और उन परमाणुओं को यन्त्र में स्थिर करके उन अग्नि के परमाणुओं को एकत्रित करके उन्होंने पुष्प यान का निर्माण किया था। और वह निर्माण कैसा हो रहा था। उस में मुनिवरों! देखो, एक ऐसा यन्त्र था जो पृथ्वी के गर्भ में जो सुगन्धित पदार्थ है उन्हें वायु में से स्वतः अपने में धारण करता रहता था, जिससे मानव सुगन्धित होता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, संसार को स्वर्ग बनाना है, ओजस्वी बनाना है, पवित्र बनाना है तो हे वैज्ञानिको! तुम्हारा आह्वान होना चाहिए। अन्तरक्षि से तुम परमाणुओं को लेते रहो, वायुमण्डल में जाते रहो।

मुझे वह काल स्मरण है पुत्रो! एक समय रेवक मुनि महाराज से गार्गी मुनि कहते हैं कि महाराज! मैं विन्ध्याचल पर्वत पर जा पहुंचा। उस पर्वत पर एक सुदेहनन्दन नाम के ऋषि कहते थे। जब मैं उनके द्वार पर गया तो मैंने यह कहा कि मैं उस यन्त्र में अपने सहस्रों वर्षों पूर्व महापिता और पिता और मेरे ब्रह्मवेत्ता आचार्य जो चौदहवें वंश में हुए थे, उन महापुरुषों की वाणी को यन्त्रें के द्वारा मैं ग्रहण करना चाहता हूँ। तो उस समय ऋषिवर ने यन्त्रशाला से मुझे चित्रवलियों में उस मेरी चौदहवीं प्रणाली से मानो

जिनका निधन हो गया था उनका चित्र भी, उनके शब्द भी जैसे वो ब्रह्मचारियों में उपदेश देते थे। वही शिष्य मण्डली भी विद्यमान है और मानो उनका उपदेश हो रहा है। ब्रह्मा का उपदेश होता हुआ मैंने अपने श्रोत्रों से श्रवण किया है।

मुनिवरों! जब उस समय ऋषि गार्गी से रेवक मुनि कहता है यह कोई आश्चर्य नहीं है। यह वायुमण्डल है। इस वायुमण्डल में शब्दों का कोष है। शब्दों का जो कोष है उसी में शब्दार्थ विद्यमान रहते हैं। और नाना प्रकार के परमाणुओं के मिलान से संग्रहित करके परमाणुओं को नाना चित्रावलियों के दिग्दर्शन होते रहते हैं। परन्तु आज का विचार विनिमय क्या कह रहा है पुत्रो! आज का यह वाक्य क्या कह रहा है? रेवक मुनि कहते हैं। गार्गे! पर्वतों की माला में ऐसे ऋषि ही दृष्टिपात ही नहीं, नाना ऋषि और हम भी इस प्रक्रिया को करते रहे हैं। हम इस विज्ञान में रमण करते रहे हैं। मुनिवरों! विचारधारा क्या है आज के इन वाक्यों की?

अग्नि विद्या में, अग्नि की तरंगों पर विद्यमान होकर के शब्द अन्तरिक्ष में गति करता है। वहीं तो शब्द हैं जो मुनिवरों! देखो, मानव के जीवन में प्रतिभा बन करके आते हैं। औजस्वी बन करके आते हैं। उन्हीं आवासों को हमें धारण करना चाहिए। परन्तु गार्गी मुनि एक वाक्य और कहने लगे, महाराज! मेरे जो प्रपिता थे उनके मैंने दर्शन किए हैं। वह पृथ्वी के गर्भ में समावेश हो जाते थे और पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार की अग्नि प्रचण्ड हो रही है, जो अग्नि नाना रूपों को धारण कर रही है नाना धातुओं को तपा रही है और नाना रूप उसके मुझे दृष्टिपात होते रहे हैं।

मेरे महापिता ने यह कहा था कि अग्नि का एक ही स्वरूप है और उस अग्नि के एक स्वरूप के नाना प्रकार के रूपान्तर मानो प्रत्येक धातु अपने में धारण करती रहती है। मेरे महापिता ने यह कहा तो मैंने यह कहा था। उस समय मेरा बाल्यकाल था। उनके चरणों को छू करके कि महाराज! वह जो एक ही अग्नि के स्वरूप के नाना रूप हैं ऐसा क्यों है? तो मेरे महापिता मानो शान्त हो गए। मैं यह जानना चाहता हूँ जब एक रूप उन्होंने कहा था, एक रूप क्यों है? और अनेक रूपों को कैसे धारण कर लेता है एक रूप? तो मुनिवरों! देखो, उस समय ऋषि रेवक मुनि कहता है, हे गार्गे! एक अग्नि

है उस अग्नि का एकांकी नामकरण है। जैसे ओइम् है मानो आइम् रूपी धागा है उसमें संसार का विज्ञान पिरोया हुआ है। एक ही ओइम् है, नाना प्रकार का विज्ञान उसमें निहित है। इसी प्रकार एकांकी अग्नि है और वह अग्नि कहीं शब्दों के रूप में रहती है। नाम उसका भी अग्नि है वह अग्नि कहीं काष्ट में रहती है। साकल्य को भस्म कर देती है वह भी अग्नि है। जो वैज्ञानिक तरंगों पर विमान होकर के उड़ान उड़ रहे हैं, सूर्य से जो नाना प्रकार की किरण आती हैं वह भी अग्नि का स्वरूप है। यह जो नाना स्वरूप हैं एक ही नाम है उसका। नाना रूपों में उसका आह्वान हो रहा है। जैसे मानो देखो, यज्ञशाला में अग्नि प्रचण्ड हो रही है। प्रवास्य अग्नि, अपना कार्य कर रही है, वही अग्नि है जो मुनिवरों! नाना रूप धारण करके, ओजस्वी बन करके वही अग्नि मेरे पुत्रें! अग्नि व्रतम देवः हिरण्यम् गच्छम् रुद्र भागः। , वही अग्नि है मेरे पुत्रो! जो नाना रूपों को धारण करके वह यज्ञशाला में कहीं तो मानव की भावना को ले जा रही है, कहीं देवताओं को साकल्य प्रदान कर रही हैं। उस अग्नि के यज्ञशाला में भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप बन जाते हैं। तो यह जो अग्नि है इसकी उड़ान बहुत है और एक ही अग्नि के नाना प्रकार के रूप माने जाते हैं। वह एकागी अग्नि नहीं मानो रूप अनेकानेक है। जैसे बट वृक्ष है, उसकी शाखा भी विद्यमान है, पत्र भी विद्यमान है, उसका फल भी विद्यमान है। परन्तु उसका कितना विस्तार है? बट वृक्ष के रूप का। इसी प्रकार यज्ञशाला का विस्तार बट वृक्ष से भी ऊर्ध्व गति में ले जाने वाला है। वह द्यु लोक तक ले जाने वाला है। शब्दों की धाराओं को लेकर के वो मानवता को तृप्त कर रहा है। आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि गार्गे ने जब यह कहा तो गार्गे के प्रश्नों का उत्तर देते हुए रेवक मुनि महाराज मौन हो गए।

मेरे पुत्रो! नाना ऋषियों के जो विचार हैं उनके जो गम्भीरतम रहस्य हैं, विचार हैं उनको लेकर के मानव अपने जीवन में ऊँची उड़ान उड़ता है। आज का विचार बेटा! क्या है? यह नाना प्रकार को अग्नि नाना रूपों को धारण कर रही है। हे मानव! तू इस अग्नि को लेकर के ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो। तू परमाणुओं को ले करके यानों का निर्माण कर।

इन्हीं किरणों को ले करके तेज को ले करके तू किरणों के साथ में गति करने वाला बन।

मुनिवरों! मुझे समय मिलेगा, मैं कल कोषों की चर्चा तो क्या करूंगा परन्तु देखो, संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या? क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी प्रश्न करते रहते हैं। इनके प्रश्नों का उत्तर मैं कल किसी रूप में परणित करूंगा। आज का विचार क्या? कि हम अग्नि के रूप को धारण करते चले जाएं। वह परमात्मा की गाथा गा रहा है कौन? एक एक परमाणु परमात्मा की गाथा गा रहा है। मेरे प्यारे! एक एक परमाणु मानव को ओजस्वी बना रहा है, तेजस्वी बना रहा है। आज का विचार विनिमय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुण गान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। ज्ञान और विज्ञान में रमण करते चले जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। अब वेदों का पाठ होगा।

३ 22 02 1977 पुष्प 34 पञ्च कोषो का वर्णन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसका जो ज्ञान और विज्ञानमय जगत् है, वह इतना अनन्त माना गया है कि वह सीमा से रहित है। वह सीमा में नहीं आता। वह परमात्मा चैतन है। उसी की चेतना से बेटा! यह शून्य जगत्, चैतन्य जगत् यह सर्वत्र क्रियाशील दृष्टिपात आ रहा हैं, यह सर्वत्र क्रियाशील है। क्रिया कर रहा है। प्रत्येक परमाणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक अणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक परमाणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक अणु क्रिया कर रहा है। प्रत्येक शब्द अपनी क्रिया कर रहा है। प्रत्येक प्राण अपनी क्रिया कर रहा है। मन अपनी क्रिया कर रहा है। विचार यह कि सर्वत्र ब्रह्माण्ड मेरे प्यारे! देखो, क्रियाशील है। अपने

अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहा है।

मुनिवरों! देखो, एक एक सूत्र क्रिया में लगा है। एक मानव वस्त्रों का निर्माण कर रहा है, एक मानव उन वस्त्रों को धारण कर रहा है। परन्तु जब उस वस्त्र का रूपान्तर हो जाता है, अथवा उस वस्त्र का स्थूल रूप समाप्त हो जाता है, तो उसका जो कण है, जो एक एक कण में अपने रमण कर गया है, वह अपने स्वरूप में गति कर रहा है। वह परमाणु रूपों में गति कर रहा है। और वह जो परमाणु है, पुनः उनका रूपांतर होता रहता है। परमाणुओं से पुनः स्थूल बनता है, और स्थूल बन करके बेटा! पुनः वस्त्रों का निर्माण हो जाता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो, सर्वत्र यह जो ब्रह्माण्ड है, परमात्मा के राष्ट्र में जो पदार्थ हैं, अथवा जितना भी यह जड़ जगत् अथवा शून्य जगत् है, इसका रूपान्तर होता रहता है। और एक दूसरे में गतिमान है।

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था मानव अपने मुखराबिन्द से शब्दों का उच्चारण कर रहा है। परन्तु उस शब्द में गति है और वह शब्द जितना भी सात्विक होता है, जितना भी मार्मिक होता है। जितना वह दर्शनों से गुथा हुआ होता है, उतना ही उस मानव का चित्र शब्द के साथ में जाकर के बेटा! द्यु मण्डलों का निर्माण करता है। मेरे प्यारे! वह द्यु मण्डलों का निर्माण कर रहा है। तो विचार क्या? मुनिवरो। देखो, जितना भी यह शब्द है, वह पवित्र होता है, बेटा! वह काल मुझे स्मरण आ रहा है, जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालय में बेटा! अध्यापन का कार्य करते रहते थे। अध्यापन में एक पंक्ति में ब्रह्मचारी विद्यमान हैं, और उसी पंक्ति में राजा का पुत्र है। उसी पंक्ति में प्रजा का पुत्र है उसी में मानो चारों वर्णों के पुत्र विद्यमान हैं। परन्तु शिक्षा एक ही प्रकार की है।

सबसे प्रथम मानव के लिए यह कहा गया है कि हे ब्रह्मचारी! तू अनुशासन में रह। तेरा अनुशासन विचित्र होना चाहिए। जब बालक अनुशासन में रहता है, तो आचार्य उससे पूर्व से ही अनुशासन में रहता है। जब दोनों अनुशासन में रहते हैं, तो जैसे मानव का शब्द अनुशासन में गति करके परमाणु अपनी गति में गतिमान हो करके दार्शनिक शब्द, सतोगुणी शब्द द्यु लोक को प्राप्त होता है। इसी प्रकार मानो विद्यालय ऊँचा बनता है।

क्योंकि देखो, वह जो शब्द है वही तो ऊँचा बना रहा है वही तो इस संसार का निर्माण कर रहा है। पुत्रो! शब्द ही राष्ट्र का निर्माण कर रहा है। शब्द ही मानो देखो, योगी को योगी बना रहा है। शब्द ही मुनिवरों! प्राणेश्वर कहलाता है। मानो शब्द अपने अपने आँगन में ध्वनि के साथ में शब्दों के रूप में परणित करते रहते हैं।

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था कि इन्हीं शब्दों को मानव जब साधना में प्रवेश करता है, तो उस समय वह सबसे प्रथम वह अन्न के क्षेत्र में प्रवेश करता हैं, अन्न के जब क्षेत्र में जाता है कि हमारा जो अन्न है, वह कैसा होना चाहिए? बेटा! उस अन्न में सर्व योग प्रयत्न विद्यमान रहते हैं। जितना भी योग साध्य है, जितना भी परमाणुवाद है, जितने भी मुनिवरों! मानव के अंग हैं वे सर्व मानव के अन्न में विद्यमान रहते हैं। आज कोई मानव यह कहता रहे कि अन्न किसी भी प्रकार का हो उसका विचारों पर अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता परन्तु जब मानव सूक्ष्म क्षेत्र में पहुंचेगा, योग के क्षेत्र रहस्यों में प्रवेश करेगा वहाँ उसे अन्न की धाराओं का ज्ञान प्रतीत होता है। अन्न की तरंगों की वहाँ प्रतीति होती है।

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। राजाओं के राजकोष का ऋषि मुनि अन्न ग्रहण नहीं करते। जो महान् तपस्वी होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना चाहते हैं, प्राण और मन की क्रिया को जानना चाहते हैं। मुनिवरों! राष्ट्र उन ऋषियों होता है, राष्ट्र से ऋषि नहीं होता। बेटा! यह वाक्य तुम्हारे विचार में आना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र को जन्म देने वाला ऋषि है। राष्ट्र को जन्म ऋषि देता है। राष्ट्र ऋषि को जन्म नहीं देता। तो मेरे पुत्रो! आज जब हम यह विचारते रहते हैं कि ऋषियों का जीवन महान् और पवित्र होता है। योगी जब प्राण के क्षेत्र में जाता है, मुझे वह वाक्य स्मरण आता रहता है, महर्षि याज्यवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान रहते। प्रातःकालीन भ्रमण करते तो मुनिवरों! देखो, कुछ अन्न लाते भयंकर वनों से, मानो उस अन्न को लाते थे जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं रहता था। केवल प्रकृति और परमात्मा का उस पर अधिपथ्य रहता था। तो मेरे प्यारे! देखो, उसको पान करते थे और पान करके मानो ऊँची उड़ान उड़ते रहते थे। और

उनकी कैसी उड़ान रहती थी? जो ब्रह्म में, प्राणों में मनों में बेटा! विचरण करते रहते थे।
मेरे प्यारे! देखो, सबसे प्रथम मानव को, साधक को यह विचारना है कि हमारा अन्न कैसा होना चाहिए? जिसे अन्नमय कोष कहा जाता है। अन्न के कोष के विचारों में जाना चाहिए। मेरे प्यारे! अन्न के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अन्न का निर्माण करने वाली मेरी प्यारी माता भी पवित्र होनी चाहिए। अन्न का पान करने वाला भी विचारों में पवित्र होना चाहिए। मेरे प्यारे! जिस प्रकार का, जिस भूमि का, जिस स्थली का अन्न होता है वह भी उतना ही पवित्र होना चाहिए। तो तीन धाराएं अन्न की होती हैं, उस अन्न में तीन प्रकार की तरंगें होती हैं, वे तरंगें ही मुनिवरों! साधक को ऊँचा बनाती हैं, मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने एक समय वर्णन करते हुए कहा था, कि अन्न का प्रभाव आज का समाज स्वीकार नहीं करता। मैं यह कहा करता हूँ, जीवन का हमारा कुछ सूक्ष्म सा अनुभव यह है, वह अनुभव यह है कि अगर अन्न पवित्र नहीं होगा तो कोई मानव ऋषि बन ही नहीं सकता। क्योंकि मुझे वे काल स्मरण आते रहते है, जिन कालों में ऋषि और मुनि थे, दो प्रकार की धाराएं होती हैं। एक मानव ऋषि कहलाता है, एक मुनि कहलाता है। एक मानव देखो, वृत्तियों में रमण करने वाला साधक कहलाया जाता है। प्रत्येक मानव को साधक बनाना है। साधक बनने वाला प्राणी मेरे प्यारे! मानवता में ऊँचा रहता है। इसलिए विचार विनिमय क्या? वेद का आचार्य यह कहता है, वेद का ऋषि यह कहता है, आचार्य यह कह रहा है कि हे मानव! तू अपनी मानवता में इतना ऊँचा बन साधक बनना है, तो इतना महान् बन कि तेरे व्याकरण की ज्योति भी मानो जो अन्न तेरे मस्तिष्क में जो मानो तेरे त्रिवेणी के स्थान में दो कृतिका होती हैं। वह जो कृतिका स्वरों में अपना स्वर ध्वनियां करती रहती हैं। हे योगी! तू उस अन्न को अपने में ग्रहण कर। तू अपने श्रोत्रों को बाह्य जगत् से आन्तरिक जगत् में लगा। उस अन्न को तू स्वीकार कर मानो जिससे तेरा जो व्याकरण है, तेरी जो स्वर तरंगें हैं वह मानो देखो, ब्रह्माण्ड की तरंगें तेरे समीप आती रहें। परन्तु देखो, आज में तुम्हें इतने

गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जाऊँगा।

केवल विचार विनिमय यह कि अन्न की तीन धाराएं हैं। अन्न पवित्र होना चाहिए। जब मानव का अन्न पवित्र हो जाता है, तो मुनिवरों! उसकी स्वतः ही तीन धाराएं बनना प्रारम्भ हो जाती हैं। तीन धाराएं क्या हैं? तीन धाराओं को बनाने वाला कौन है? वह अन्न है। क्योंकि उसी से तरंगें उत्पन्न होती हैं, और अन्न के शरीर में जाने के पश्चात् तीन प्रकार के भाग स्वतः बन जाते हैं। एक भाग तो स्थूल बन जाता है। स्थूल का स्थूल में रमण कर जाता है। द्वितीय भाग रक्त में परिवर्तित हो जाता है, और तृतीय भाग तरंगों में ओत प्रोत हो जाता है। यह मुनिवरों! देखो, अन्न के तीन प्रकार से, तीन प्रकार की धाराएं स्वतः निर्मित हो जाती हैं, और वह जो स्थूल है, मुनिवरों! वह तो पृथकता को प्राप्त हो गया और जो रक्त का सञ्चार है, मानो वह गति को प्राप्त हो गया है। मेरे प्यारे! वह गतिवान बन गया और वह जो तरंगें हैं, अन्तरिक्ष का वे निर्माण करती रहती हैं। तो विचार विनिमय क्या? कि वे जो तरंगें हैं, उन्हीं तरंगों से मानव को जिसको त्रिवेणी का स्थान कहते हैं, वहाँ कृतिका होती है, दो होती हैं, परन्तु मध्य में एक धारा कृतिका होती है। मानो जब वह रमण करने लगती हैं। वह साधक को इतना प्रकाश में ले जाती हैं, इतने महान् ऊँचे जगत् में ले जाती हैं, मेरे पुत्रो! देखो, अन्नमय कोष की तीनों जो श्रेणियां हैं। इन कोषों की तीन जो धाराएं हैं, वह अपने अपने कोष को एकत्रित करना प्रारम्भ करती हैं, और प्रारम्भ करके बेटा! देखो, जो मानव का ब्रह्माण्ड और पिण्ड की जो ऋषि मुनि कल्पना करते हैं, वह ब्रह्माण्ड और पिण्ड की जो ऋषि मुनि कल्पना करते हैं। वह ब्रह्माण्ड की कल्पना मुनिवरों! देखो, मानव अपनी तरंगों में ओत प्रोत हो करके उन कृतिकाओं में रमण करके बेटा! देखो, अपने में वह अनुभवी बन जाता है। वह स्वतः उसमें रमण करने लगता है। जब उससे रमण करता है, तो सर्व ब्रह्माण्ड का जो चक्र है। उसको वैज्ञानिक नाना प्रकार की तरंगों से नहीं नाना प्रकार के परमाणुओं के मिलान से नहीं जान सकता।

वह जो योगी है, वो जो सारे चक्र और यन्त्र उनका जो निर्माण है। उसमें प्राण और मन दोनों की टुक्टुकियां (संयुक्त क्रिया) दोनों का प्रहार होता है, मुनिवर! यह जो

ब्रह्माण्ड है, जो ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, लोक लोकान्तरों वाला जगत् है, उसको वैज्ञानिक यह कहते हैं कि एक दूसरा ब्रह्माण्ड, एक दूसरे में गति कर रहा है। एक दूसरी आभा, आभा में रमण कर रही है। मुनिवरों! देखो, यह जो प्राण है और मनसत् है इन दोनों का सन्निधान दोनों का सम्मेलन होने से मानो एक दूसरा गति करके मुनिवरों! मानव बाह्य जगत् में आन्तरिक जगत् के ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगता है। और वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड की जो कल्पना है। मेरे प्यारे! वह कल्पना बनकर के ही नहीं रहती। वह अपने स्वरूप में गति करने लगता है। अपने स्वरूप में ही अनुभव करने लगता है। अपने ही स्वरूप में पृथ्वी के गर्भ में जब वह जाता है। अपने ही स्वरूप में अग्नि की धाराओं में, अग्नि की ज्वालाओं में निहित हो जाता है। अग्नि की तरंगों में रमण करने लगता है। मानो अपने ही स्वरूप में वह जो योगेश्वर है, वह वायु और अन्तरिक्ष दोनों के परमाणुओं को जानता हुआ इस ब्रह्माण्ड की सर्वत्र कल्पना उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है।

मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें साधना की चर्चा करने आया था। साधना की चर्चा तो प्रारम्भिक यह है, जो बेटा! मैंने तुम्हें उच्चारण किया कि अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से ही मुनिवरों! रथ बनता है। वह साधना का एक रथ बनता है, और उस रथ में विद्यमान होने वाला कौन है? मेरे प्यारे! जीवात्मा है। जीवात्मा बेटा! रथ पर विद्यमान हो करके ब्रह्मा के द्वार को चलता है। ब्रह्म के आँगन को चलता है, और जब ब्रह्म के आँगन को चलता है तो मुनिवरों! ब्रह्म के आँगन में उस रथ में विद्यमान होने वाले जीवात्मा के समीप पृथ्वी के जो आठों अंग हैं, योग के जो आठों अंग है। पंखड़ियों से रथ का निर्माण होता है बेटा! आठों जो अंग हैं योग के धारणा में, समाधि में, धारणा, ध्यान, समाधियों में परणित होता हुआ वह ऐसे रथ मैं जीवात्मा विद्यमान हो जाता है कि उस रथ का जो गमन है, वह ऊर्ध्व गति को जा रहा है। वह जो विमान है साधक का मुनिवरों! देखो, वह ऊर्ध्व गति को जा रहा है। अष्ट चक्राः नव द्वारा। देखो, आठों जो चक्र हैं, वह जो ब्रह्मात्मा है, ब्रह्मात्मा क्यों कहलाता है? क्योंकि उसका जो विचार है उसके जो उत्थान हैं, वह ब्रह्म के लिए होता जा रहा है। तो मुनिवरो? वह जो आठों

प्रहरी हैं, यह आठों जो चक्र हैं। इनको पार होता हुआ, ओ३म् भुं, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्, मानो इनमें रमण करता हुआ एकांकी सत्य में रमण करता हुआ मुनिवरों! वह आठों अंगों को पार करता हुआ, आठों चक्रों को पार करता हुआ, वह सत्य में रमण करता है। उसे संसार में मिथ्या प्रतीत नहीं होता स्र्वस्व। क्योंकि वह स्वयं शब्द है, शब्द की कल्पना है, शब्द का साथी बना हुआ है, और मुनिवरों! यह ब्रह्माण्ड उसे सत ही सत प्रतीत होने लगता है। हे प्रभु! यह सत ही सत् है, मानो क्रिया है, क्रिया में सत्यता है, और वह जो सत्य है, उसमें मिथ्यावाद नहीं होता। अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता, वहाँ अन्धकार नहीं होता। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में बेटा! प्रकाश ही प्रकाश रहता है। वहाँ अन्धकार नहीं होता।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार देना केवल यह चाहता रहता हूँ कि आज हम मुनिवरों! आठ चक्रः नव द्वारः जिनके ऊपर मानो सयंम करना चाहते हैं। इनके ऊपर सयंम की करते हुए नाना प्रकार की धाराओं को पंखड़ियों में रमण करना चाहते हैं। मेरे पुत्रो! आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैंने अभी अभी कुछ तुम्हें सूक्ष्म परिचय दिया है, और वह परिचय क्या है? कि अन्नादम् भूतं प्रवेः। अन्नपवित्र होना चाहिए। अन्नों में जो कोष है इसी कोष को हमें सबसे प्रथम जानना है।

उसके पश्चात् अन्न कोष के पश्चात् मुनिवरों! वह विप्रः लोकः। प्राणों में रमण करता है। प्राणों को जानता है! एक दूसरे में प्राणों को जानता हुआ वे जो तरंगें हैं, उन्हीं तरंगों में प्राण ओत प्रोत रहता है वह प्राण कोष में रमण करता है। मानो साधक उनका मिलान मिलाता है, साधक मिलाता नहीं है मानो वह तो स्वतः अन्नमय कोषों के साथ साथ प्राणमय कोष में रमण करता रहता है। स्वतः ही उसे मानो अप्रः प्राप्त होती रहती है।

उसके पश्चात् वह मनोमय कोष में चला जाता है। यह जो मानव के द्वारा जो मन है, यह मन प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु माना जाता है। सबसे सूक्ष्म तन्तु है। उस तन्तु को जानने वाला क्योंकि इसी मनो में मेरे प्यारे! सर्व ब्रह्माण्ड क्या, मानो जितना भी यह परमाणुवाद,

सृष्टिवाद है। यह मन की ही रचना है, और मन ही मुनिवरों! इसमें निहित रहता है। यह मन ही इनको एकत्रित करता है। वह कोष कहलाता है। मनोमय कोष कहलाया जाता है। वह जो मनोमय कोष है, मेरे प्यारे! जितना भी प्रकृति का यह प्रपञ्च है, जितनी भी प्रकृति की यह रचना है, चाहे वह अणुवाद में है, परमाणुवाद में है, मेरे प्यारे! यह सब मन की रचना, सबका निर्माण करने वाला है। मानो विभक्त करने की क्रिया इसमें विशेष है, विभक्त क्रिया को कोष मेरे प्यारे! इसमें विद्यमान रहता है। चाहे वह पृथ्वी में विभाजन होना हो चाहे विचारों में विभाजन हो रहा हो, चाहे परमाणुवाद में विभाजन हो रहा हो चाहे मेरे प्यारे! लोक लोकान्तरों के रूप में विभाजन हो रहा हो, चाहे अग्नि के रूप में विभक्त क्रिया दृष्टिपात हो रही हो। यह विभाजन करने वाला कौन? प्रकृति का एक सूक्ष्म तन्तु, एक तरंग है, जिस तरंग को मेरे प्यारे! मनुष्यतत्व कहा जाता है। वह मन है उसे मनोमय कोष कहते हैं, जो विभाजन कर रहा है, वो विभक्तता जिसमें भी है वह सब मनों के कारण है।

मेरे प्यारे! यह विभाजनवाद उस काल में त्यागता है। जिस काल में बेटा! प्राणों से इसका मिलान हो जाता है। प्राणों में जब इसकी विचारधारा उसके गर्भ में परिणित हो जाती है। तो मेरे प्यारे! मन का वाहक् समाप्त हो जाता है। मन की धाराएं, मन का विभक्त होना, मन में विभाजनवाद की क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं। मन की आभा समाप्त होने के पश्चात् मेरे पुत्रो! मानव शून्य गति को प्राप्त होता है। परन्तु वह जो आत्मा इन तीनों चक्रों की आभाओं में विद्यमान है। जो आत्मा ऊर्ध्व गति को जा रहा है, अन्न को त्याग रहा है मानो प्राणों मय कोषों को त्याग रहा हैं मुनिवरों! मनोमय कोषों को त्याग रहा है। वह कहाँ जा रहा है?

जो मन के पश्चात् विज्ञानमय कोष की प्रतिभा आती है। यह जो विज्ञान है, मुनिवरों! यह दो प्रकार का माना गया है। एक विज्ञान वह कहलाता है, जिसे भौतिकवाद कहते हैं, जिसमें परमाणु विद्या है। मानो वह मन के अन्तर्गत ही आती है। परन्तु एक विचारधारा, एक विज्ञान की तरंगें हैं, जो यौगिक कहलाती हैं। एक रूढ़ि होती है। रूढ़ि वह कहलाती है, जो प्रकृति के सन्निधान से आती है, जो मनस्ता के सन्निधान से आती

है।

परन्तु देखो, यौगिक वह होती है जो मेरे प्यारे! अनुभव में आती है, वहाँ मनस्तव काम नहीं आता। वहाँ केवल आत्मा में परमात्मा के गुण आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मुनिवरों! जैसे अग्नि में लौ देने के पश्चात् उसमें अग्नि के परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं। अग्नि के परमाणुओं से मानो वह अग्नि का स्वरूप धारण कर लेती है। जब अग्नि के स्वरूप को धारण कर लेती है, तो मुनिवरों! अग्निमय बन जाती है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, आत्मा जो चेतना है, यह प्रकृति के गुणों को त्याग करके यह परमात्मा के गुणों में गुण वान् होने लगता है, और जब परमात्मा के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं। तो मुनिवरों! यह विज्ञानमय कोषों को भी त्याग करके आनन्द के क्षेत्र में रमण कर जाता है। यह आनन्द ही आनन्द में प्रवेश करता है। क्योंकि उसके गुण इसमें विशेष आ जाते हैं। उस आनन्द को सोचता रहता है। उस को हमारे यहाँ आनन्द कहते हैं। क्योंकि परमात्मा आनन्द है, परमात्मा में विडम्बना नहीं है। परमात्मा स्वतः आनन्द है। उस आनन्द को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्द के क्षेत्र में बेटा! विभोर हो जाता है। मानो ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। परमात्मा जैसे रचयिता है, और इसमें रमण कर रहा है। परन्तु इससे पृथक् भी है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, आत्मा में उन गुणों का गुणा धान हो जाता है और गुणा धान होने के पश्चात् मानव उस आनन्द में विभोर हो जाता है। अपते में प्रतिष्ठित हो जाता है। अपने में रमण करता रहता हैं तो मुनिवरों! विचार विनिमय क्या? कि यह योगी बाह्य जगत् में नहीं आता, वो योगी बाह्य जगत् में न आ करके मुनि बन जाता है, मानो वह तो मधुर विद्या में रमण करता है। उस मधु विद्या में रमण करने वाला बेटा! अन्न को जानता है।

विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। यह तो तुम्हें प्रतीत ही हो। मैं तो मानो अंकुरों की चर्चा कर रहा हूँ। मैं वृक्ष की चर्चा नहीं कर रहा। जिन अंकुरों से वृक्ष बनता है, केवल साधना की चर्चा कर रहा था। हे साधक! यदि तू साधना की चर्चा कर रहा था। हे साधक! यदि तू साधना में जाना चाहता है, साधना को जानना चाहता है, साधना में प्रवेश करना चाहता है, तो सबसे प्रथम मौन

होकर के तेरा अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न का अभिप्राय यह है कि जो भी कुछ तुम भक्षण करते हो, जिससे तुम्हारी तृप्ति होती है, जो सर्वत्र अन्न माना गया है। मैंने बहुत पुरातन काल में पुत्रों! तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि संसार में दो प्रकार के अन्न होते हैं। एक अन्न वह होता है जो मुनिवरों! योगेश्वर पान करता है। एक अन्न वह होता है जिसको पान करने से मानव स्थूल को प्राप्त होता है। तो मुनिवरों! दो प्रकार का अन्न नाना रूपों में रमण कर रहा है। एक अन्न आत्मा का है और एक अन्न शरीर का है। अहाः, स्थूल अन्न को पान करने से मानव का शरीर स्थूल बनता है।

सूक्ष्म ब्रह्मेः आत्मा का ज्ञान विज्ञान है। जो आध्यात्मिकवाद है, आध्यात्मिक चर्चाएं हैं, वह आत्मा का भोजन है। इन दोनों प्रकार के भोजों को हमें ऊँचा बनाना है। दोनों प्रकार के भोजन को महान् बनाना है। जिससे दोनों प्रकार के भोजन को हम पान करते हुए, यह जो संसार है, यह दोनों प्रकार का भोज लेकर के मानो अपने में प्रतिष्ठित हो जाता है। आओ मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय बेटा! मुझे कुछ चर्चाएं महर्षि विभाण्डक मुनि, महर्षि दधीचि से कुछ चर्चाएं करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि दधीचि मुनि महाराज जब भयंकर बन में विद्यमान रहते थे तो एक समय कहा गया महाराज! तुम भयंकर वन में रहते हो, क्या पान करते हो? उन्होंने कहा मैं अन्न को पान करता हूँ। वह ऐसा विचित्र था। महात्मा दधीचि ने प्राणायाम किया और प्राणों का एक सूत्र मिलाया, मुनिवरों! वायु मण्डल में जो परमाणु गति करते हैं, उन परमाणुओं से अपने भोजनालय की तृप्ति कर लेते थे। मानो उसी से वह तृप्त हो जाते थे और तृप्त हो करके मुनिवरों! देखो, जैसे कोई मानव अन्नमय कोष को जानता है, प्राणमय कोष को जानता है। दोनों कोषों का मिलान करना जानता है। जैसे फल विद्यमान है तो मुनिवरों! देखो, अपने नेत्रों की ज्योति और घ्राण से जो प्राण आता है, वह प्राण का और ज्योति का दोनों का मानो एक तारतम्य मिल जाता है, और तारतम्य मिल करके उस समय वह सूर्य प्राणायाम करता है, और सूर्य प्राणायाम करता हुआ उसमें खेचरी मुद्रा लगाता है। तो मुनिवरों! वह साधक फलों के सूक्ष्म अणु को अपने

में धारणा कर लेता है। तो मुनिवरों! देखो, वह अपने में तृप्त हो जाता है।

साधना की जहाँ चर्चाएं हैं मैं इस गम्भीर और विचारणीय क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, कि मानव साधना में क्या क्या कर सकता है? जब साधना प्रारम्भ करता है, तो सबसे प्रथम अन्न को सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के अन्नों को जानता है। सूक्ष्म अन्न कैसा होता है? और स्थूल अन्न कैसा होता है? मानो, देखो, स्थूल अन्न जो है वह मानव के शरीर को वरिष्ठ बनाता है। सूक्ष्म जो अन्न हैं वह प्राण को ऊँचा बनाता है। जब प्राण ऊँचा बनता है, तो उससे मनोबल आता है। जब मन ऊँचा होता है तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एक सूत्र में आ जाते हैं। मानो चित्त में जो मन का कोष है, मनोमय कोष है, वह कैसा कोष है? मेरे प्यारे! वह इतना विचित्र है कि करोड़ों करोड़ों जन्मों के संस्कार मुनिवरों! चित्त विद्यमान होते हैं। वह मनों का ही तो कोष कहलाता है। क्योंकि मन बुद्धि, चित्त, अहंकार ये मन की ही धाराएं हैं। ये मन की ही तरंगें हैं। मेरे पुत्रो! देखो, उसी से अन्तरिक्ष का निर्माण होता हैं उसी से वह नदियों का निर्माण कर लेता है, उसी से वायु का निर्माण कर लेता है, उसी से अग्नि का निर्माण कर लेता है। वही मुनिवरों! नाना निर्माण करता हुआ, इस चित्त में जो संस्कार है उन संस्कारों को वह सूक्ष्म बना देता है और स्वतः सूक्ष्म बन करके मानव विज्ञान के आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता हुआ वे परमपिता परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! सूक्ष्म अन्न से मानव का प्राण ऊँचा बनता है, प्राणों से मन ऊँचा बनता है और जब मन पवित्र और ऊँचा बन जाता है, तो इसमें चंचलता नहीं रहती, विडम्बना नहीं रहती। यह विज्ञानमयी तरंगों में ओत प्रोत होता हुआ यह आत्मा आनन्द को प्राप्त होता है। तो विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें बहुत सूक्ष्म रहस्य में ले गया हूँ। तरंगों में ले गया हूँ। परन्तु इसका एक दूसरे से सन्निधान, एक दूसरे से मिलान करने को आवश्यकता नहीं रहती। मानव का प्रारम्भिक जीवन ऊँचा बन जाता है, प्रारम्भिक साधना ऊँची बन जाती है। प्रारम्भिक साधना में मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके

उनके चरणों की वन्दना करते रहते थे। अध्ययन करते रहते थे। जब प्रश्न करते थे तो मेरे प्यारे! वह पुनः सुन्दर उत्तर देते थे। जब वह उत्तर दिया करते थे उससे मुनिवरों! हमारा आत्मा पवित्र हो जाता और पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करते थे, प्रभु! हमें साधना में परणित करा दो, हम साधना में प्रवेश करना चाहते हैं।

तो पूज्यपाद गुरुदेव हमें प्राणों की दुकदुकी दिया करते थे। मानो अन्न की दुकदुकी दिया करते थे। अन्न और प्राण दोनों का सम्बन्ध है। क्योंकि प्राण ही तो अन्न को निगल जाता है, प्राण ही संसार को निगल जाता है। यह प्राण ही है मेरे प्यारे! जो प्रकृति को अकिंचन बना देता है। यह प्राण ही हैं, जो विस्तार रूप बना देता है। यह प्राण ही है, जो अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने लगता है। तो यह प्राण ही प्राण अपना कार्य करता है। प्राण का जो भोज है। वह अन्न है अन्न को पान करता है। क्योंकि अन्न उसी में समाहित हो जाता है। तो इसलिए मेरे प्यारे! जब अन्न प्राण में समाहित हो जाता है, प्राण मन में समाहित हो जाता है और क्योंकि जब प्राण के स्वरूप में जब यह मन प्रवेश कर जाता है, इसीलिए हमारे ऋषि मुनि प्राणायाम किया करते हैं। प्राणायाम करने वाला जो महापुरुष होता है। उस प्राणायाम करने वाले को कोई रोग नहीं होता। प्राणायाम करने वाले को बेटा! विडम्बना नहीं होती। प्राणायाम करने वाले का संसार में कोई शत्रु नहीं होता। प्राणायाम करने वाले का संसार भी मित्र बन जाता है। क्योंकि यह प्राण ही संसार में ओत प्रोत रहा है। जब यह प्राण ही प्राण है तो कौन इसका शत्रु बन पाएगा। यह प्राणायाम कहाँ किया जाता है? यह मन ही तो प्राण में समाहित हो जाता है। और जब यह मन प्राण में समाहित हो जाता है। और जब यह मन प्राण में समाहित हो जाता है, तो विभक्त क्रिया समाप्त हो जाती है। जब विभक्त क्रिया नहीं रहती, तो राग द्वेष नहीं रहता। जब राग द्वेष नहीं रहता और प्राण मन में प्रवेश कर गया है, तो उसका कोई शत्रु नहीं और जब शत्रु नहीं तो बेटा! वह संसार का मित्र बन जाता है। आओ मेरे पुत्रो! हमें विश्वामित्र बनना है, विश्व का मित्र।

४ 25 02 1977 पुष्प 34 साधना क्या है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वह परम पिता परमात्मा महान् और प्रतिभाशाली कहलाया जाता है। क्योंकि उसी की प्रतिभा से यह संसार अथवा यह ब्रह्माण्ड अपने में क्रियाशील हो रहा है। जितनी भी क्रियाएं तुम्हें दृष्टिपात होती हैं उन सर्वत्र क्रियाओं का जो उद्बुद्ध करने वाला है वह मेरा देव परमपिता परमात्मा हो कहा जाता है। क्योंकि वह अमूल्य चेतना है।

यहाँ मानव अपनी अपनी आभा के अनुसार अपनी अपनी उड़ान उड़ता रहता है। कोई मानव साधना की उड़ान उड़ता रहता है। कोई मानव अपने प्राणों का निरोध करता रहता है। कोई परमाणुओं को निरोध करता रहता है। मानो कोई कर्मकाण्ड की वेदी पर अपने विचारों का समन्वय करना चाहता है। तो यहाँ नाना प्रकार की आभाएं, नाना प्रकार की विचार धाराएं मानवीय पद्धति कहलाती हैं। यह मानवीय विचारधारा है और उन विचाराधाराओं के साथ में मानव की पद्धतियों का निर्माण होता है और उन नाना प्रकार की पद्धतियों का जब निर्माण होता है तो मुनिवरों! इस समाज का जो विचार है, मानो राष्ट्रीय सम्पदा है वह मानवता में परणित हो जाती है।

आओ पुत्रो! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ, केवल तुम्हें यह विचार देने के लिए आए हैं कि मानव की साधना क्या है? हमारे यहाँ परम्परा में ही जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा प्रवेश करते थे तो गुरुओं के चरणों में ओत प्रोत हो करके उन से कुछ प्रश्न किया करते और प्रश्नों के साथ में वह आचार्य हमें एक साधना की पद्धति, साधना की आभा नियुक्त करते रहते। मेरे पुत्रो! आचार्यों ने बहुत ऊँची उड़ान उड़ी साधना के सम्बन्ध में। प्रत्येक मानव प्राणायाम जानना चाहता है प्राण की प्रतिभा को जानना चाहता है। तो नाना प्रकार के रूपों में प्राण की विद्या निहित रहती है। प्राणों की विद्या को जो मानव जानता है, वह इस संसार में नाना प्रकार की उड़ान उड़ता है। आध्यात्मिक वाद और भौतिक मानो दोनों की उड़ान उड़ता रहता है। तरंगों से ऊँचा

बनता रहता है। तरंगों के पश्चात् मुनिवरों! वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव साधना के क्षेत्र में जाने के लिए तत्पर रहता है।
एक समय मेरे पुत्र ने यह वर्णन कराया कि प्राणों का निरोध करने का नाम साधना है। परन्तु प्राण का निरोध किस से किया जाता है? जो प्राणों का विभाजन करता है और यह विभाजन कौन करता है? मुनिवरों! उसको हमारे यहाँ मनस्तव कहा जाता है। वह जो मनस्तव है, वह जब प्राणों से अपना निर्माण करता है, सन्धि करता है तो उस के नवीन नवीन निर्माण स्वतः होते रहते हैं। उसको निर्विकल्प विचार कहा जाता है।
परन्तु रहा यह कि जब तक मानव आसन को शुद्ध नहीं कर पाता। जब तक हम यही नहीं जानते कि हम किस स्थली पर विराजमान हो करके कौन सी वार्त्ता को लाना चाहते हैं? कौन से विचारों को हम किस क्षेत्र में लाना चाहते हैं? मुनिवरों! देखो, वह मानव, मानव की आभा में परणित नहीं होता। वह अपनी साधना में परणित नहीं होता। एक मानव उड़ान उड़ता रहता है। हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की उड़ान परम्परा में रही है। मेरे प्यारे! देखो,! जैसे बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा कहलाती है। बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा यह चार प्रकार की तरंगें बेटा! मनस्तव की मानी जाती हैं और यह कितनी ऊँची उड़ान है? मेरे पुत्रें! बुद्धि से द्यु जितना दृष्टिपात आता है उसका सम्बन्ध नेत्रों से बाह्य जगत् से है। उसके पश्चात् बुद्धि से मेधा आता है। मेधा का सम्बन्ध मानो प्रकृति में जो परमाणु विद्या है। नाना प्रकार की परमाणु विद्या है, उसको वह शोषण कर रहा है। उसे अपने में धारण करना चाहता है। उसे अपने में लाना चाहता है। परन्तु इसी प्रकार बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा में मौन होना प्रारम्भ करता है। मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा में परमात्मा का साक्षात्कार मानो उस में आभायित होता रहता है। उसमें एक मानवता अप्रीत होती रहती है।
आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तो तुम्हें देने के लिए नहीं आया हूँ। तो विचार विनिमय यह है कि प्रत्येक मानव साधना के क्षेत्र में बेटा! परम्परा में हम कल्पना करते रहते हैं। विचारते रहे हैं कि साधना क्या है? तो मुनिवरों! साधना सब से प्रथम मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था कि बाह्य जगत् में मानव को साधक बनना चाहिए। नाना

प्रकार का चमत्कारिक यह जो जगत् है यह मानव में चंचलता ला देता है। आज हमें सबसे प्रथम अध्ययन के द्वारा, चिन्तन के द्वारा इस बाह्य जगत् को विजय करना है। हमारे यहाँ परम्परा से ऐसा ही कहा जाता है कि बाह्य जगत् है हमारी आन्तरिक प्रवृत्तियां जो बाह्य जगत् में आ गई हैं, बाह्य जगत् वाला जगत् है। उसे हमें जानना है तो हम इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना सकते हैं। हम इन्द्रियों के विषयों को एकत्रित कर सकते हैं। और एकत्रित करके प्राण में निरोध कर सकते हैं। जब उनका निरोध होता है तो मुनिवरों! मानव को एक मार्ग प्राप्त होता है। मानो साधना का मार्ग प्राप्त होता है।

साधना कई प्रकार के माने जाते हैं। एक साधना तो माननीय चिन्तन की साधना है। एक स्थली पर मानव विद्यमान रहता है, और वह साधक बनता है, साधक की भांति ऊँची उड़ान उड़ता है। साधक मानो साधना में प्रवेश करना चाहता है। तो वह जो साधक बन गया है, वह एक परमात्मा की आभा में रमण करना चाहता है। तो मुनिवरों! देखो, वह साधना कहलाती है। क्योंकि वह प्राण और मन दोनों में संगतिकरण चाहता है। दोनों का निर्माण करना चाहता है। मुनिवरों! मानव के द्वारा स्वतः होती रहती हैं, और वह साधना का एक अमूल्य विषय बन जाता है। इसीलिए यह मानव का सबसे प्रथम चिन्तन है। उस के पश्चात् निदिध्यासन है। मानो देखो, अपने आसन पर विद्यमान हो करके वह संकल्प के साथ आसन पर विद्यमान होता है। वह आसन का मानो शोधन करता है। अहा! आसन को एक महा कृतिमा में ले जाना चाहता है तो आसनम् कहलाया गया है।

तो इसीलिए मेरे पुत्रो! संसार में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या जो साधक बनना चाहता है, वह अपनी साधना को चिन्तन के द्वारा, आहार के द्वारा, व्यवहार के द्वारा, मुनिवरों! अपने विचारों को ऊर्ध्व गति में ले जाना प्रारम्भ करता है और साधना ऋषि मुनियों के काल में वह कैसी साधना है? ऋषि मुनियों का काल किस काल में नहीं रहता? ऋषि मुनियों का काल तो सदैव रहता है। परन्तु सदैव जो जानने की आवश्यकता है, जानना चाहिए। मुनिवरों! प्राणायाम करना चाहिए। स्वतः आसन जब बन जाता है

तो रात्रि समय हम योग का चिन्तन करते हैं। हम अपने प्राणों को मन से मिलान कराना चाहते हैं। जो मन स्वप्न में भी जाता है। जो मन सुषुप्ति में भी प्रवेश करता है। सुषुप्ति वाले मन को एक सूत्र में लाना है और एक सूत्र में ला करके वह मानो अभ्यस्त कर रहा है। जब वह अभ्यास कर रहा है, अभ्यस्त हो रहा है। तो मेरे पुत्रो! वह ब्रह्म के लोक में प्रवेश करना प्रारम्भ करता है। ब्रह्म के लोक में जब प्रवेश करता है तो मुनिवरों! जैसे मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था क्योंकि मन और प्राण दोनों का सन्निधान करना है मानो उनका निरोध करना है। निरोध कैसे होता है? (1) अध्ययन के द्वारा, (2) चिन्तन के द्वारा, (3) प्राण के द्वारा। क्योंकि प्रायः जब सायंकाल को कोई योगी आसन पर विराजमान होता तो श्वास की गति में एक तरंगवाद होता है और मनोनीत गतियों में जब एक व्याकृत होता है। तो मुनिवरों! श्वास के साथ वह अपने मन का तारतम्य लगा रहता है। क्योंकि सर्वत्र यह जो मन है, यह स्वप्न को भी प्राप्त होता है। स्वप्न में भी दुष्ट स्वप्न होते हैं, उन में भी यह प्रवेश करता है तो कोई वाक्य नहीं। हृदय में भी प्रवेश करता है। आभाओं में भी प्रवेश करता है।

परन्तु आज मुनिवरों! मैं प्रवेश की चर्चा नहीं करूंगा। विचार यह देना चाहता हूँ कि मानो देखो, अपने चिन्तन की अवस्थित ब्रह्म लोक में प्रवेश करता है। मेरे प्यारे! जब यह निद्रा में तल्लीन होता है, सुषुप्ति में चला जाता है तो मुनिवरों! प्रत्येक प्राण के साथ मानो प्राण ही गति कर रहा है। तारतम्य लग रहा है। सुषुप्ति अवस्था में वह चिन्तन करे या न करे परन्तु उसका महापुरुष का ऐसा तारतम्य चल रहा है, जैसे माला में मनके होते हैं, और माला के मनके एक सूत्र में पिरोए जाते हैं। तो यह मन की नाना प्रकार की चंचलता है। वह प्राण रूपी सूत्र में ओत प्रोत हो जाती है। जब वह प्राण रूपी सूत्र में ओत प्रोत होती है, तो प्राण रूपी क्षेत्र में प्रवेश करके उसका चिन्तन प्रारम्भ रहता है। चिन्तन की गतियां चलती रहती हैं। परन्तु रहा यह आगे चल करके मुनिवरों! जब ये गतियां प्रारम्भ रहती हैं, तो एक प्राणायाम ऐसा है, जो प्रातःकालीन मध्य रात्रि में भी किया जाता है। मानो शून्य गति को समाज प्राप्त हो रहा है। परन्तु मानव एक आभा में एक ही चित्रशाला में प्रवेश कर गया है। कि चित्रशाला में ओत प्रोत होने के

पश्चात् मेरे प्यारे! वह स्वतः आसन पर विद्यमान हो करके वह प्राणों का पुनः निरोध करता है और वह रेचक के द्वारा करता है। कुम्भ के द्वारा कर रहा है। रेचक और कुम्भक करना यह प्राण देखो, इस में ओ३म् की ध्वनि होना उस सूत्र में इसको पिरोने का नाम साधना कही जाती है।

रहा यह कि साधना में योगी को कैसे अनुभव होता है? मेरे प्यारे! अनुभव के कई प्रकार हैं। एक तो जैसा भी मन में चित्त में संस्कार होगा वह संस्कार प्राणायाम करने वाले प्राणी के उद्बुद्ध होने प्रारम्भ हो जाते हैं। वह उनके रूप में परिणत होने प्रारम्भ हो जाते हैं। तो मुनिवरों! वह जो नाना प्रकार का स्वरूप है वही संकल्प के साथ में मानव को अनुभूति होने लगती है। अनुभूति क्योंकि उसके मन के संकल्प के साथ में यदि मन का संकल्प नहीं होगा मनस्तव नहीं होगा तो संकल्प से कदापि भी मानव ऊँचे नहीं बन सकते, न संकल्प ही ऊँचा बन सकता है। तो इसीलिए मुनिवरों! विचार विनिमय क्या कि मानव की जो साधना है, मानव जो साधना में प्रवेश करना चाहता है वह साधना वही कहलाती है हमें प्राणायाम करना चाहिए। मानो हमें कुम्भक और नाना प्रकार की प्राण की आभाओं में रमण करता हुआ रेचक, कुम्भक और पूरक मानो करता रहता है। तो मेरे पुत्रो! धीमे धीमे संयम करना, धीमे धीमे अपने को ईश्वर में प्राणिधान करना यह परम्परा की योग्यता है, परम्परा का एक विचार है। जो परम्परा में ही ऊँचा बनाना चाहता है तो यह परम्परा कहलाती है।

आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का विचार केवल यही कि मानव को अपनी साधना में परणित रहना चाहिए। साधना क्या है? साधना इसी को कहते हैं एक दूसरी आभा में रमण करना। जैसा मेरे पुत्र ने कहा। एक मानव यह कहता है कि समाधिस्थ हो जाएं। क्योंकि निर्विकल्प समाधि होना कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि निर्विकल्प है उसकी कल्पना जब नहीं की जाती तो साकार रूप में उसकी साधना भी कैसे बन सकती है? तो यह विचार में नहीं आता। इसीलिए हमारा ऋषि कहता है कि हम साधना के उस क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं जहाँ योगी अपने मस्तिष्क को विचारता है। मस्तिष्क की आभा में रमण करता है। तो आओ मेरे प्यारे! उस आभा में रमण

करने वाला जो प्राणी मानो योगेश्वर है, योगी है वही प्राण को जानता हुआ इस सागर से पार होने का प्रयास करता है। परन्तु आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं व्याख्याता नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ और परिचय यह कि नाना प्रकार हैं साधना के। साधना में जो प्रवेश करता है इस आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र और प्राण के ऊपर दो सूत्रों में परमात्मा को अपने में पिरो लेता है और अपने में पिरोता हुआ मुनिवरों! वही साधना करने वाला प्राणी मानवीय लोकों को प्राप्त होता रहता है। आज का हमारा विचार विनिमय क्या है?

आज का हमारा वेद का ऋषि यह कहता है, हे मानव! तू साधना में परणित हो। तू साधना में रमण कर। क्योंकि साधना ही तेरा जीवन है, साधना ही तुझे ऊँचा बनाती है। इसीलिए प्रत्येक मानव को साधक बनना चाहिए। साधना में परणित रहना चाहिए। जो मानव साधना में रहता है उस मानव की मृत्यु संसार में नहीं होती। मृत्यु को वह अपने आँगन में नहीं लाता। मृत्यु से वह मानव उपरामता को प्राप्त हो जाता है। तो इसीलिए मुनिवरों! मृत्यु की कल्पना करना, मृत्यु में लाना यह महापुरुषों का कार्य नहीं। महापुरुषों का कार्य तो परम्परा से चित्त की वृत्तियों को निरोध करना है। चित्त की वृत्तियों को जानना है। जानकर के उसको अपने आँगन में लाकर के उसके रूपों को बनाना है। यह प्रत्येक मानव का जीवन है। आओ मेरे पुत्रो! यह आज का हमारा वाक्य क्या उच्चारण कर रहा था? हमारा जीवन क्या कह रहा था? हमारी मानवता क्या कह रही है? आओ मेरे पुत्रो! हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए प्राण से यह जो श्वास की गति है इसके द्वारा प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या जो कि उस मनन को श्रवण करना चाहिए।

मैं यह विचार नित्य प्रति देता रहता हूँ कि साधना के द्वारा, यौगिकता के द्वारा मानव मेरे प्यारे! ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्व गति का निर्माण करता है। आज जो योगी ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व बनाता है, वह महान् है। वह विचित्र है। इसीलिए प्रत्येक मानव विचित्र बनना चाहिए। वही मानव संसार में महान् बना करता है, महान् कहलाता है। तो आओ मेरे पुत्रो! आज मैं यह वाक्य तुम्हें प्रकट करने के लिए आया हूँ कि मैं यह विचार देता

हुआ दूर चला गया।
मेरे प्यारे! महानन्द जी कल राष्ट्रीय सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर रहे थे जिन विचारों से हमें ऊँचा बनना है। जिन विचारों से राष्ट्र का उत्थान करना है। जिन विचारों से मानवता का प्रसार करना है। तो यह जो विचारधारा है, यही तो मानव को ऊँचा बनाती है, कि मानव अपने विचारों को कहाँ ले जाना चाहता है? जिस स्थली को ले जाना चाहता है उस स्थली को जाना जाए। परन्तु उस स्थली के उपरान्त एक महत्ता की ज्योति आती है और जो महत्ता की ज्योति को जानता है, वह महान् कहलाता है। अब मैं विचार देने के लिए नहीं आया हूँ मैं यह वाक्य प्रकट करने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ ऐसे ऐसे महापुरुष हैं, जिन महापुरुषों का जीवन परम्परा से महान् और विचित्र रहा है। हमें उन्हें जानना है और साधना में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार होना है। यह है आज का हमारा वाक्य। लाक्षागृह बरनावा समय दोपहर 3 बजे

५ 03 04 1977 पुष्प 35 रात्रि राष्ट्र के उत्थान के कारण

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता प्रतिभाशाली है। मानो अनन्त रहने वाला है। उनकी अनन्तता इस प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत है। उसी की महत्ता इस संसार को क्रियाशील बनाती जा रही है। क्योंकि ब्रह्माण्ड का एक चक्र चल रहा है, और उस चक्र में बेटा! नाना ब्रह्माण्ड गति कर रहे हैं। नाना प्रकार की सृष्टि इसी चक्र में चक्रित हो रही हैं। परन्तु जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं। कि हमारा मानव जीवन मानवता से गुंथा हुआ होना चाहिए, हमारे जीवन में एक महत्ता होनी चाहिए जिस महत्ता को अपना करके हम मृत्यु को विजय करने वाले हों।
हे मृत्यु! तू अज्ञान बन करके इस संसार को रुलाती रहती है। यदि अज्ञान नहीं होगा

तो मृत्यु का भय भी नहीं होगा। इसीलिए हमारे यहाँ आचार्यों ने कहा, आज के वेदमन्त्रों में भी आ रहा था, हे मृत्यु! तू संसार को रुला देती है। परन्तु तू रुलाती उन्हीं को है, जिनके द्वारा अज्ञान है। और जो ज्ञान के क्षेत्र में रमण करने वाले हैं। वे मृत्यु को विजय करने का प्रयास करते हैं। आगे आचार्यों ने यह कहा है कि यह संसार मृत्यु लोक है। यहाँ मृत्यु को विजय करने के लिए यदि मानव आता है तो मृत्यु को प्राप्त करने के लिए भी आता है।

तो ये दो वाक्य एक दूसरे के विरोधी माने जाते हैं। परस्पर इनमें मानो! क्रान्तियां होती रहती हैं। विचार क्या कि एक मानव तो अज्ञानता में संलग्न, मोह ममता के क्षेत्र में रत्त हो रहा है। यह जो रथ दिया है परमपिता परमात्मा ने, उस रथ को भी वह विचार विनिमय नहीं कर रहा है। वह जो मेरा रथ है जिस रथ में जीवात्मा विद्यमान है, मानो उस रथ के दस (10) अश्व कहलाए जाते हैं। उस रथ का जो सारथी बना हुआ है वह मनस्तत्व कहलाया जाता है।

मेरे पुत्रो! वह जो वेग है। रथात्त में वहत्तन उसको स्थिर करके और आत्मा उसमें विद्यमान है। ऐसा जो रथ है उस रथ को भी ममता मोह के कारण चिन्तन नहीं करता कि यह रथ प्रभु ने दिया है। यह रथ तो प्रभु! का निर्माण किया हुआ एक वाहन है। परन्तु मोह ममता के कारण, अज्ञज्ञनता के कारण मेरे प्यारे! यह रथ भी समाप्त हो जाता है। ऐसे मार्ग को अपना लेता है जिस मार्ग में मुनिवरों! अन्धकार ही अन्धकार रहता है। अन्धकार से उसका विच्छेद नहीं होता, क्योंकि अन्धकार उसके समीप रहता है।

परन्तु देखो,! जब मानव यह विचारता रहता है कि यह मेरा जो रथ है, मानव शरीर का जो यह रथ है, मैं अपने किए हुए भोग के हम कर्मणाः रुद्रम वृत्तः भोगाः, मेरे प्यारे! मैं अपने किए हुए कर्मों को भोगता रहूँगा, और मेरा यह सतथश्चर प्राणी है यह अपना भोग, भोग करके इस संसार से चला गया है। इस संसार से भी कहाँ? कहीं आना है न कहीं जाना है बेटा! चित्त का और उदान का प्राण दोनों का मिलान होते ही संस्कारों की जो कड़ी है, संस्कारों की जो शृंखला है, संस्कारों का जो तारतम्य है, मुनिवरों!

देखो, उसका विच्छेद हो जाता है।

परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो,! अगला विच्छेद उसका तन्मय हो जाता है। आत्म बृहिः लोकाः यह आत्मा तो एक शरीर में वास करने वाला है। आज मृत्यु के सम्बन्ध में, एक वेदमन्त्र आ गया मैं उसकी विवेचना करने लगा हूँ। क्या? कि यह मृत्यु संसार को रुलाती है, परन्तु रुलाती उन्हीं को है, जिनके द्वारा अज्ञान है। हे मानव! यदि तू इस मानव जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है, तो तेरा जो मावीय रथ है, इस रथ को विचारने का प्रयास कर। यह जो मन है यह वेगवान है उस रथ के अश्व उसके संयम में रहने वाले हैं और जीवात्मा रथी बन करके, स्वामी बन करके स्वाभिमान को ले करके उस रथ में विद्यमान हैं।

तो मेरे पुत्रो! देखो,! ऐसे रथी को हमें विचारना है उसके ऊपर चिन्तन नहीं करना है। मुनिवरों! यदि हम इस रथ को नहीं विचारेंगे तो हमारा जीवन अस्त व्यस्त हो जाएगा। संस्कारों का एक समूह बन जाएगा और आवागमन के क्षेत्र में परणित हो जाओगे।

मेरे पुत्रो! मुझे मृत्यु के सम्बन्ध में बहुत सी वार्त्ताएं स्मरण आती हैं। जब चाक्राणी गार्गी अपने शरीर को त्यागने लगी तो उस समय मुनिवरों! देखो,! वह सामगान् गा रही थी और जब वे सामगान् गा रही थी तब नाना, ऋष मुनि विद्यमान हैं। उनके मध्य में चाक्राणी गार्गी विद्यमान हो करके कहती हैं, हे ऋषियो! अब मैं अपने गृह में प्रवेश कर रही हूँ। मैं इस संसार के गृह को त्याग रही हूँ। इस क्षेत्र में आ करके मैंने मृत्यु को विजय किया है। ऐसे ही ऋषियो! तुम भी मृत्यु त्ते विजय करने का प्रयास करो!

मेरे पुत्रो! सामगान गा रही है, विदुषि गान गा रही है। मानो देखो,! विचार विनिमय हो रहा है ऋषि मुनियों के मध्य में। जब वह समय आया, चाक्राणि ने छन्दों का पठन पाठन किया और प्राणायाम किया प्राणायाम के द्वारा चाक्राणि गार्गी ने अपने शरीर को त्याग दिया। और यह कहा, हे ऋषियो! अब मैं यहाँ से जा रही हूँ। यह प्रतीत भी मुझे है मैं कहाँ जाऊँगी? परन्तु मैं देवताओं के लोक में प्रवेश करना चाहती हूँ। वह मानव धन्य है, जो मुनिवरों! देखो,! स्वेच्छा से अपने शरीर को त्यागता है। और वह यह कहता है कि मेरा जो रथ है यह संसार के सुयोग्य नहीं रहा है। मैं अपने रथ को

बनाना चाहता हूँ, निर्माण वेत्ता से निर्माण कराना चाहता हूँ।

वह इस रथ को त्याग करके द्वितीय रथ इसके लिए उपस्थित हो जाता है। वह रथ भी कई प्रकार का एक माता के गर्भ में रथ का निर्माण्ा हो रहा है एक रथ का निर्माण उसके द्वारा सूक्ष्म शरीर का होता है एक कारण शरीर का होता है। मेरे प्यारे! एक द्यु लोक को चला जाता है, द्यु लोक की आभा में उन्हीं की भाषा में रमण करता है। एक कारण लिंग में रमण कर जाता है जो मोक्ष के निकट चला जाता है।

परिणाम क्या? आज मैं मृत्यु के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा तुम्हें नहीं देने आया हूँ। विचार क्या है? मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे बारम्बार बाध्य करते रहते हैं, विचार देते रहते हैं और मुनिवरों! देखो,! इनका जो विचार चलता रहता है, वह भव्यता में परणित रहता है। मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे प्रेरणा यज्ञम् कथ प्रवेः होताः यज्ञ के सम्बन्ध में जब अपना विचार विनिमय किया जाए। तो मेरे पुत्रो! देखो, याग के सम्बन्ध में तुम्हें नाना प्रकार के विचार देते ही रहते हैं। उन विचारों में नाना प्रकार की आभाएं विद्यमान रहती हैं।

मेरे पुत्रो! स्वर्ग में वही जाता है, मोक्ष को वही प्राप्त होता है जो अपने शरीर को स्वेच्छा से त्यागता है और ज्ञान से उसका भरण होता है। उसे न मोह होता है नन ममता होती है, न काम होता है न क्रोध होता है। मेरे प्यारे! देखो,! वह स्वेच्छा से अपने शरीर को तप के द्वारा त्यागता है। मैं नाना प्रमाण देता रहता हूँ इस सम्बन्ध में।

आज मैं तुम्हें विशेष प्रमाण देने नहीं आया। विचार यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन की धाराएं, मानो देखो,! यज्ञम ब्रह्मः जितना भी कर्म है और वह कर्म धर्म से पिरोया हुआ है, मानवता से पिरोया हुआ है। उस सर्वत्र आधार ही कहलाया और याग कहलाया जाता है। प्रत्येक मानव यह विचारता रहता है कि जब कृत्याम् कृते लोकाः। मानव द्रव्यपति बनना चाहता है, परन्तु गृह में एक महत्ता होती है। वह द्रव्य प्रभु से पिरोया हुआ होता है। प्रभु से कटिबद्ध होता है। धर्म में पिरोया हुआ जो द्रव्य होता है, वही मानव को सुसज्जित बनाता है, और पवित्र बनाता है, और महान बना देता है। गृह ऊँचे बन जाते हैं। परन्तु जिस गृह में जो द्रव्य धर्म से पिरोया हुआ, याग से पिरोया हुआ

नहीं होता मेरे प्यारे! वह ही द्रव्य मानव का विनाशक बन जाता है।

तो आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हे यज्ञमान! यज्ञतम कामाः रुद्र भागाः, ब्रह्मेणा लोकम् हिरण्यम् देवाः देखो,! मानव को मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए। मानव को उस महान् प्रभु के जगत् को विचार विनिमय करना चाहिए। आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ। मैं तो केवल यही वाक्य प्रगट करता रहता हूँ। यज्ञोति यज्ञम् ब्रह्मे : यज्ञोतित कामाः दुर्गश्चम् ब्रह्म लोकाः। हे मानव! जो अपने मानवीय जीवन को आभा से पिरो लेता है, आभा में परणित हो जाता है। तो मुनिवरों! उस मानव का जीवन धन्य है। एक एक शब्द उस मानवीय धर्म में पिरो देता है तो उस मानव को धन्य है। वह राज्य हो, राष्ट्र हो, समाज हो, कोई भी हो परन्तु उन्नति के पथ को प्राप्त करता रहता है।

अब मैं अपने विचारों को विशालता देना नहीं चाहता हूँ। मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द की विवेचना करेंगे। इनकी प्रबल इच्छा बनी रहती है। ये अपना विचार व्यक्त करेंगे। इनका विचार क्या कह रहा है?

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यशोगतम् नम्रत वृत्ताणि, दिव्यानो यज्ञन्नम ब्रीःहिः विशस्वम् गायन्त्वाहाः, देवम् मयाः।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मृत्यु के सम्बन्ध में अपना चिन्तन कर रहे थे। मृत्यु को विजय करने का एक आदेश, एक अमृतमयी वाणी का प्रसार कर रहे थे। आज मैं मृत्यु के सम्बन्ध में तो कोई विवेचना देना नहीं चाहता। क्योंकि मृत्यु को विजय करने वाले मृत्यु को विजय करते हैं मैं तो केवल पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देने चला आता हूँ। और वह परिचय क्या? कि आज का संसार क्या कर रहा है?

जैसे पूज्यपाद गुरुदेव देवर्षि नारद मुनि संसार की वार्त्ता ऋषियों के मध्य में प्रगट करते रहते थे और यह कहा करते थे, जब शूक्र देवर्षि नारद दोनों का संवाद होता रहता था। तो उस समय वे संसार की प्रत्येक वार्त्ता को प्रगट करते रहते थे।

आज मैं अपने सूक्ष्म आभा के द्वारा एक यागों का दर्शन कर रहा था। और वह दिग्दर्शन

मेरे अन्तरात्मा को बहुत प्रिय लग रहा था। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि पूर्वकाल के अनुसार तो यज्ञमानां में सूक्ष्मता रहती ही है, परन्तु मेरे महापिता यह कहा करते थे न करने से कुछ करना बहुत प्रिय माना जाता है।

यज्ञ की आभा को जब मैं दृष्टिपात कर रहा था, तो मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो रहा था। मैं यज्ञमान को अपनी कामना प्रगट करता रहता हूँ। और यज्ञमान को मैं अपनी कामना यह प्रगट करने आया हूँ हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन की जो आभा है, तंरगें हैं वे महत्ता में सदैव प्रगट होती रहें। इस प्रकार यज्ञम् भूतानि ब्रह्मलोकः। गृह में सदैव याग होते रहें। द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। द्रव्य का सद्उपयोग होना ही मानव का जीवन है।

परन्तु आज मैं कुछ पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय कराना चाहता हूँ। हमारे यहाँ समाज में नाना प्रकार की कुरीतियां आ जाती हैं। अज्ञानता के कारण माता भी दुःखित रहती है, पुत्र भी दुःखित रहता है, पिता भी दुःखित रहता है। जिस प्रकार जो मनोनीत भावना है अज्ञानता में, उस अज्ञान को मानव को त्याग देना चाहिए। क्योंकि बहुत से प्राणी इस प्रकार के होते हैं जो अपने उदर की पूर्ति करने के लिए नाना प्रकार की भयभीत वार्त्ता अज्ञानता में प्रगट कर देते हैं। उस अज्ञानता का परिणाम यह होता है कि मोह के कारण हम अपने मानवत्व को समाप्त कर देते हैं। हम ज्ञान को भी समाप्त कर देते हैं। और अज्ञान में परणित हो करके मोह से हमारा मन भ्रमित हो जाता है।

इस प्रकार मानव को अपने मन को भ्रमित नहीं करना चाहिए। हे यज्ञमान! तेरे गृह की अखण्डता के लिए ज्ञान रूपी अग्नि प्रगट रहनी चाहिए। प्रत्येक मानव ज्ञान में चला जाना चाहिए। संसार में परम्परा से ही पिता और पुत्र का विच्छेद होता रहता है। यह कोई नवीन वाक्य नहीं है। यह परम्परा का वाक्य है। परम्परा से ही उनकी आभा प्रगट होती रहती है। चित्त के साथ में संस्कार होते हैं उन संस्कारां के साथ्ज्ञ ही मानव का पुनरुक्ति जन्मम् पुनरुक्ति मरनम् में प्राप्त होता रहता है। परन्तु यहाँ यह वाक्य कोई मानव उच्चारण करने लगता है, हे मानव! तेरे पितर का मानो! जन्माति जन्म रूपम्

ब्रिहिः वृतोः, कहाँ जन्म हो गया है? कौन से लत्तकों को प्राप्त हो गए हैं।
यदि मैं यह उच्चारण करूं कि वह सूर्य लोक को चला गया है प्राणी, तो न तो मेरे ही द्वारा कोई प्रमाण है और न आपके द्वारा न समाज के द्वारा कोई प्रमाण है। परन्तु देखो,! यह एक ऐसी वार्त्ता मैंने उच्चारण कर दी, मानव ने स्वीकार कर ली, या मानव ने उच्चारण कर दिया, मैंने उसको धन्य कहकर स्वीकार कर लिया। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करता हूँ कि यौगिक क्रियाओं में मानव का आभास हो जाता है। चित्त के संस्कारों की आभा उसके समीप आ जाती है। इसमें मैं दो रूपां में जाना नहीं चाहता हूँ।
केवल यह कि हे मानव! गृहपति! हे गृह स्वामिनी! तू अपने अज्ञान को त्याग करके मानो पति कहाँ चला गया? यह तो अज्ञानता का शब्द है। अज्ञान व्याप गया है। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ, यज्ञमान के जो पितर हैं, वे वायु मण्डल में देवताओं के समीप देवत्य में कुछ काल में रमण करने के पश्चात जन्मान्तरों को प्राप्त हो जाएं। मानो देखो,! यह वाक्य मैं प्रगट करता रहता हूँ। यह मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण करना नहीं चाहता हूँ।
केवल यह आज मैं जीवन मुक्तामि ब्रह्मलोकाः जो योगेश्वर होते हैं, यौगिक होते हैं परन्तु उनका जो संस्कार होता है, मानव का जिस द्वार से प्राण जाता है उसी द्वार से उसकी उसी प्रकार की गति होती रहती है। अहा! मुखारविन्द से आत्मा जिसका जाता है वो वायुमण्डल में वास करने वाले प्राणियों को प्राप्त होता है। परन्तु होता वह सतोगुणी है। इसी प्रकार घ्राण के द्वारा घ्राण मुनिवरों! दो प्रकार के माने जाते हैं एक घ्राण का नाम जमदग्नि है, एक कश्यप कहलाया जाता है। जमदग्नि एक को अग्नेय कह दो सूर्य कह दो सूर्य स्वर से जो आत्मा जाता है वह तेजस्वी लोकों को प्राप्त होता है और जो चन्द्र से प्राप्त होता है वह पृथ्वी लोकों को। पृथ्वी में भी मानो कामाः बृहिः भोग भोगने के लिए संसार में पुनः आता रहता है।
इसी प्रकार ये दो चक्षु हैं, एक विश्वामित्र हैं एक मानो जमदाग्नि कहलाया जाता है और वह जो विश्वामित्र हैं, मित्र की दृष्टि से इस संसार को दृष्टिपात करने वाला। इससे यदि

आत्मा जाता है, तो विश्वभान मन को विचारने वाला वह देव लोक को प्राप्त होता हुआ इस संसार के आँगन में आता है। परन्तु द्वितीय उनका कस्याः वृत्याहम् मेद्यालयास्ति रुद्रोः मानो देखो,! उससे जाता है तो वह आभ्याम् गति मानो तमोगुणी योनियां को प्राप्त होता है। तो इसके नाना प्रकार के भेदन हैं। मैं इन भेदनों में जाना नहीं चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में प्रगट कराते हुए कहा है।

आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव के उन वाक्यों की पुनरुक्ति देने नहीं आया हूँ। केवल विचारविनिमय यह देने के लिए आया हूँ कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देने के लिए आया हूँ कि मेरे पूज्तपाद गुरुदेव को परिचय देने के लिए आया हूँ। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। परन्तु देखो,! मात्राणि कृत्त लोकाः हिरण्यम् बृहिः हे माता! तू वास्तव में भव्य है, महान् है, तेरा संसार में आने का एक उद्देश्य है। क्योंकि महापुत्रों! को जन्म देती रहे। महापुत्रों! के कर्त्तव्य का पालन करती रहे। परन्तु यह संसार क्या है? इसके सम्बन्ध में ऊँची उड़ान होनी चाहिए प्रत्येक मानव की।

आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि मानव यह कहता है कि तुम्हारा पति या तुम्हारा पितर उर्द्धवा और ध्रुव उसके शब्द बन गए हैं। ध्रुवा में उसका कण्ठ का भाग हो गया है। एक मानव यह कहता है कि यह कितना अज्ञानता का शब्द है? मानो वह दोनों रूपों से प्रिय कह रहा है। वह कह रहा है अज्ञानता से। परन्तु यौगिक क्षेत्र में भी कहता है। यह तो माता के

गर्भ स्थल में यदि वे प्रवेश कर गई है आत्मा, तो वहाँ भी वह उर्द्धवा और ध्रुवा में रहने वाला है। परन्तु नहीं गया तो वह देवलोकों को प्राप्त हो रहा है।

मैंने पूज्यपाद गुरुदेव को त्तगट कराया कि वह देव लोकों देवस्थतम् लोकाः कुछ आत्मा ऐसी होती हैं जो 6 6 माह तक लोकों में शुद्ध आत्माओं में भ्रमण करती रहती है। उनके संस्कार होते हैं। जैसा संस्कार, उसी के अुनसार उसको श्रेणी प्राप्त होती रहती है। मैं यह कहा करता हूँ कि 6 6 माह तक देवताओं के लोक में भ्रमण करके वह पुनः किसी पुण्यवान् माता के शरीरों में प्रवेश हो करके संस्कारों के भोगने के लिए

गमन करता है संसार में।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। हे मानव! तू अज्ञानता को त्याग। यह आत्मा कहाँ गया? कहाँ नहीं गया? इसके ऊपर मानव की विशेष चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं है। अपना कर्त्तव्य पालन करने की आवश्यकता है। तुम्हें परमात्मा ने यह जो रथ दिया है मानव शरीर को जो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी प्रगट कर रहे थे, उस रथ की सुरक्षा करनी है। रथ को हमें उत्तम मार्ग पर ले जाना है। जो रथ को ऊँचे मार्ग पर ले जाते हैं वे मानव धन्यवाद होते हैं। वे मोह के क्षेत्रों में प्रवेश नहीं करते।

तुम्हें यह प्रतीत है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा था, बहुत पुरातन काल हो गया। जब महाराज जड़ भरत भयंकर वनों में विद्यमान थे। त्त जड़ की भांति रहते थे, आत्मा में लीन रहते थे। आत्म का चिन्तन करते रहते थे। महाराजा नृतकृतिः वे अपने जेठे पुत्र को राज्य दे करके और जड़भरत को गुरु बनापने के लिए गमन करते हैं। और मुनिवरों! देखो,! भयंकर वन में जब उनका एक पालकी वृत्त करने वाला रुग्ण हो गया, तो उस समय जड़भरत को देख जड़ भरत को पालकी में स्थित कर दिया। जब वे स्थित हो गए तो वह पालकी का वहन शुद्ध रूप में नहीं कर पा रहे थे तो उस समय राजा ने दुःखित हो करके जड़भरत पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया।

जब आक्रमण किया और आक्रमण करके समाप्त हुए तो जड़भरत मग्न होने लगे, हर्ष ध्वनि करने लगे। परन्तु राजा बोले अरे, यह कैसा विचित्र मानव है? हे मानव! तुम इस तरह कर क्यों मग्न हो रहे हो? जड़ भरत राजा से कहते हैं, हे प्रभु! मैं इसीलिए मग्न हो रहा हूँ कि इससे पूर्व जन्म में मैंने एक हिरणी के पुत्र से मोह किया था। परिणाम यह हुआ कि राजा के यहाँ जन्म हुआ, तो उसने भी मुझे पृथक कर दिया। और जब भयंकर वन में आ गया, तो आपका आक्रमण होने लगा। परन्तु देखो,! मैं प्रभु से ये प्रार्थना कर रहा हूँ कि हे प्रभु! जो मैंने पूर्व के जन्म में मोह किया थ्त, प्रभु मेरी तो यह दशा हो रही है। हे प्रभु! जो काम भी करते हैं मोह भी करते हैं, क्रीड़ा भी करते हैं। जब वे आपके द्वार पर पहुंचेंगे तो प्रभु! उनकी क्या दशा होगी? उनकी क्या

गति होगी जो क्रोध और काम में रत्त रहते है। ?
मेरे प्यारे! मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया कि राजा ने कहा कि महाराज! त्तआप कौन हैं? मुझे जड़भरत कहते हैं। तो वह राजा, ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गया और यह कहा कि प्रभु! अब मुझे क्षमा कीजिए। मैं तो आपको गुरु बनाने के लिए आया हूँ। परिणाम क्या? मुनिवरों! ऋषि उदार होते हैं, पवित्र होते हैं, हृदय के सुशील होते हैं। उन्हें मानो घृणा नहीं होती।
इसी प्रकार आज मैं यही उच्चारण करने आया हूँ। इस रथ में विद्यमान होने वाले प्राणियो! तुम यदि मोह के क्षेत्र में विशेष रहोगे, तो तुम्हारी प्रभु के द्वार पर क्या गति, क्या दशा होगी? अरे, यह भी तो मानव को विचराना चाहिए। इसके ऊपर भी तो चिन्तन करना चाहिए। इस रथ को तुम वाक्य में समाप्त न करो। यह पुनरुक्ति मरणम् पुनरुक्ति जीवनम्। , तो संसार का एक क्षेत्र है। परमात्मा का जगत यह चलता रहता है। बहुत भोग, भोग करके संसार से चले जाते हैं, आते रहते हैं, गमन करते रहते हैं।
आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य प्रगट कराने के लिए आया हूँ। परन्तु वायुमण्डल में जो राष्ट्र की भावना भ्रमण कर रही है। आज के जो राष्ट्रवाद की तरंगें ओत प्रोत हो रही हैं। आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हे राजन! हे समाज! तुझे ऊँचा बनना है। तुझे ऊँची उड़ान उड़नी है इस संसार में। ऊँची उड़ान उड़ने के लिए राजा का निर्वाचन सुन्दर होना चाहिए। राजा को चाहिए कि अपने राष्ट्र में किसी प्रकार की भी विकृतता न होने दे।
आज मैं दोषों का आरोपण नहीं करूंगा। आज मैं केवल यह उच्चारण, मैं प्रसन्नता प्रकट करने आया हूँ और वह प्रसन्नता क्या है? समाज को परमात्मा को अपना साक्षी बना करके, राजाधिराज को अपने जीवन और मानवता को ऊँचा बनाना है। आज वाक्य प्रगट कर रहा हूँ कि समाज को उन्नति के मार्ग पर जाना है। हे यज्ञमान! आज तू अपने गृह में द्रव्य का सदुपयोग कर। यदि प्रत्येक मानव समाज अपने में सब द्रव्य का सदुपयोग कर जाए तो यह संसार स्वर्ग में आ जाए। यह महाराजा अश्वपति का राष्ट्र

बनता चला जाए।

हे यज्ञमान! मैं केवल यही वाक्य उच्चारण करने आया हूँ कि यह मृत्यु तो संसार को रुला ही देती है। परन्तु मानव वह होता है, जो मृत्यु को विजय कर लेता है, और मृत्यु को अपने में धारण करके इस संसार सागर से पार हो जाता है।

आओ! मैं विशेष चर्चा प्रगट नहीं करूंगा। मेरे पूज्य पाद गुरुदेव ने इतना समय नहीं प्रदान किया, आज जो मैं विशेष चर्चा देता रहूँ। आज का विचार विनिमय क्या?

आज का विचार विनिमय यह है कि हमारे जीवन की जो महात्ता है, वह ऊँची बननी चाहिए। जीवन की धाराएं पवित्रता में रमण करते हुए मानवीय क्षेत्र की आभा में रमण करना है। परन्तु आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय देने के लिए आया हूँ। हे यज्ञमान! तू सपत्नी अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके तू याग ही कर। द्रव्य का सदुपयोग करता चला जा। समाज तथा यह राष्ट्र पवित्र बन जाए। इससे समाज में एक महान् द्रव्य की आभा की क्रान्ति आ सकती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल मुझे प्रगट करते हुए कहा था कि महाराजा! अश्वपति के यहाँ जब यह नियमावली बन गई। प्रत्येक मानव राष्ट्र की घोषणा करता रहता है और यह कहता है कि हमारा राष्ट्र राम राज्य होना चाहिए। राम राज्य उस काल में होगा जब राम के गुणों को प्रत्येक मानव अपनाने वाला बनेगा। रामाः रमेति रमम्बरी मृत लोकाः। जो प्रातःकालीन, सायंकालीन राम के गुणों को अपने में धारण करने वाला है, वह रमेती बनता है। वो रमण करता है। वह रमण करता है ऊँचे क्षेत्र में।

परिणाम क्या? कि राम के राष्ट्र में प्रत्येक गृह में याग होते थे। प्रत्येक गृह में उज्ज्वल सतसंग होते। पुरोहित जन उपदेश दे देकर के अपने उदर की पूर्ति राष्ट्रीय वृत्तों से वे करते रहते थे। निरीक्षण होता रहता था। चरित्र की आभा में रमण करने वाला समाज श्री राम राज्य बनता है। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कोई विशेष चर्चा का परिचय देने नहीं आया हूँ। केवल यह कि आधुनिक जगत् यह कहता है कि राम राज्य होना चाहिए। राम राज्य की घोषणा कर रहा है परन्तु वास्तव में मेरी दृष्टि में राम राज्य का तो एक अंकुर भी नहीं आ पाया। क्योंकि राम तो प्रातःकाल याग करते थे। आधुनिक

काल के अधिराज आज प्रात्तकाल भ्रमण करते हैं। अब तक प्रायः अभ्याम् कृतियों में ऐसा ही रहा है। परन्तु मैं इस सम्बन्ध में कोई वाक्य प्रगट नहीं करूंगा।

विचार क्या? कि प्रातःकालीन जो याग करने वाले हों मानो उपदेश देने वाले हों। मन्त्री मण्डल विद्यमान् है सबको धर्म का उपदेश हो रहा है। वेद के मन्त्र का आभास हो रहा है। नाना चर्चाएं हो रही हैं। अरे, वह राज्य (राष्ट्र) राम राज्य बनेगा या आधुनिक जगत् राम राज्य बनेगा? जहाँ मानव विद्यमान होते हैं वहाँ एक दूसरे के नष्ट करने की प्रवृत्ति बनाते रहते हैं। क्या वह राम राज्य बनेगा या यह जगत् राम राज्य बनेगा।

परन्तु देखो,! प्रातःकालीन समय राम कहते हैं कि संसार में प्रत्येक प्राणी को याग करना चाहिए, प्रभु का स्मरण करना चाहिए और प्रभु का स्मरण करके, विद्यालयों में आचार्य तपे हुए हों। विद्यालयों में आचार्य तपस्वी होंगे तो ब्रह्मचारी भी तपस्वी होंगे। यह राष्ट्र ऊँचा बनेगा या वह राष्ट्र, जहाँ एक पंक्ति में राजा का पुत्र, एक शूद्र का पुत्र जिस विद्यालय में भोजन करते हैं वह विद्यालय पवित्र बनेगा या वह विद्यालय पवित्र बनेगा। जो राष्ट्र उच्च कहलाते हैं उनकी शिक्षा का माध्यम और है साधारण समाज की शिक्षा का माध्यम और है या यह समाज ऊँचा बनेगा?

परन्तु मैं इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी देना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार विनिमय क्या? कि राष्ट्र, समाज उस काल में ऊँचा बनता है जब एक पंक्ति में विद्यमान हो करके और शूद्र का, राजा का पुत्र एक ही पंक्ति में भोजन करने वाला हो विद्यालय में। अरे, वे विद्यालय ऊँचे बनेंगे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को बहुत समय हुआ, मुझे भी बहुत काल तक विद्यालयों में जाने का सौभाग्य रहा है।

आज मैं यह विद्यालयों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। आज का विचार यह दे रहा हूँ कि राज्य और समाज को ऊँचा बनने के लिए शिक्षा की प्रणाली, गृह में रहन सहन की प्रणाली, गृह में रहन सहन की प्रणाली को ऊँचा बनाना होगा। यह ही विशेषताएं होती हैं जो राष्ट्र और समाज को ऊँचा बना देती हैं।

इसके पश्चात् मैं विशेष चर्चा पूज्य पाद गुरुदेव को प्रगट नहीं कराने आया हूँ। केवल यह वाक्य, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। हे ब्राह्मण! तेरी वाणी

सदैव उद्गान गाती रहे। वह ब्राह्मण तप को प्राप्त होता रहे। तेरा वास स्वर्ग में, आनन्द में रहना चाहिए। मेरी यह कामना है और आयु दीर्घ होनी चाहिए। क्योंकि जितनी वेद के पठन पाठन करने वाले, यज्ञ कर्म करने वालों की आयु दीर्घ होगी उतना ही धर्म और मानवता का प्रसार होता रहेगा। इसके साथ ही मैं अपने वाक्यों को समाप्त कर रहा हूँ। जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है मैं उनको धन्यवाद देने आया हूँ। मैं अपने उद्गार अपने विचार देता रहता हूँ। हे मानव! हे यज्ञमान! तेरे जीवन की सुरक्षा तेरी विवारधारा ऊँची रहे ऐसी मेरी कामना रहती है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य..... धन्य हो!

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने दो शब्दों की विवेचनाएं कीं। परन्तु इनका विषय तो गम्भीर और मार्मिक रहा है। राष्ट्र के सम्बन्ध में विष्णु राष्ट्र के सम्बन्ध में जो विचार रहा है वह बहुत ही उज्ज् वल महान् रहा है। आज मैं भी जैसा महानन्द जी ने कहा है यज्ञोमयी! श्रेष्ठ कर्माः यज्ञ के श्रेष्ठ कर्म करने वाले महान् मानो तेरी आभा पवित्र होनी चाहिए। तेरी महत्ता उज्ज् वल होनी चाहिए। यह आज का मैं अपना विचार देने आया हूँ कि तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, द्रव्य का गृह में सदुपयोग होता रहे, शोक से रहित रहें। शोकातुर रहने में कोई महत्ता नहीं है। प्रसन्नाचित्त रहना और वेद और दर्शनों का गृह में पठन पाठन होना, अध्ययन की परम्परा पवित्र हो ये गृह ऊँचे बन जाते हैं।

यह आज का वाक् अब मैं भी विराम देने जा रहा हूँ। मानव को अपने समाज को ऊँचा बनाना राष्ट्र को ऊँचा बनाना यह महत्ता का कर्त्तव्य है। और मेरे प्यारे! महानन्द जी तो बहुत कटु वाक्य उच्चारण कर जाते हैं। परन्तु कोई वाक्य नहीं। उसमें यथार्थता तो होती ही है। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यज्ञ के सम्बन्ध में कहा है। हे यज्ञमान! होता जना तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। ऐसी मेरी भी सदैव कामना रहती है। मृत्यु से उपराम होने का यदि कोई क्षेत्र है प्रारम्भिक, तो वह याग है इसीलिए याग करने चाहिए। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। निवास

स्थान : ठाकुर रघुराज सिंह सुपुत्र : स्व. ठ. नौबहार सिंह आजपुर (बिजनौर)।

६ 09 10 1977 पुष्प 34 पुरातन ऋषियों की श्रेणियां

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज पूर्व से हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त (अत्यन्त अत्यधिक) माना गया है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के जगत् तक कोई भी ऐसा वैज्ञानिक नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। कोई महापुरुष ऐसा नहीं हुआ जो परम पिता परमात्मा के अन्तिम चरण की वार्त्ता प्रकट कर सके। क्योंकि परमपिता परमात्मा का जो अन्तिम चरण है वह मानव की वाणी का विषय नहीं है, और जो वाणी का विषय नहीं होता उसको मानव उच्चारण भी क्या कर सकता है। इसीलिए हम उस महान् देव की महिमा का गुणगान गाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। मानो उसकी आभा का वर्णन करते रहते हैं, और संकेत में यही उच्चारण करते रहते हैं कि जो वेदमन्त्र हैं उस परमपिता परमात्मा की गाथा गाता रहता है। और उच्चारण करता रहता है कि वह मनोनीत हृदय की हृदयं गमयम् व्रेही व्रत्त देवाः। , वह हृदयंगम कहलाता है। मानो वह हृदय में समाहित रहता है। हृदयं अगमय ज्योति रथाः, वह हृदयंगम में ही मानो ज्योति बन करके रहता है, और मानव को ज्योतिमान बनाता रहता है।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था? मैं तुम्हें उन तथ्यों पर ले जाना चाहता हूँ, जिन तथ्यों को विचार विनिमय करने से मानव के हृदय में एक मनोनीताः का और मानवता का दर्शन होने लगता है। अथवा उसकी प्रतिभा का प्रायः वर्णन होने लगता है। तो आज का हमारा वेद का ऋषि हमें कौन से मार्ग को दर्शा रहा है? आज बेटा! हम तुम्हें उन क्षेत्रों में ले जाना चाहते हैं जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके मानव के जीवन के सम्बन्ध में सदैव विचार विनिमय किया करते हैं, और वे यह विचारते रहते हैं

कि वास्तव में हमारे जीवन की दशा कौन सी होनी चाहिए? जिसको अपनाने के पश्चात् हमारा जीवन ऐसे मार्ग को प्राप्त करता रहे जिस मार्ग को प्राप्त करने के पश्चात् मानव मानवता में रमण करता है।

आज मैं ऐसे ऋषि मुनियों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ नाना प्रकार के यागों का वर्णन होता रहता है। जो मानव यह व्रत धारण करते हैं कि हम लोकों को विजय करना चाहते हैं तो प्रत्येक मानव लोक की उड़ान उड़ना चाहता है। लोकों की उड़ान उड़ने वाला प्राणी जब वह अपने में कटिबद्ध होता है और लोकों में जाना चाहता है तो वह उसमें पहुंच ही जाता है। आज मैं तुम्हें महर्षि विभाण्डक मुनि आश्रम में ले जाना चाहता हूँ।

महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज श्रोत्रिय कहलाते थे। हमारे यहाँ नाना ऋषि हुए हैं एक श्रोत्रिय होता है, एक मन्त्र दृष्टा होता है, एक वदोक्त ज्योतिमयी होता है एक गोत्रीय परम्परा से ही महान् विज्ञानमय होता है। परन्तु महर्षि विभाण्डक श्रोत्रिय कहलाते थे। इनकी परम्परा थी श्रवण करना मानो श्रोत्रों से ही श्रवण करने मात्र से ही स्मरण शक्ति में एक महान् ज्योति प्रवेश हो जाती। श्रोत्रिय का अभिप्राय यह कि यहाँ जो भी महान् बुद्धिमान प्रणाली में होता वह श्रोत्रिय कहलाता था। मानो मानव उच्चारण कर रहा है और उच्चारण करने मात्र से ही उसके स्मरण शक्ति के जो तन्तु हैं वे जागरूक हो जाते हैं। इतनी मेघावी बुद्धि कहलाती है और वह चिन्तन करने मात्र से वह योगश्चितवृत्तियों में रमण करने वाले बन जाते हैं। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज श्रेत्रिय ऋषि होने के नाते नाना ऋषिवर उनके आश्रम में आ पहुंचे। नाना ऋषियों का आगमन हुआ। आगमन होने के पश्चात् उन्हें आसन दिया गया। अपने अपने आसन पर विद्यमान हो गए। कुछ श्रोत्रिय विद्वानों के आसन भिन्न रहते थे, और जो मन्त्र दृष्टि थे उनकी पंक्ति भिन्न थी। जो विज्ञान पर अध्ययन करने वाले उनकी पंक्ति भिन्न। तो ऋषि आश्रम में चार पंक्ति लग गईं। अब उसमें अध्यक्षता का निर्वाचन किया गया। ऐसी ब्रह्मवेत्ताओं की सभा में ऐसे विज्ञानमय, श्रोत्रिमय, ज्योतिर्मय और मन्त्रदृष्टाओं में एक निर्वाचन होता है और

उसको निर्वाचित्त किया जाता है जो चारों विषयों को अच्छी प्रकार जानता हो।

उसी सभा में महर्षि उद्दालक मुनि महाराज विद्यमान थे। हमारे यहाँ उद्दालक गोत्र वशिष्ठ माना जाता है। उद्दालक तो गोत्र कहलाता था परन्तु विरन्तकेतु उद्दालक उस सभा में विद्यमान थे। तो महर्षि विरन्तकेतु उद्दालक से प्रार्थना की गई कि महाराज! आप चारों विषयों को जानते हैं, आप यहाँ पधारिए और अपने आसन को ग्रहण कीजिए। तो जब वह आसन को ग्रहण करने लगे तो सबसे प्रथम श्रोत्रिय ने विरन्तकेतु से एक प्रश्न किया और श्रोत्रिय ने कहा महाराज! आपने इस आसन को ग्रहण किया है श्रोत्रिय किसे कहते हैं? तो उद्दालक कहते हैं हे श्रोत्रिय ऋषि! श्रोत्रिय वह कहलाते हैं जिनके श्रोत्र पवित्र होते हैं, जिनकी घ्राण शक्ति का और दोनों श्रोत्रों का एक तारतम्य होता है। दोनों का एक तारतम्य होते हुए वह श्रवण करता है। उसकी स्मरण शक्ति प्राण के द्वारा चित्त से जिसका समन्वय रहता है। मानो वाक्य आते रहते हैं और वह श्रोत्रिय बनते रहते हैं। मानो श्रोत्रियता में उत्तरायण दक्षिणाये दोनों प्रवृत्तियां होती हैं। और प्राची दिग् होती है चारों आभाओं को जानने वाला वह श्रोत्रिय कहलाता है।

हे ब्रह्मचारी! हे ब्राह्मण! हे श्रोत्रिय ब्राह्मण! तुम श्रोत्रिय कहलाते हो। तुम्हारा कोई गोत्र नहीं है। श्रोत्रिय केवल वह कहलाता है जिसका मनोबल, बुद्धि बल, स्मरण शक्ति और चारों प्रकार की बुद्धियों की क्षमता केवल श्रवण करने मात्र से ही ग्रहण कर लेता हो। यह गुरु परम्परा कहलाती है। वह गुरु परम्परा है, वह पोथी से अध्ययन नहीं कराता, वह केवल वाणी से श्रोत्र तक शब्दों को पहुंचाता है और उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह शब्द बना और उसने स्वतः ग्रहण कर लिया। वह श्रोत्रिय कहलाता है। श्रोत्रिय का अभिप्राय कि उसी के द्वारा योगाभ्यास करता है। उसी के द्वारा वह एक एक वेदमन्त्र की गम्भीरता पर मनन करता है, चिन्तन करता है, अध्ययन करता है। अध्ययन करने की जो उसकी शैली है वह शान्त मुद्रा में चैतन्य देव से अपनी वार्त्ता प्रकट करता है। तो वह श्रोत्रिय कहलाता है। तो तुम श्रोत्रियत्व को जानना चाहते हो। तुमने मुझे इस आसन को प्रदान किया है। मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ, जो मैं आज इस आसन पर आया और

आसन पर विद्यमान हो करके श्रोत्रिय सभा में विद्यमान हूँ।

मेरे प्यारे! जब उन्होंने श्रोत्रिय का उत्तर दिया तो वह सन्तुष्ट हो गए और मौन हो गए। मौन हो जाने के पश्चात् मन्त्र दृष्टा ने कहा प्रभु! आप जो वेद के आसन पर विद्यमान हैं, मन्त्र दृष्टा किसे कहते हैं? क्योंकि मैं मन्त्र दृष्टा हूँ और मैं मन्त्र दृष्टा के सम्बन्ध में जानना चाहता हूँ। उस समय विरन्तकेतु उद्दालक कहता है हे मन्त्र दृष्टा! मन्त्र दृष्टा उसे कहते हैं, जो मन्त्र का साक्षात्कार करता है, वह उसमें ओत प्रोत है, जैसे एक वेदमन्त्र है उसका जो एक एक अक्षर है उस अक्षर के ऊपर मानो जितनी भी मानव के शरीर में नस नाड़ियां होती हैं, मानो जितने भी मानव के शरीर में नस नाड़ियां होती हैं, मानो जितने भी तत्त्व इसमें कार्य करते हैं इन प्रत्येक तत्त्व से उस शब्द का मिलान करता है और उसी रूप से वह व्याख्या करता है। जैसे भूर्भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियां कहलाती हैं। इन आभाओं को जो दृष्टिपात कराता है भूर्भूवः स्वः इनका मिलान कराना जानता है, इनका साक्षात्कार जानता है, उसमें इतना व्यापक बन जाता है कि वह तीनों व्याहृतियों का दृष्टा बन जाता है।

मेरे प्यारे! दृष्टा किसे कहते हैं? जिसके एक एक शब्द के गर्भ में जो ज्ञान है अथवा विज्ञान है, उसमें जो योग विद्यमान है उसके पिछले भाग के आँगन को वह जानता है मानो वह मन्त्र दृष्टा कहलाता है।

आज मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। यह गम्भीर क्षेत्र है परन्तु इसके ऊपर बहुत अध्ययन की आवश्यकता रहती है। आज वेद का ऋषि यह कहता था कि आज मैंने एक प्राण की विवेचना की है। वेदों में एक प्राण आता है, अपान शब्द आता है, व्यान आता है, समान आता है और उदान आता है ये पञ्च प्राणों का वृत्त आता है। इसकी धारा आती रहती है, और वह जो धारा है, जैसे अपान आया तो अपान के गर्भ में क्या है? उस गर्भ को जानना, वह जो वेदमन्त्र में अपान शब्द आया है उसका वह दृष्टा बन गया है। जैसे प्राण है, अपान है, उदान है, समान है इनके गर्भ में जो है उसका जो साक्षात्कार जानता है वह मन्त्र दृष्टा कहलाता है। प्रत्येक वेदमन्त्र जिसको वह जानता है उसके गर्भ को जानने वाले उनको मन्त्र दृष्टा कहा जाता है वह दिव्य ज्योति

मयी कहलाता है, वह ब्रह्म के अन्तिम चरण में जा करके मौन हो जाता है। क्यों? व उसकी व्याख्या करता हुआ दूर चला जाता है विचार करने लगता है और उसमें रत्त हो जाता है।

वेद का ऋषि कहता है कि वह मन्त्र दृष्टा कौन है? जो मन्त्रणा करता है जो उसके गर्भ में प्रवेश करता है वह मन्त्र दृष्टा कहलाता है। इतना कह करके ऋषि मौन हो गए और मन्त्र दृष्टा उसके सूक्ष्मतम रहस्य को जान गए।

उसके पश्चात् वेदों में ज्योति वह वेदोमयी ज्योति को जानने वाले ऋषि एक पंक्ति में विराजमान थे। कहते हैं कि महाराज! आप हमारे अध्यक्ष हो, हमारे सभापति हो, हम जानना चाहते हैं कि मन्त्रेमय ब्रह्म ज्योति, किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! वे बोले के वेदामयी ज्योति दृष्टा, ज्योति वृताः वे कहलाते हैं जो वेदों में ज्योति है उस ज्योति को जानते हैं वास्तव में द्वितीय रूपां में वेद नाम ही ज्योति का है। क्योंकि ज्योति कहते हैं विद्या को। उसके हृदय में एक महान् कान्ति होती है, और उस महान कान्ति के ऊपर वह नित्री विद्या में रमण करने वाला होता है। कि विद्या कौन सी है? ज्ञान, कर्म और उपासना कहलाती है। इन त्रि विद्याओं को जानने वाला और इनमें जो एक ज्योति है उसके उपरान्त जो मानव को ज्योति प्राप्त होती है वह वेदामय ज्योति मय कहलाता है। कहते हैं वह ब्रह्म पद को प्राप्त होता है। वह ब्रह्म के आँगन को जानता है। क्योंकि ज्ञान, कर्म और उपासना जब तीनों में मानव रत्त हो जाता है तो उसे एक ज्योति के सिवाय और कुछ दृष्टिपात नहीं आता वह ज्योति में ही ज्योति में रत्त रहता है। उसका प्रत्येक अंग ज्योतिर्मय दृष्टिपात आता है। उसका प्रत्येक क्रिया कलाप ज्योतिमय दृष्टिपात आने लगता हैं तो वह वेदोमय ज्योति कहलाता है। वह महत्ता में रमण करने वाला है। वह अमूल्य ज्योतियों में प्रवेश करता है।

आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में वेदामय ज्योतिर्मय बनना है क्योंकि ज्योतिर्मय बन करके प्रभु से वार्त्ता प्रकट करता है। प्रभु के अन्तिम चरण को जानने के लिए सदैव तत्पर रहता है। तो ऋषि उद्दालक यह वाक्य उच्चारण करके मौन हो गए और मौन होने के पश्चात् वैज्ञानिकों

की जो पंक्ति थी वे कहते हैं कि महाराज! इन तीनों को विज्ञान में समावेश कर दीजिए। क्योंकि यहाँ वैज्ञानिक विद्यमान हैं। हम जानना चाहते हैं कि विज्ञान किसे कहते हैं? मुनिवरों! देखो, महर्षि विरन्तकेतु उदालक मुनि महाराज कहते हैं हे ब्रह्मचारियो! हे ब्रह्मवेत्ताओ! हे श्रोत्रियमय! हे वेददृष्टामय!

हे वेदोमय उदाति अस्ताः? विज्ञान दो प्रकार की आभा में निहित रहता है। वेदों का ब्रह्मकृत्य है। परन्तु विज्ञान दोनों प्रकार धाराओं में विद्यमान रहती है। एक विज्ञान तो वह जो एक सूत्र में पिरोया हुआ ब्रह्माण्ड जो ऋत में दृष्टिपात आता है। कल के वाक्यों में ऋत और सत् की मैं कुछ विवेचना कर रहा था और तुम्हारे समीप यह उच्चारण कर रहा था कि यह ऋत और सत् क्या हैं? जितना भी यह ब्रह्माण्ड लोक लोकन्तरवाद तुम्हें दृष्टिपात आता है, जितना भी परमाणुवाद है, तरंगवाद है वह एक सूत्र में पिरोया हुआ है, और उस सूत्र का नाम है ऋत। वह ऋत में पिररोया हुआ है। और एक लोक दूसरे लोकों की परिक्रमा कर रहा है वह ऋत कहलाता है। जितना भी प्रकृतिवाद है, प्रत्यक्षवाद है वह सर्वत्र ऋत में पिरोया हुआ है। वह ्ऋत में रहने वाला है। उस ऋत में प्रवेश करने के पश्चात् वैज्ञानिक नाना प्रकार के मन्त्रों का निर्माण करता है और निर्माण करता हुआ उन मन्त्रों पर विद्यमान हो करके वह लोक लोकान्तरों की जो ऋत से आभायित होते हुए तरंगें हैं उन तरंगों में रत्त हो करके लोक लोकान्तरों में वास करता है, वह रमण करता है, वह उसमें अपना यातायात बना लेता है।

बेटा! मुझे स्मरण है कि नाना ऋषि हुए हैं, जिन्होंने यातायात को बनाया है। नाना वैज्ञानिक हुए हैं जिनका लोकों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और घनिष्ठताएं रहते हुए उन्होंने अपने यातायात को बनाया है। उसी में वह गमन करते रहते थे। तो नाना वैज्ञानिक अपनी आभाओं में निहित रहे हैं, और वैज्ञानिकता में रमण करने वाले वैज्ञानिक कहलाते हैं। द्वितीय वैज्ञानिक वे होते हैं जो इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने मानवीय ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात करने लगते हैं। वह सत् में रमण करने वाले होते हैं। क्योंकि सत् में प्रभु है, सत् में आत्म तथ्य कहलाता है। वह सत् ही सत् कहलाता है। जहाँ वह जाता है वहाँ उसे सतरूू ही दृष्टिपात होता है। वह सत् ही सत् कहलाता है। वह द्वितीय विज्ञान है।

वह योगेश्वर कहलाता है। जो योगियों में रमण करने वाला, योग में गति करने वाला, चित्त की वृत्तियों को निरोध करने वाला, चित्त की वृत्तियों को निरोध कर रहा है अथवा उन्हें समेट रहा है, अपने में धारण कर रहा है तो वह जो योगेश्वर बनने जा रहा है, उस योगेश्वर की जो प्रबल गति है, अभ्यागति है, अभ्यास में रमण करने वाला है। वह योगश्चित्त वृत्तियों को निरोध करता हुआ लोक लोकान्तरों के पिछले भाग में सत् ही सत् में रमण करता है। क्योंकि वह सत् में पिरोया हुआ है। इसीलिए वह जो दोनों प्रकार का विज्ञान है वह ऋत और सत् दोनों में पिरोया हुआ है। इसलिए वह वैज्ञानिक कहलाता है। विज्ञान में रमण करने वाला महान् वैज्ञानिक बन जाता है। इन दोनों विषयों को समेट करके ज्ञानमय बनता हुआ विज्ञान में प्रवेश करता है।

मेरे पुत्रा! उन्होंने जब यह वाक्य प्रकट किया तो सभा मौन हो गई। शान्त हो गई। शान्त होने के पश्चात् ऋषि कहते हैं अब अपना अपना विचार विनिमय किया जाए। विरन्तकेतु उद्दालक मुनि ने जब यह कहा तो वह अपनी अपनी साधना के सम्बन्ध में अपना अपना विचार देना उन्होंने प्रारम्भ किया। अपने अपने अस्तित्व की चर्चाएं करने लगे। उन्होंने कहा की श्रोत्रिय प्राणियों में दृष्टा थे और ज्योतिर्मय और विज्ञानमय एक ही सूत्र के मनके हैं। ये तीनों मनके एक ही सूत्र में पिरोय हुए तीनों मन के ही रूप में कहलाते हैं। सबको समेट करके उन्होंने एक ही सूत्र के मनके उच्चारण किया। उन्होंने कहा कि सर्वत्रता का उद्देश्य केवल एक ही है, श्रोत्रियों का भी यही उद्देश्य है कि हम ब्रह्म के अन्तिम चरण में जाना चाहते हैं द्रष्टाओं का भी अभिप्राय यही है कि हम ब्रह्म के अन्तिम चरण में पहुंचे और वेदोमय ज्योतिर्मयों का भी वैज्ञानिकों का अभिप्राय यही है कि हम ब्रह्म के अन्तिम चरण में पहुंचे और मन्तव्य यह है कि भौतिक मार्ग से होकर के तुम ब्रह्म के अन्तिम चरण में चले जाओ। इन चत्वारः आभाओं का एक ही तारतम्य माना गया है। जब यह एक ही सूत्र के चारों मनके हैं तो चारां में भिन्नता भी नहीं है। भिन्नता थी उन व्यक्तियों में होती है जिनमें अज्ञान होता है और अज्ञानता में अन्धकार होता है और अन्धकार में विभाजन होता है, और वह जो विभाजन की क्रिया है वहीं

मानव को अन्तिम चरण में परणित करा देती है।

मेरे पुत्रे! उन्होंने जब यह वाक्य प्रकट किया तो सभा मौन हो गई। शान्त हो गई। शान्त होने के पश्चात् ऋषि कहते हैं अब अपना अपना विचार विनिमय किया जाए। विरन्तकेतु उद्दालक मुनि ने जब यह कहा तो वह अपनी अपनी साधना के सम्बन्ध में अपना अपना विचार देना उन्होंने प्रारम्भ किया। अपने अपने अस्तित्व की चर्चाएं करने लगे। उन्होंने कहा कि श्रोत्रिया प्राणियों में दृष्टा थे और ज्योतिर्मय और विज्ञानमय एक ही सूत्र के मनके हैं। ये तीनों मनके एक ही सूत्र में पिरोएं हुए तीनों मन के ही रूप में कहलाते हैं। सबको समेट करके उन्होंने एक ही सूत्र के मनके उच्चारण किया। उन्होंने कहा कि सर्वत्रता का उद्देश्य केवल एक ही है, श्रोत्रियों का भी यही उद्देश्य है कि हम ब्रह्म के अन्तिम चरण में जाना चाहते हैं। दृष्टाओं का अभिप्राय यही है कि हम ब्रह्म के अन्तिम चरण में पहुंचें और वेदोमय ज्योतिर्मयों का भी वैज्ञानिकों का अभिप्राय यही है कि हम ब्रह्म के अन्तिम चरण में पहुचें और मन्तव्य यह है कि भौतिक मार्ग से होकर के तुम ब्रह्म के अन्तिम चरण में चले जाओ। इन चत्वारः आभाओं का एक ही तारतम्य माना गया है। जब यह एक ही सूत्र के चारों मनके हैं तो चारों में भिन्नता भी नहीं है। भिन्ना थी उन व्यक्तियों में होती है जिनमें अज्ञान होता है, और अज्ञज्ञनता में अन्धकार होता है और अन्धकार में विभाजन होता है, और वह जो विभाजन की क्रिया है वहीं मानव को अन्तिम चरण में परणित करा देती है।

आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है। आज मैं तुम्हें यह उचारण करने के लिए जा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव अपनी आभा में, अपनी श्रोत्रिय, अपनी तरंगों में रमण करने के लिए तत्पर रहता है। आज मैं तुम्ळें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को प्रत्येक देव कन्या को अपने महान् जीवन को अन्तिम चरण में प्रभु से वार्त्ता करने का उद्देश्य है इस संसार में। इस संसार में जो भी नाना प्रकार की तरंगों में आया है, अपने कर्त्तव्यवाद की आभाओं में आया है परन्तु वह अनुशासन की वेदी पर विद्यमान हो करके और वह अपनी मनोचित्त आन्तरिक जगत् को इतना अनुशासन में लाने वाला बने जिससे उसका आन्तरिक जगत् इतना अनुशासन मय बन जाए कि

प्रभु से अपनी वार्त्ता प्रकट करने वाला हो। प्रभु से वार्त्ता प्रकट करनी है।

बेटा! प्रभु से वार्त्ता कौन करता है? प्रभु से वार्त्ता वह प्राणी करता है जो मननशील कहलाता है। मनीषी कहलाता है। मनीषी कौन होता है? मनीषि तो प्रभु! को ही कहते हैं। परन्तु एक मनीषी वह कहलाता है जिसका मन के ऊपर संयम होता है मन के ऊपर जो मनन करता है, और मन जब प्राणत्व में मनन करता हुआ वह मनीषि कहलाता है। वह जो मनीषि है वहीं तो प्रभु! से, मनीषि से वार्त्ता, प्रकट कर सकता है। और जो बेटा! मनीषि बना ही नहीं है कहता है मैं प्रभु से वार्त्ता प्रकट करता हूँ तो बेटा! जो मनीषि स्वतः ही नहीं बना है, तो वह मनीषि से क्या वार्त्ता प्रकट कर सकता है इस संसार में।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें महर्षि विभांडक मुनि महाराज श्रोत्रिय ऋषियों के द्वार पर में ले गया था। परन्तु वहाँ ऋषि ने चार मनकों की विवेचना की है। वे ऋषि कौन थे? बेटा! वह विरन्तकेतु उद्दालक कहलाते थे। यह उद्दालक गोत्र कहलाता है। उद्दालक गोत्र में वैज्ञानिक भी हुए हैं, ब्रह्म वेत्ता भी हुए हैं। और श्रोत्रिय भी हुए हैं। इनमें मेरे प्यारे! अपने यन्त्रों में नाना अपने महापुरुषों के चित्रों को दृष्टिपात करने वाले भी रहे हैं विरन्तकेतु कितने महान् थे। आज मैं उन ऋषि की चर्चा प्रकट करता हूँ जो विरन्तकेतु ऋषि महाराज उद्दालक एक समय भयंकर वनों में अन्याधान कर रहे थे। अग्नि होत्र कर रहे थे, यज्ञ कर रहे थे। नाना साकल्य को एकत्रित करते हुए जब वह याग कर रहे थे तो यज्ञ में सुगन्धि हो रही थी। स्वाहा उच्चारण कर रहे थे। जब उन्होंने एक आहुति के पीछे दो स्वाहा उच्चारण किए, तो अग्नि प्रदीप्त होती दृष्टिपात हुई। विरन्तकेतु ऋषि ने यह अनुभव किया, यह अपने में क्रिया में लाने का प्रयास किया कि वास्तव में जो यह स्वाहा शब्द है यह तो अग्नि का प्रतीक है, यह तो वास्तव में अग्नि है, तो मन्थन का प्रतीक कहलाता ह। ै यह तो स्वतः अग्नि है। इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान किया जाए। तो वही विरन्तकेतु उद्दालक मुनि महाराज एक सौ एक वर्ष तक के लिए मौन हो गए और वाणी पर मनन करने लगे। ऐसा कहते हैं पुत्रे! मुझे तो कुछ स्मरण भी आता रहता है कि जब वह वनों में

रहते थे तो याग करते थे और याग करके स्वाहा ही उच्चारण करते थे केवल और कोई शब्द उच्चारण नहीं करते थे। स्वाहा ही कहते थे। एक सौ एक वर्ष तक उनकी वाणी इतनी अग्निमयी बन गई, इतनी श्रोत्रमयी बन गई, इतनी विज्ञानमयी बन गई कि उनकी वाणी में सत् का प्रतिपादन हो गया। सन्मय दृष्टिपात आने लगा। वाणी उच्चारण करें तो सत् ही सत् मैं दृष्टिपात आए। उन्होंने अपनी वाणी को यज्ञ में ओत प्रोत करा दिया, उनको भ्ज्ञस्म करने लगे। तो वाणी के द्वारा ही भस्म होने लगा। परन्तु वाणी से क्या ल्भस्म हुआ? वाणी से जो यज्ञशाला में जो दूरिता (दुर्गन्धित वायु) अग्नि त्याग देती थीं उसको वह वाणी रूपी अग्नि भस्म करने लगी। परिणाम यह हुआ कि वह जो साकल्य में तरंगें उत्पन्न होती उसको वह अपने यन्त्रों में एक विराणासुस्तकेतु, नामक यन्त्र में मानो उसमें वह भरण करने लगे। वह अन्तर्ध्यान होते। अपने जो पुरखा थे, अपने जो वंशज के महा पिता थे, सौं वें महापिता थे उन्हें अन्तर्ध्यान होते ही वाणी को जहाँ संयम किया तो भिन्न भिन्न चित्र उन्हें साक्षात्कार दृष्टिपात होने लगे। इसी आधार पर उन्होंने यह वैज्ञानिक यज्ञ का निर्माण किया। उस मन्त्र में उन तरंगों को जाना। जिन तरंगों में स्वस्यम् व्री ही कृताः। , उन यन्त्रों में अपने सौवें महापिता को साक्षात्कार चित्रों में दृष्टिपात होने लगा। जो अन्तर्ध्यान में दृष्टिपात होता था वह भौतिक यन्त्र में भी दृष्टिपात होने लगा। परिणाम क्या कि उद्दालक गोत्र हमारे यहाँ विज्ञानमय गोत्र माना गया है। उनके यहाँ इन चारों की व्याख्या करता हुआ एक सूत्र के मनकों की चर्चा करता रहता था।

आओ मेरे प्यारे! देखो, यह मानव के जीवन क्रियात्मक बन जाते हैं, क्रियामय बन जाते हैं वह अपने महापिताओं से वार्त्ता नहीं वह अपने चैतन्य महा प्रभु से भी वार्त्ता प्रकट करने लगते हैं? आज मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले गया हूँ, ऐसे ऋषियों की चर्चा कर रहा हूँ जिनके जीवन में सदैव महत्ता रहती थी। जिनके जीवन में सदैव एक उद्दालक आम् भिरिक कृत देवाः। हमारे यहाँ यह नाना ऋषि हुए हैं एक गोत्र में। उद्दालक एक गोत्र था हरितत् गोत्र से जिसका निकास माना गया था। विरन्तकेतु मुनि महाराज उस गोत्र में 42वें उद्दालक कहलाते थे। जिनका जितना ज्ञान विज्ञान नितान्त (पूर्ण अत्यधिक)

माना जाता था। यज्ञ के ऊपर इनका अधिपथ्य रहता था।

हमारे ऋषि मुनियों ने यज्ञ का जब निर्माण किया, यज्ञशाला का जब निर्माण किया तो यज्ञ से उन्होंने विज्ञान की उत्पत्ति मानी है। यज्ञशाला और विज्ञानशाला दोनों शाला कहलाती हैं। परन्तु यज्ञशाला प्रथम है और उसमें जो क्रिया कलाप होता है उनके ऊपर अध्ययन है, और अध्ययन के पश्चात् विज्ञानशाला है। विज्ञानशाला में तरंगों के ऊपर अनुसन्धान होता है, और तरंगों के ऊपर अनुसन्धान हो करके लोक लोकान्तरों की उड़ान होने लगती है। पञ्च महाभौतिक पिंडों में वैज्ञानिक गति करने लगता है। तो यह ज्ञान और विज्ञान मानव का मौलिक गुण कहलाया जाता है। विचित्रता में रमण करते हैं। इसीलिए वेद का ऋषि कहता है हे यज्ञमान! तेरा सौभाग्य अखण्डता में सदैव परणित रहे जो याग करने वाला हो, जो देव पूजा करने वाला हो।

पूजा का अभिप्राय क्या है? जो देवताओं का सदुपयोग करने वाला हो, उनको जानने वाला हो वह देव पूजा कहलाती है। हमारे जीवन में एक आभा रहनी चाहिए हमारा जीवन एक आभामय रहता है। आज मैं विशेष चर्चा देना नहीं चाहता। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने यह वाक्य प्रकट करने की प्रेरणा दी थी। इसी प्रेरणा के साथ मैं अपने विचारों को व्यक्त कर रहा था। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने कुछ शब्दों की विवेचना कर सकेंगे। आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा था कि प्रत्येक मानव अपनी अपनी तरंगों में सदैव निहित रहना चाहिए। अपनी आभाओं में निहित रहता हुआ उसकी आभा यज्ञमयी, श्रोत्रेमयी, आभामयी वेदमयी, दृष्टामयी, विज्ञानमयी, प्रकृति रहनी चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक्।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? जो इस प्रकार के वैज्ञानिक होते हैं, इस प्रकार के बुद्धिमान होते हैं, वह अपने विद्यालयों में जा करके गो मेध याग करते हैं, अजामेध याग करते हैं, अश्वमेध याग करते हैं, नाना प्रकार के यागों का अधिकार उन्हें प्राप्त होता है। आज का अभिप्राय कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, उसकी महिमा का वर्णन करते हुए संसार सागर से पार हो जाएं। संसार सागर से वह मानव पार होता है जिसका जीवन श्रोत्रमय बन जाता है। आनन्दमय बन जाता

है। यह आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

७ 09 11 1977 पुष्प 35 वेद मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे वैदिक पाठ्यक्रम में तीन प्रकार की आभा वाले मन्त्रों का प्रायः वर्णन होता रहता है। प्रथम मानव के जीवन में क्या क्या करना चाहिए, द्वितीय में यौगिकवाद आता है और तृतीय विज्ञान की नाना प्रकार की तरंगों का वर्णन आता रहता है।

जब मानव वेद के मन्त्र को ले करके अथवा वह मनन करने लगता है तो अग्नि उसके समीप रहती है, और अग्नि के प्रकाश में अथवा तरंगों में वह अपने जीवन की उड़ान उड़ता रहता है। समाधिस्थ हो करके प्रत्येक वेदमन्त्र के भावार्थ अथवा उसमें जो भी विज्ञान है उसके ऊपर वह चिन्तन और मनन करता रहता है। बेटा! प्रत्येक वेदमन्त्र में भी तीन प्रकार के भाव होते हैं। एक लौकिकता होती है, एक विज्ञान होता है और एक आध्यात्मिक वाद होता है। आज कोई मानव एक ही वेदमन्त्र को वह विज्ञान पर भी ले जाता है और वही वेदमन्त्र को समाधि के द्वारा आध्यात्मिकवाद में ले जाता है। यह ही है जो लौकिक वाद में बेटा! जो लोकाचरण हो रहा है। मानो लोकाचार जितना भी मानव का लौकिक क्रियाकलाप है, उसमें भी वह ही एक वेद का मन्त्र घटित हो जाता है। तो परिणाम यह कि यह तीन प्रकार का विज्ञान, तीन प्रकार के शब्द, तीनों ही प्रकार का मानव का जीवन मानो इसमें रत्त रहता है। वेदमन्त्र कोई रूढ़ि नहीं होता है। रूढ़ि उसे कहते हैं जो मैंने जाना है वह ही प्राप्त है ऐसा वेदमन्त्र नहीं कहता। वेदमन्त्र यह कहता है कि जो तुमने जाना है उससे भी विशेष रह गया है, उससे अनन्तवत ब्रह्माण्ड रह गया है। ऐसा जब मानव अपने मनोनीत हृदय में विचार और चिन्तन करता है उसके पश्चात् वेद के मर्म को जानता है।

आज मैं विशेष क्षेत्रों में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि आज का हमारा वेदमन्त्र द्वारा मानो कहीं से प्रेरणा आती रहती है, मेरे प्यारे! महानन्द जी प्रेरणा देते रहते हैं यज्ञम्

गच्छम योनि गच्छत् प्रभा योगाम्। यज्ञम् देवतम् यज्ञमानः। आज के हमारे पठन पाठन में यागों का वर्णन आ रहा था। नाना प्रकार के मन्त्र इस प्रकार के होते हैं जो यज्ञमय जीवन को ऊँचा बनाने वाले होते हैं। इसीलिए मेरे पुत्रो! हमें प्रत्येक मानव को यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपने जीवन की धाराओं को सदैव जानना चाहिए।

मेरे प्यारे! देखो, ममता माता का अस्वस्तम् आभूषण, कहलाया जाता है, वह यज्ञमय कर्म कहलाया जाता है। आज कोई माता अपने श्रृङ्गार में श्रृंगारित होना चाहती है तो उसका वास्तविक श्रृङ्गार उसका मनोनीत उसके जीवन की चरि है। क्योंकि यदि उसके जीवन में एक महत्ता रहती है, तो जानो कि वह आभूषणों से युक्त होने जा रही है।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने विचार देते हुए कहा कि प्रत्येक मानव को संसार में वेद के मर्म को जानना चाहिए। जो भी मानव वेद के मर्म को जानना चाहते हैं तो तीनों प्रकार की अवस्था को मानव को प्राप्त होना है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर जब पहुंचा था तो वे सदैव समाधि में ही रहते थे, सत्यवादी रहते थे, सत्य का आचरण करते थे। मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रश्न किया कि प्रभु आप सदैव मनन और समाधि में रहते हो इसका मूल क्या है? तो उन्होंने कहा हे पुत्र! संसार में जितना भी विज्ञानवाद है, जितना भी व्यापकवाद है वह शान्त अवस्था में और समाधि में ही दृष्टिपात आता है। क्योंकि बाह्य जगत् तो बहुत ही सूक्ष्म है। जितना भी गोपनीय विषय है वह सब समाधि में ही प्रतीत होता है। जैसे वेद का मन्त्र है, रथी कहता है, मानो वेद में रथी शब्द आता है तो रथ के नाना प्रकार के रूपों में वर्णन किया गया है। जैसे रथ वाहन को कहते हैं, रथ हमारे यहाँ शरीर को भी कहा जाता है। रथ नाम इस ब्रह्माण्ड को भी कहा गया है। तो यह एक रथ है। इसके कितने स्वरूप माने गएं हैं। परन्तु एक अर्थ रूढ़ि होता है जो हमें समाज में क्रिया कलाप को जानना हो, सर्वत्र के लिए एक ही तुल्य होता है। द्वितीय अर्थ उसका यौगिक होता है, आत्मा के विज्ञान में ही उसकी आभा निहित रहती है। उसके पश्चात् और भी गम्भीर वह समाधि में चला जाता है तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसे एक रथ के तुल्य दृष्टिपात होने लगता है।

मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने

के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को संसार में याग करना है और याज्ञिक बनना है। न करने वाला भी याग कर रहा है। शुभ चिन्तन वाला भी याज्ञिक बना रहता है। मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते रहते हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने यज्ञ के चरण में अपने जीवन को हुत कर दिया। हुत करने वाले कौन? जैसे महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज हुए, जैसे रैनुकेतु ऋषि हुए हैं, कृत विरह उधालक गोत्र में हुए हैं। जो याग को करते थे। अग्नि होत्र कर रहे हैं तो ब्रह्म का चिन्तन हो रहा है तो मानवीय दर्शन के ऊपर उनकी आभा रमण कर रही है। मैंने बहुत पुरातन काल में पुत्र! तुम्हें यह वर्णन करते हुए कहा था कि यह संसार वास्तव में एक यज्ञमय माना गया है। क्योंकि प्रत्येक मानव संसार में यज्ञमान बनने के लिए आया है। वह वास्तव में यज्ञमान है। उसका जो उद्गाता है, उसका जो आदि ब्रह्म है वह ब्रह्म बन करके उसकी अग्नि को उद्बुद्ध करता रहता है और वह अग्नि जब उद्बुद्ध हो जाती है तो मानव का जीवन कृतकृत्य हो जाता है।

मेरे प्यारे! मैं आज कोई विशेष चर्चा करने नहीं आया हूँ। मेरे प्यारे! महानन्द जी भी अपने दो शब्दों की विवेचना कर सकेंगे परन्तु आज का हमारा वाक्य तो यही कह रहा है कि हम अपने जीवन में, अपने में, प्रत्येक वेदमन्त्र को विचार विनिमय करने वाले बनें। प्रत्येक वेदमन्त्र में तीन प्रकार के भाव होते हैं एक सांसारिक लोकाचार, द्वितीय विज्ञान और तृतीय आध्यात्मिक जिसको यौगिकवाद कहते हैं। यौगिकवाद में रूढ़ि नहीं होती। लोकाचार में रूढ़ि होती नहीं, परन्तु समाज बना लेता है। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्दों की विवेचना करेंगे। आज का हमारा वाक्य यज्ञ के सम्बन्ध में अपनी आभा प्रकट कर रहा है, उसी के आँगन में मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओं ममतव दिवायं गतत् प्रभा! विशशचम् रेवाः मन वन्तस्व चरह प्रति लोकाः व्यापकम् योगश्चम् रुद्राः।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल। अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। वेदमन्त्रों के सम्बन्ध में यह अपना विचार देते चले जा

रहे थे। प्रायः इनके विचारों में एक यौगिकवाद होता है। मानव के अन्तःकरण को छूने वाला, स्पर्श करने वाला एक विचार होता है। जिन विचारों को ले करके मानव के जीवन का सदैव उत्थान होता रहता है। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रार्थना करने के लिए आया हूँ कि मैं सदैव यागों के सम्बन्ध में निवेदन करूं अपने पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा के आधार पर इनका हमारे ऊपर अनुग्रह होता रहता है।

हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ होना चाहिए। तेरे आयु में महत्ता और विचित्रता और यौगिकता होनी चाहिए। जिससे मानव का हृदय सदैव अन्तःकरण को ले करके अपने जीवन के महान् सबसे प्रथम आभा को ले करके ऊँची उड़ान उड़नी चाहिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यज्ञमान के सम्बन्ध में तो नहीं। परन्तु मैं यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे देवताओं से सदैव याचना करता रहता हूँ। हमारा यह सदैव मनोनीत भाव होता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव सदैव समाधि की चर्चाएं करते रहते हैं। आधुनिक काल में मानव का यह विचार रहा है। बहुत पुरातनकाल हो गया है, महाभारत काल के पश्चात् संसार में अन्धकार की तरंगें ओत प्रोत हुईं। और वह अंधकार इतना बलवती बना कि धर्म और मानवता को शान्त करने का प्रयास किया। मानवता और धर्म न रहा। अन्तिम परिणाम यह हुआ कि विज्ञान में समत्तसमय पर महापुरुषों ने आ करके समाज को चेतावनी दी और चेतावनी देकर के उन्हें प्रेरणा दी और प्रेरित करके उनको धर्म के क्षेत्र में लाने का प्रायः प्रयास किया।

आज जब मैं यह विचारता हूँ कि समय समय पर महापुरुषों ने अपनी अपनी प्रेरणा दे करके समाज को प्रेरित किया। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद को वर्णन कराया। मेरे पूज्यपाद भी वर्णन कर रहे थे। आधुनिक काल में नाना वाक्य प्रचलित होते रहत्त हैं। भगवान् कृष्णा और अर्जुन दोनों का संवाद यह मानव के मनों में रत्त हो गया है। यह अपनाया है कि दोनों का संवाद कुरुक्षेत्र में होता रहा है। जब दोनों का संवाद होता रहा उस संवाद ने अज्ञान को समप्त किया। परन्तु जहाँ ज्ञान और अज्ञान का सम्बन्ध है, वहाँ यह विचार आता है कि कुरुक्षेत्र में जब भगवान् कृष्णा ने अर्जुन की

ममता का मानो अहम् भाव को समाप्त करने कत्तप्रयास किया, और जब मैं यह विचारने लगता हूँ कि वास्तव में यह वाक्य यथार्थ है अथवा नहीं तो यही वाक्य आता है कि अज्ञान को समाप्त करने के लिए मानव सर्वत्र प्रयास करता है। गुरु और शिष्य दोनों का समन्वय होता है। गुरु और शिष्य दोनों के कर्त्तव्य में विक्रितता आ जाती है उस समय आचार्य गुरु कहता है कि तू मेरे अर्पण क्यों नहीं कर रहा है सर्वत्रता को? इसे अर्पण कर जिससे तेरे में ज्ञान की उपलब्धि हो करके अज्ञान को तू मुझे प्रदान कर। जब यह आभास करता है तब भी उसके आँगन में नहीं आता। जब आँगन में नहीं आता तो कुछ ऋषि इस प्रकार के कठोर तपस्वी होते हैं जो अपना किया हुआ, अपना जो मानवीय विचार होता है, मन्थन किया हुआ अनुसन्धान किया हुआ तरंगवाद होता है उसे दूसरे मानव पर तरंगति करके उससे जो चाहता है उससे उच्चारण करा देता है अथवा वही क्रिया कलाप उससे करा लेता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन किया कि हमारे जीवन में नाना प्रकार की विद्यायें समापन हो रही हैं मानो उसमें विज्ञानवेत्ता दृष्टिपात नहीं आ रहे हैं। देखो, भगवान् कृष्ण के जीवन में मानो जब अर्जुन को अन्धकार आया, अज्ञान आ गया था तो उस समय उन्होंने अपनी मनोनीत, मन और प्राण को एक सूत्र में ला करके और उनके अज्ञान को समाप्त किया। हे अर्जुन! यह तो सर्वत्र प्राण के सूत्र में पिरोया हुआ ही प्रत्येक प्राणी है जगत् का। मानो जितना भी प्राणी है और चाहे वह जड़ जगत् का प्राणी क्यों न हो परन्तु वह एक चेतना से प्राणमय आभा से पिरोया हुआ दृष्टिपात आता है। जब उन्हें यह प्रत्यक्ष कराया कि प्राण ही एक सूत्र है, जिस सूत्र में यह ब्रह्माण्ड का प्रत्येक प्राणी पिरोया हुआ है। जब यह ज्ञान हो गया कि वास्तव में यह प्राण ही प्राण है, यह मन ही मन है। जहाँ पृथ्वी में पहुंचे वहाँ उन्हें क्रिया दृष्टि आने लगी परिणाम यह हुआ कि अर्जुन ने उसी समय नतमस्तक हो करके कहा प्रभु! मैं संग्राम करने के लिए तत्पर हूँ। उन्होंने कहा कि हे अर्जुन! यह जो संसार है यह पीपल के वृक्ष की नाई कहलाता है। जैसे पीपल के वृक्ष में पत्ते ही उसके पत्र वेदततम् माने गएं हैं, और उसकी जो शाखाएं हैं वे नदियां मानी जाती हैं और उसका जो तल

है वह पृथ्वी मण्डल माना जाता है, और अचिन्तन कहलाया जाता है वह समुद्र के तुल्य कहलाया गया है। इसी प्रकार जब तुम इस प्रकार के भावों को ले करके गीताञ्जली को अर्पण करने लगोगे। अपने जीवन के गान गाने लगोगे। जैसे प्राण और मन गान गा करके वह गीताबली गान गा रहा है, प्राणमय तो शब्द होता है, उस शब्दों में ही विचित्र आभाएं होती हैं। उन्हीं शब्दों की धाराओं से यह सर्वत्र जगत् शब्दायमान हो रहा है। चाहे वह शब्द परमाणुवाद में हो, चाहे वह शब्द सूर्य और पृथ्वी के उद्गीत गाने से हो, चाहे आचार्य यज्ञशाला में विद्यमान हो करके उद्गान गा रहा हो वह प्राण का ही शब्द है। यह सर्वत्र जगत् शब्दायमान हो रहा है आज तुम अज्ञानता में आ गए हो। यह तुम्हें शोभनीय नहीं है। परन्तु उन्होंने योग मुद्रा में प्रवेश हो करके उनके अन्तरात्मा में जो अज्ञान था उसे उन्होंने समाप्त किया। यह वाक्य गुरुदेव ने वर्णन कराया था। उसे विराट नवीन स्वरूप कहा जाता है।

विराट स्वरूप किसे कहते हैं? जो मानव इस ब्रह्माण्ड का यथार्थ वर्णन करा देता है। यथार्थ उसको यौगिकता में ला देता है। जैसे ब्रह्माण्ड है, ब्रह्माण्ड को जो पिण्ड में घटित कर देता है, पिंड में जो आभा दृष्टिपात आती रहती है तो गागर में सागर की कल्पना है, और वही ब्रह्माण्ड को पिंड में और पिंड को ब्रह्माण्ड में परणित कर देता है। वही विराट स्वरूप को जानने लगता है, वही विराटमय स्वरूप माना गया है। जो यह जान लेता है कि जो मेरे चक्षुओं पर जो देवता विराजमान अश्विनी कुमार, घ्राण पर दो देवकृत हैं एक पर कश्यप है तो एक पर मित्राणि कहलाया जाता है। तो प्रत्येक इन्द्रिय पर देवता विद्यमान हैं। किसी पर सूर्य तो किसी पर चन्द्रमा है। किसी पर पृथ्वी है, किसी पर अग्नि है, तो किसी पर वायु है, किसी पर अन्तरिक्ष की तरंगें अपना कार्य कर रही हैं। मानो ब्रह्माण्ड को पिंड में और पिंड को ब्रह्माण्ड में जो दृष्टिपात कराना जानता हो वह विराटमय ब्रह्म के स्वरूप को जानता है।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। मेरे पूज्यपाद ने इससे पूर्व काल में वर्णन कराया था आज मैं उन्हीं वाक्यों की पुनरुक्ति क्या स्पष्टीकरण कराता रहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण है, जिस काल में ऋषि मुनि विद्यमान हो करके अपनी मानवीय

तरंगों में तरंगित होते हुए, जीवन धाराओं को मानवीय क्षेत्र में ले जाने का सदैव प्रयास करते रहे हैं। जहाँ तक मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी यह वर्णन कराया है वेद के सम्बन्ध में, वेद की प्रतिभा मानो यौगिकता विज्ञानवाद के वाक्य आते हैं परन्तु आज के समाज ने ज्ञान को इतना संकीर्ण स्वीकार कर लिया है। वास्तव में ज्ञान की व्यापकता को नहीं जाना है। क्योंकि जब भी कोई मानव विज्ञान की उड़ान उड़ने लगता है वह विज्ञान भी वेद की आभा से उत्पन्न होता है, और जितना भी ज्ञान है, विज्ञान है परमाणुवाद है, यन्त्रवाद है, चित्रावली वाद है यह सर्वत्र उस आभा से गुथा हुआ है। वह आभा एक मनोनीतता में परिणाम मानी गई है। वह मानव के जीवन से ही गुथा रहता है जिससे मानव का जीवन सदैव पवित्र और ऊँचा बनता रहे।

अन्त में यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को ब्रह्म के सम्बन्ध में नाना प्रकार की चर्चायें, नाना प्रकार का मनोनीत हृदय की धारायें जिस मार्ग को अपना लेते हैं वही ब्रह्म से पूर्ण दृष्टिपात आने लगता है। जिसकी आभा को अपनाना चाहता है। परन्तु मार्ग केवल एक ही एकांकी ही माना जाता है जो सर्वत्र मार्गों में परिणित माना गया है।

आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने केवल तीन वाक्य उच्चारण किए हैं। एक लोकाचार। लोकाचार किसे कहते हैं? वेद की भाषा में लोकाचार कहते हैं जो लोकप्रिय अपने जीवन को बनाता है। लोकाचार में वह अनुशासन में अपने जीवन को ले जाता है। उसके पश्चात् उसमें एक विज्ञानवाद माना गया है। विज्ञान में वह समाधि तरंगों को जानता हुआ नाना यन्त्रों का निर्माण करता है। और वही मानव जब समाधि में प्रवेश करता है तो आध्यात्मिकवाद, लोकाचार और विज्ञानवाद एक सूत्र में पिरोएं जाते हैं और उस सूत्र में पिरोने के नाते वही विज्ञान मानव के जीवन का साथी बन जाता है।

आज मैं अपने पूज्यपाद को यह वर्णन करने आया हूँ कि आज मैं वेदमन्त्रों का उच्चारण श्रवण कर रहा था। मेरा अन्तरात्मा सदैव प्रसन्नतायुक्त हो रहा था मैं अपने में यह स्वीकार कर रहा था कि प्रत्येक मानव यहाँ याज्ञिक बना हुआ है। आज जब मैं यह

विचारता हूँ कि परम्परा के काल में हमारे यहाँ नियमावली बनी रहती थी कि राजा के राष्ट्र में याग करना है। राजा प्रातःकालीन यागों में परणित रहे हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की यह नियमावली रही है जहाँ भी मानव पुरोहित रहा है वहाँ यागों का चलन रहा है। यागों की परम्परा रही है। क्योंकि यज्ञ सुगन्धी से राष्ट्र भरण किया जाता है। उसका अनुसरण प्रजा करने लगती है। प्रजा में चरित्र होना चाहिए। प्रजा में महत्ता होनी चाहिए। प्रजा में चरित्र नहीं है प्रजा में मानवता नहीं है। मेरी प्यारी पुत्रियों में इस बनावटी श्रृङ्गार की आभा है। वेद यह कहता है, धर्म और मानवता यह कहती है कि संसार में जितना भी श्रृङ्गार है वह माता की, पुत्री की वाणी में है। उसका श्रृङ्गार उसका गर्भाशय है, वह श्रृंगारित होती रहती है। उसी से वह मनोनीत हृदय को ऊँचा बनाती रहती है।

जहाँ संसार में विज्ञान को अपने में धारण करते हुए समाधिस्थ को त्याग देते हो, जहाँ लोकाचार समाप्त हो जाता है, वहाँ मनोनीतता में अकर्त्तव्य की भावना आ जाती है वह ही हृदय अकृतों में नष्ट करा देता है।

आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि मानव का जीवन याग के लिए है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराना चाहता हूँत्तक आधुनिक जगत् कुछ इस प्रकार का बन गया है। राष्ट्र पद्धति विचित्र न रहने से, उनमें क्रियात्मक जीवन न रहने से धर्म को प्रत्येक मानव एक आडम्बर की दृष्टि से दृष्टिपात कर रहा है। वह यह कहता है कि धर्मयज्ञं ब्रह्मे मैं यह कहा करता हूँ कि कोई भी त्ताणी धर्म से विमुख नहीं हो सकता। आज जो मानव यह कहता है कि मैं धत्त को स्वीकार नहीं करता हूँ, वह अशुद्ध उच्चारण करता है। क्योंकि नेत्रों से दृष्टिपात करना भी तो उसका धर्म है। अरे, क्या उसको दृष्टिपात नहीं किया जाएगा। रहा यह कि इनकी तरंगों को शोधन करना है, वह पृथक जीवन माना गया है। वह पृथ्त्त जीवन कैसा है? जैसे एक मानव याग कर रहा है वह पृथक जीवन है, वह प्रारंभिक जीवन है, उसी में आकर के जब हम याग करते हैं, यज्ञ को अपनाते हैं, राजा उसको अपनाता है, प्रजा अपनाती है तो राष्ट्र का सुगन्धि से भरण हो जाता है। तो वह धर्म है वह लोकाचार में विचित्र माना गया है, वह रूढ़िवाद नहीं

रह पाता। क्योंकि सुगन्धि रूढ़ि नहीं है, व्यापक होकर के वह रूढ़ि से पृथक हो जाता है।
आधुनिक काल का जो जगत् है वह महाभारत काल के पश्चात् जो यागों के सम्बन्ध में अज्ञानता आई है, उसको वर्णन करने में मैं असमर्थ रहता हूँ। अश्वमेध याग करना राजा का कर्त्तव्य था। महाभारत के पश्चात् उसमें अश्व की घोड़े की मांस की आहुति देना समाज ने स्वीकार कर लिया अश्व को न जानकर के अज्ञान आया। वेद के मर्म को न जानने वाले, वेद के शब्दों को न जानने वाले कि अश्व किसे कहते हैं और एक घोड़े को स्वीकार करके मांस की आहुति देना और उसके पश्चात् अजामेघ याग में प्रजा प्रकृति को न जानकर के एक बकरी नाम के पशु को स्वीकार करके बलि प्रदान कर देना। इसी प्रकार हमारे यहाँ गोमेघ यात्तका वर्णन आया। गोमत्ता याग में गऊ के मांस की आहुति देना, गऊ को भक्षणात्मक रूपों में बना देना। गो तो देखो, विद्यालय में एक गुरु शिष्य का सम्बन्ध था, उसको न जानकर के इस भ्रमित समाज में वेद के रूढ़ि शब्दों को ले लिया। यौगिक शब्दों को न लिया। उसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञों की परम्परा के यज्ञों में रूढ़ि आ गई।
इसी प्रकार यहाँ और भी यागों में जैसे देवी याग है, जहाँ देवी याग में हमें देवी की पूजा करनी है, वहाँ देवी के ऊपर अपनी रसना के स्वादन में यह समाज आ रहा है। आज भी जब मैं इस राष्ट्र का भ्रमण करता हूँ तो देखो, समय आता रहता है, यह अष्टमी दुर्गा चली गई, मानो पर्व चले गए हैं। इन पर्वों में लाखों प्राणी इस प्रकार नष्ट हो जाते कि पर्व में जो देवी के नाम पर अपनी रसना का भक्षण बनाया गया। यह क्या है? यह अज्ञान है। इस अज्ञान को समाप्त करने का मानव को प्रयास करना चाहिए।
इसी प्रकार देवी याग का अभिप्राय क्या है! हमें देवी याग करना है। देवी नाम पृथ्वी का है। इस पृथ्वी में सुगन्धि भरण कर दो। इसमें जो नाना प्रकार के तथ्य हैं उन्हें जानने की इच्छा प्रकट करो। वह देवी पूजा है। पूजा केवल इसी को माना गया कि देवालयों में विराजमान होकर के जल का प्रोक्षण कर आए और यही पूजा है? अरे, यह पूजा नहीं कहलाती है। पूजा वह कहलाती है जैसे यह पृथ्वी माता है, यह देवी

कहलाई जाती है। इसके ऊपर नाना प्रकार के मानव शुभ और अशुभ दोनों कार्य करता है, और देवी हमें क्या देती है? अन्न देती है, खाद्य पदार्थ देती है और खनिज भी देती है जिससे राष्ट्र ऊँचा बनता है। खाद्य से प्राणी मात्र का जीवन चलता है। इसके गर्भ में क्या क्या विद्यमान है? इसकी व्याख्या मैं नहीं करना चाहता हूँ। परन्तु इन अर्थों को जानकर ही मानव अपने जीवन को ऊँचा बना सकता है। धर्म और मर्यादा को ऊँचा बना सकता है।

जब मैं यह विचारने लगता हूँ कि हम देवालयों में जाकर पूजा का अर्थ स्वीकार कर लिया वो नहीं। हमें वहाँ भी जाना चाहिए परन्तु उनके आचरणों को अपनाना ही हमारी पूजा मानी गई है। वह पूजा का अभिप्राय है। हमें शिवजी के गुणों को अपनाना है, भगवान् कृष्णा के गुणों को अपनाना है। वे अज्ञानता को समाप्त करते रहते थे। आधुनिक काल का ऐसा मत है भगवान् कृष्णा के सम्बन्ध में कि उनकी सौलह हजार आठ गोप गोपिकाएं कहलाती थी। जैसे सत्भामा, रुकमणी आदि आठ पटरानी कहलाती थीं। प्रमुख रानियां कहलाती थीं, और सौलह हजार गोपियां थीं जिनके साथ वो विनोद करते थे। कई काल में पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन करते हुए कहा था कि भगवान् कृष्णा आठ चक्रों कोत्तानते थे और सौलह हजार वेद मन्त्रों के गोपनीय विषयों को जानते थे। आठों चक्रों को जानकर आठों सिद्धियों को जानते थे। और सौलह हजार वेद मन्त्रों के गोपनीय विषयों को जानते थे। वह सदैव उनमें विनोद करते रहते थे। आधुनिक जगत् में उनके अर्थों का अनर्थ कर दिया है। ऐसा भी हमारे जीवन में आता है कि उन गोपनीय विषयों को षोडश कलाओं में नियुक्त माना गया है। इसलिए सोलह कलाएं होती हैं, ब्रह्म की षोडश कलाएं हैं और उन षोडश कलाओं की तरंगें होती हैं। और आठ चक्र हैं मानव के शरीर में। नौ द्वार होते हैं। इसी प्रकार उन सब क्रियाकलापों को भगवान् कृष्णा जानते थे। मुझे स्मरण है जब कंस को विजय करने के पश्चात् महाराजा कृष्णा समुद्र के तट पर विराजमान हो गए थे, मानो तपस्या करते रहे। उन्होंने बारह बारह वर्षों तक तप किया है। ऐसे तपस्वी को देवियों में विनोद करने वाला कहा तो यह तो अज्ञान है। न जानकर अर्थों का अनर्थ नहीं होना चाहिए। अर्थों का अनर्थ हो

करके महापुरुषों के जीवन की आभा समाप्त हो जाती है। महापुरुषों का क्रिया कलाप समाप्त हो जाता है। उसमें रूढ़ि आ जाती है। और वह रूढ़ि ही उन महापुरुषों को ऐसे विडम्बित कर देती है जैसे जिवीत मानव को अग्नि में दाह कर देते हैं। वह मानव विडम्बित होता है। ऐसे ही महान् आत्मा विडम्बित होती रहती हैं।
मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वर्णन कराने आया हूँ कि आज हम अपने जीवन में रूढ़ि न ला करके यौगिकता को लाने का प्रयास करें। यह इनकी सदैव से प्रेरणा हमें प्रप्त होती रही है। इन्हीं की प्रेरणा के आधार पर हमारे जीवन में महान् तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं, इनकी प्रेरणा प्राप्त होती रहती हैं।
आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में यह उच्चारण कर रहा था कि अर्थों का अनर्थ करने से यज्ञों की परम्परा समाप्त हो जाती है और वर्णशंकरता आ जाती है। समाज में वर्ण शंकर का भाव क्यों आ गया? क्योंकि विज्ञान का दुरूपयोग होने से भी वर्णनशंकरता आ जाती है। धर्म के मर्म को न जानने से वर्णशंकरता आ जाती है। वर्णशंकर किसे कहते हैं? वर्णशंकर उसे कहते हैं क्योंकि राष्ट्र की पद्धति पवित्र न रह करके, मनु वाले सिद्धान्त न रह करके आज का राष्ट्र यह कहता है कि हम अपने समाज में रूढ़ि नहीं रहने देंगे। मैं भी कह सकता हूँ कि इस समाज में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। परन्तु यह रूढ़ियां तुम से समाप्त नहीं हो सकेंगी। क्यों नहीं हो सकेंगी? क्योंकि जब तक तुम्हारे विद्यालयों की परम्पराओं का, शिक्षा पद्धति का परिवर्तन नहीं होगा तब तक तुम समाज का परिवर्तन किसी भी काल में नहीं कर सकते। जहाँ मनु जी वाले सिद्धांत वाले आचार्य नहीं होंगे विद्यालयों में, जहाँ अपने शिष्यों पर अपने गुरुओं के मनों की प्रवृत्तियां नष्ट होती हों और कोई राजा यह जानने के लिए तत्पर न हो कि यह विद्यालयों में क्या हो रहा है? क्या वह इस समाज का परिवर्तन करना चाहते हैं? यह मेरे जैसे के लिए उच्चारण पी 21, ग्रीन पार्क विस्तार, नई दिल्ली समय प्रातः 9 30 बजे।

८ 02 07 1978 आत्म लोक एवं इन्द्रियों की साधना

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व

से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की पतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है अथवा उसी की प्रतिभा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत रहती है। जितना भी यह जड़ जगत अथवा चतैन्य जगत हमे दृष्टिपात आता है जितना भी यह चेतनामय दृष्टिपात आ रहा है, इस सर्वत्र चेतना का जो मूल है अथवा गति देने वाला है, वह परमापिता परमात्मा ही माना जाता है क्योंकि वह विज्ञानमय है। वह ज्ञान की तरंगों में तरंगित हो रहा है। प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, उसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है।

आओ! मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ वार्ताएं अथवा कुछ प्रेरणा दे रहा था। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र मानव को कोई न कोई प्रेरणा देता है। मुझे नाना ऋषियों की वार्ताएँ स्मरण आती रहती हैं और उनमे ऋषियों के द्वारा जो वेदमन्त्र की प्रतिभा अथवा वह जो परमात्मा का वर्णन करता है, उसकी आभा उसमें निहित रहती है और वह जो आभा है, वही मानव को मानवता तथा मननशीलता और महत्ता प्रदान करती रहती है। वही प्रेरणा तो मानव को निर्मल स्वच्छ बनाती रहती है। क्योंकि हमारे यहाँ चिन्तन करने का एक मार्ग है। प्रत्येक मानव चिन्तन करने के लिए आया है और चिन्तन मानव को करना ही चाहिए। चिन्तन क्या है? यह आत्म प्रेरणा है, अथवा ज्योति है जिस ज्योति को धारण करने के पश्चात मानव ज्योतिर्मय बन जाता है और अपने अन्तरात्मा में, अन्तर्हृदय में जो ज्योति जागरूक हो रही है, उस ज्योति को अपने में धारण करता हुआ, प्रेरणा में रमण करता हुआ, सर्वत्र ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने लगता है। आज मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चाएँ तो इस सम्बन्ध में देने नहीं आया हूँ, परन्तु हमारा जो विचार विनिमय है, हमारा जो चिन्तन करने का कोई विषय है वह विषय है आत्मलोक क्योंकि हमारे यहाँ वशिष्ठ पुरूषों ने चार प्रकार के लोकों की विवचेना की

है। सबसे प्रथम आत्मलोक कहलाता है द्वितीय पितर लोक कहलाता है तृतीय गन्धर्व लोक कहलाता है और चतुर्थ में ब्रह्म लोक का वर्णन आता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें आत्म लोक में ले जाना चाहता हूँ।

मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय बेटा! नाना ऋषि विद्यमान हुए। जिन ऋषियों में महर्षि प्रवाहण, महर्षि तिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि पुलस्त्य, महर्षि रेवक मुनि महाराज और महर्षि शाण्डिल्य, महर्षि मुद्गल, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि सोमकेतु ये नाना ऋषि अपने अपने में पूर्णत्व को प्राप्त रहते थे। मुझे स्मरण है पुत्रों! एक समय ये सब जिज्ञासु अपने आसन में गति करने लगे और भ्रमण करते हुए महर्षि जमदग्नि के आश्रम में पहुंचे। महर्षि जमदग्नि ने कहा, कहो ऋषियों! तुम्हारा इस प्रकार आगमन क्यों? क्योंकि ब्रह्मवेत्ताओं का जो आगमन होता है, वह कोई न कोई कारण लिए होता है। उन ऋषियों ने एक ही स्वर में कहा, हे ऋषिवर! आज हम कुछ वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे और उन वेदमन्त्रों में हमारे यहाँ आत्म लोक का वर्णन आ रहा था, आत्मा की आभा का वर्णन आ रहा था। तो हम सर्वत्र जिज्ञासुओं ने यह विचारा कि महर्षि जमदग्नि के आश्रम को गमन करना चाहिए। क्योंकि वह पूर्णरूपेण है और वह आत्मा का चिन्तन करने वाले हैं, आत्मलोक को जानते हैं। तो इसलिए प्रभु! आपके आश्रम में आए हैं, हमारा जो निर्णय कृति वृत्त, वेत्ता है, हमारे जो मनों में शंकाएं हैं, आत्म लोक का जो विवरण है। हमने आत्म लोक को केवल अङ्कुर रूपों में धारण कर लिया है। परन्तु यह वृक्ष कैसे बनता है? यह हम नहीं जान पाते। यह हमें निर्णय कराइये।

महर्षि जमदग्नि ने इस वाक्य को स्वीकार किया और उन्होंने कहा, भाई! इसके ऊपर मेरा भी प्रायः अध्ययन चल रहा है। चलो, हम भी यहाँ से गमन करते हैं, हम भी इस विषय के जिज्ञासु हैं परन्तु जिज्ञासा ले करके हम यहाँ से गमन करते हैं और भ्रमण करते हुए महर्षि सोमकेतु, जो भारद्वाज कहलाते हैं, वह इसका निवारण करेंगे।

वहाँ से सर्व जिज्ञासुओं का समूह भ्रमण करता हुआ उस आश्रम में पहुँचा जहाँ ऋषिवर ब्रह्म की उड़ान उड़ रहे थे। वह चिन्तन और मनन कर रहे थे। वह सोमकेतु भारद्वाज मुनि के द्वार पर पहुंचे। सोमकेतु भारद्वाज मुन महान ने अपने आसन को त्याग दिया

और कहा, आओ ब्रह्मवेत्ताओं! विराजो वे ब्रह्मवेत्ता जब विद्यमान हो गएं तो सोमकेतु मुनि महाराज बोले कि महाराज! यह मेरा कैसा सौभाग्य है, आज मेरे यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं का समूह मेरे द्वार पर आ पहुंचा है, बिना सूचना के। आगमन की कोई पूर्व सूचना नहीं। मुझे कोई प्रतीत नहीं था कि ब्रह्मवेत्ताओं का आसन तेरे यहाँ, तेरे आसन पर आ पहुंचेगा। यह मेरा कैसा सौभाग्य है, मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ। जिस आसन पर ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्म का चिन्तन करने वाले पुरूष रहते हों। अथवा पुरूषों का आगमन होता हो, वह कितना सौभाग्शाली है। जब यह वाक्य उन्होंने श्रवण किया तो ऋषि बोले, नहीं, कोई वाक्य नही। ऋषिवर! आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं, आपने तो सोम का पान किया है, हम सोम की जिज्ञासा में हैं। हम जिज्ञासु हैं, आपने उस वस्तु को प्राप्त कर लिया है। उन्होंने कहा, प्रभु! आपका आगमन क्यों? बिना कारण के आपका आगमन नहीं हो सकता। इसके कारण को मैं जानना चाहता हूँ। सब ऋषियों ने एक ही स्वर में कहा, हे ऋषिवर! आज हम कुछ वेदों का अध्ययन कर रहे थे और जब हम अध्ययन कर रहे थे तो उसमें आत्मलाकों की चर्चा आ रही थी। हम आत्मलोक को जानना चाहते हैं, यह आत्म लोक क्या है?

सोमकेतु भारद्वाज मुनि ने कहा, तुम आत्मा के सम्बन्ध में कितना जानते हो? जब उन्होंने कहा तो बेटा! ऋषियों ने कहा कि महाराज! अब तक हमने यही जाना है कि आत्म तत्त्व हमारे शरीर में वास करता है। परन्तु हम यह नहीं जानते कि आत्म लाके क्या है? हम आत्म लोक को जानना चाहते हैं। सोमकेतु भारद्वाज मुनि बोले कि यह तो तुम जानते हो कि लोक उसे कहते हैं जहाँ जिसका वास हो। लोक का अभिप्राय इतना ही है। आत्म लोक का अभिप्राय है कि आत्मा एक लोक में रहता है और वह आत्मा का लोक क्या है? आत्मा का लोक यह शरीर कहलाता है, इस शरीर में आत्मा का वास करता है तो यह शरीर आत्मा का लोक कहलाता है।

अब तुम यह जानना चाहोगे कि आत्म लोकाम् बृहिः वृत्तम् देवयत्ताम् लोकाः। यह आत्मा का एक लोक है, जो इस शरीर में वास करने वाला है। शरीर एक लोक कहलाता है। विचार यह आता है कि जैसे मानव दर्पण में अपने को दृष्टिपात करता है इसी प्रकार

दर्पण की भांति इस मानव शरीर में यह आत्मा वास करता है। इसलिए हमारे आचार्यों ने सबसे प्रथम आत्मा को जानने के लिए कहा है। यह कहा है कि हे मानव! यदि तू अग्रणीय बनना चाहता है तो अपने को जानना ही तेरा कर्त्तव्य है क्योंकि तेरा अन्तरात्मा में, तेरे अन्तर्हृदय रूपी गुफा में यह आत्मा, आत्म चेतना वास करती है और आत्म चेतना, जिसके कारण यह मानव शरीर चेतनित बना रहता है, आत्मा का यह लोक है। इस आत्मा को जानना तेरा कर्त्तव्य है।

आदि ऋषियों ने विराजमान हो करके सबसे प्रथम कहा कि मानव को तीन आचमन करने चाहिए। तीन आचमन क्यों करता है प्राणी? आचमन इसलिए करता है कि त्रिविद्या की वह महान महत्ता में रमण करने वाला बने और त्रिविद्या को पान करने वाला जो होता है वह ब्रह्मणाः वृत्तम देवाः वह ब्रह्म वस्तुतिः वृत्तः देवा अभ्यम् गति नानश्चतः। वेद का आचार्य कहता है कि वह जब आचमन करता है तो वह त्रिविद्या का पान करता है और त्रिविधा क्या है? जैसे शीतल जल मानव के कण्ठ में शान्ति स्थापित करता है, मानव का कण्ठ शान्त हो जाता है। इसी प्रकार यह जो त्रिविद्या है इसको हम ज्ञान, कर्म और उपासना कहते हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना ही तीन आचमन कहलाए जाते हैं। सबसे प्रथम वह ज्ञान में जाता है।

ज्ञान का जब आचमन करता है तो यह विचारता है कि मैं ज्ञान के क्षेत्र में हूँ। उसके पश्चात वह कर्म में चला जाता है। कर्म की मीमासा करने वाला मीमांसाकार कहता है कि जितना भी मानव के हृदय में नृत्य होता है वह सर्वत्र एक कर्म कहलाता है। ज्ञान, कर्म और उपासना कहते हैं, प्रभु की महिमा को जानना। प्रभु की जो महिमा है अपने को जब प्रभु को समर्पित करके और प्रभु की जितनी भी महिमा है, जितना भी यह तरंगवाद है, इसमें जब वह गति करने लगता है तो जानो वह उपासना कर रहा है। उपासना का अभिप्राय क्या है? उपासना कहते हैं ऊपर उपासना उपविद्या का धारण करना।

परा और अपरा दो प्रकार की विद्या कहलाती है, दो प्रकार का ज्ञान कहलाता है। एक परा है, एक अपरा है। जो परा विद्या है, जिस परा विद्या में जाने के पश्चात मानव को

प्रकाश ही प्रकाश प्राप्त होता है, वह प्रकाश में रमण करना चाहता है। वह परा विद्या कहलाती है। जिसे हम परा कहते हैं। एक अपरा है। अपरा संसार का ज्ञान है। तो आओ मेरे प्यारे! उपासना का अभिप्राय क्या कि हम उपासक बने। उपासक हम किसके बने। हम प्रभु ही प्रतिभा अथवा उसका जितना भी ऊपरी विवरण है उसको हम अच्छी प्रकार जानते रहें। उस आभा में रमण करते रहें। प्रभु का मनन करते हुए उसकी आभा को जानना ही उपासना कहलाती है।

सबसे प्रथम जब आत्म लोक में प्रवेश करता है, आत्म लोक में जब जाता है तो वह तीन आचमन करता है। आचमन का अभिप्राय त्रिविद्या को धारण करने वालों में नाना ब्रह्मवेत्ता हुए हैं। परन्तु आज का विचार क्या? मुनिवरों! देखो, तीन आचमन करता है। आचमन करने के पश्चात सर्वत्र जो इन्द्रियाँ हैं मानव के शरीर में, इन इन्द्रियों के ऊपर वह अपना अधिपथ्य करता है।

वह कहता है प्राणाम् बृहिः रत्त्यम् देवाः। वाक् शक्ति मेरी पवित्र हो। वाक् शक्ति में जाता है। वाक् वाक् कहता है क्योंकि यह जो वाक् शक्ति है यह वाणी से शब्द उच्चारण कर रहा है उस शब्द की जो गति है वह कितनी विशाल है कितनी महान है। तो प्रभु! से आत्म लोक में जाने से पूर्व यह विचारता है कि मेरी वाक् शक्ति इतनी विचित्र हो। मेरा वाक्य, मेरा शब्द इतना महान हो कि उस शब्द के द्वारा मैं नाना लोकों में गति करने वाला बनूं। यह पृथ्वी की जो परिक्रमा होती है, यह शब्द पृथ्वी की परिक्रमा करता है। वेद का ऋषि तो यहाँ तक कहता है, आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि हमारे यहाँ जो वाक् शक्ति है, वाक् शक्ति जो मानव उच्चारण करता है, उसकी रचना होती है। रचना हो करके वह शब्द पृथ्वी की गति करना आरम्भ करता है। आचार्यों ने कहा कि जो शब्द उच्चारण होता है वह एक क्षण समय में इस पृथ्वी की 117 परिक्रमा कर जाता है। इसलिए आचार्यों ने कहा कि वाक् शक्ति मेरी विचित्र होनी चाहिए। यह वाक् उत्तरायण में जाता है, उत्तरायण से यह दक्षिणायन को गति करता है। वाक्य की रचना कहाँ से होती है? आचार्यों ने कहा कि मानव कण्ठ में जब यह शब्द आता है अथवा तरंगें आती है तो इन तरङ्गों को प्रति अबृहा कण्ठ में आता है। जब यह प्रवाह आता है

तो कण्ठ में आते ही वाक्य शक्ति की रचना हो जाती है। वही वाक्य ब्राह्म जगत् में प्रवेश करता है, ब्राह्म जगत में चला जाता है। यह पृथ्वी की एक क्षण समय में परिक्रमा करता है।
परिणाम क्या? मुनिवरों! देखो, यह जो वाक्य है यह दो प्रकार का कहलाया जाता है। वास्तव में एक वाक्य जो बाह्य ऊपरी रूपों में परणित रहता है। एक आन्तरिक जगत् से आता है जो अन्तर्हृदय रूपी गुफा से आता है वह आर्शीवाद बन करके रहता है और जो कण्ठ से रचना होती है वह रचना शब्द की एक लौकिक रचना है, एक पारलौकिक रचना है। जो लौकिक रचना है वह लोक में शब्द गति करता है। तो पारलौकिक रचना है, जो अन्तर्हृदयरूपी गुफा से तरंगें चलती है, कण्ठ में आ करके वह शब्द बनता है। शब्द के साथ में आकार बनता है और आकार बन करके पृथ्वी की परिक्रमा कर देता है, वह उत्तरायण से दक्षिणायन को गति करता है। दक्षिणायन से ऊर्ध्वा में गति करने वाला वह शब्द कहलाता है वह हृदय रूपी गुफा से एक शब्द चलता है।
विचार विनिमय यह करना है, हमें मनन करना है कि हम आत्म लोक में प्रवेश करना चाहते हैं। तो आत्म लोक में जाने से पूर्व हमें शब्द को विचारना होगा। इसलिए मुनिवरों! देखो, जो साधक पुरूष होते हैं, वह सबसे प्रथम वाक् वाक् कहते हैं और वाक् वाक् कहते हैं तो उस समय उच्चारण करते हैं, वाक् वाक् और वे क्योंकि कहते हैं? क्योंकि वाक् शक्ति मेरी पवित्र होनी चाहिए। हे परमात्मा! हे देव! मेरी वाक् शक्ति में इतना नृत्य होना चाहिए, इतना अहिंसा परमो धर्मः होना चाहिए कि मेरे वाक्य की शक्ति से जितने भी हिंसक प्राणी हैं जितने भी प्राणी मात्र हैं, मेरी वाणी मात्र से वे तृप्त होने वाले बनें। वाक् शक्ति विशाल शक्ति है जिससे मृगराज, सिंहराज ऋषियों के चरणों में ओत प्रोत रहते रहे हैं।
बेटा! मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है। त्रेता के काल में एक समय भंयकर वन में जब महाराज दिलीप नन्दिनी की सेवा कर रहे थे। उन्हें पुत्रेष्टि यज्ञ करना था और जब नन्दिनी की सेवा करते हुए भंयकर वन में पहुंचे तो भंयकर वन में झरने से जल नृत्य कर रहा था। महाराजा दिलीप उसे दृष्टिपात करने लगे। इतने में ही मृगराज

ने, सिंहराज ने आ करके नन्दिनी पर आक्रमण किया तो महाराजा दिलीप दृष्टिपात करने लगे और महाराजा दिलीप ने कहा, यह क्या कर रहे हो मृगराज? उन्होंने कहा, महाराज यह मेरा भोज्य है, नन्दिनी मेरा भोज्य है, मैं इसे पान करूँगा। उन्होंने कहा कि नन्दिनी तो तुम्हारा भोज्य है, परन्तु मेरा कर्तव्य है, मैं इसकी रक्षा करने वाला हूँ, एक राजा हूँ। एक राजा होने के नाते मैं इसकी रक्षा करूँगा, रक्षार्थ आया हूँ।

महाराज दिलीप की वाणी बड़ी पवित्र और सुसज्जित थी। उनकी वाणी में एक तप था, एक महत्ता थी। मृगराज! सिंहराज ने नन्दिनी को त्याग करके वह एक स्थली पर विद्यमान हो गया। उन्होंने कहा, हे मृगराज! तुम्हें यह प्रतीत है कि नन्दिनी मेरी पूज्य है, और नन्दिनी से पूर्व मेरे प्राणों का हनन होना तो उत्तम कार्य है। नन्दिनी को उसके पश्चात कोई भी उसे अपना भोज्य बना सकता है। जब उन्होंने ऐसा कहा तो देखो, आत्मा सभी में विद्यमान है, आत्मा का जो नृत्य है वह जो सर्वत्र प्राणियों में होता रहता है। महाराज दिलीप की ये चर्चायें, जब मृगराज ने श्रवण की तो सिंहराज कहते हैं, हे राजन्! धन्य है। हम तेरे राष्ट्र में गमन करते हैं। तेरे राष्ट्र में किसी प्राण्ी का भी हनन नही होगा। यह मेरा सौभाग्य है जो आप जैसे अधिराज रक्षक हैं। एक गऊ की ही रक्षा नहीं, एक नन्दिनी की ही रक्षा नहीं, प्राणीमात्र की जिस राजा के राष्ट्र में रक्षा होती हो, वह राष्ट्र तो पवित्र कहलाता है, राजन्! हे राजन् आपकी वाणी में इतनी महत्ता है, इतना तप भरा हुआ है कि हमारी अन्तरात्मा विदीर्ण हो गई है। आपकी वाणी के तप के कारण हमारा हृदय शान्त हो गया है। यह नन्दिनी हमारा भोज्य नहीं रहेगी।

विचार विनिमय क्या? तो यह मानव की वाक् शक्ति है। महाराजा दिलीप नन्दिनी की सेवा कर रहे थे। कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे और अपने ऋषियों के वाक्यों को स्वीकार कर रहे थे। उसका परिणाम क्या हुआ कि वाक् शक्ति इतनी विचित्र होती है। वाक् शक्ति के कारण यह जो सिंहराज है, हिंसक प्राणी हैं अपनी आभा को त्याग देते हैं वे भी अहिंसा परमो धर्मः की घोषणा करने लगते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है वह समय जब चाक्राणि गार्गी समागान गाती थी। एक समय चाक्राणि गार्गी और मैत्रेयी दोनों एक स्थली पर विद्यमान हो करके समागान गाने लगी।

जब समागान गाने लगीं तो भयंकर वन है, शून्य गति है को प्राप्त होने वाला। देखो, शम् शम् ब्रहीः वह भयंकर वन है। जब वे दोनों एक स्वर में गान गाने लीं तो सिंहराज, सर्पराज और भी नाना प्राणी शब्दों की ध्वनि को श्रवण करने के लिए ऋषि अब्राहम विदुषियां के द्वार पर आ गये, उन शब्दों की श्रवण करने के लिए। वे शब्द इतने तपे हुए, इतने महान् कहलाते हैं कि वे जो शब्दम् बृहिः वृताः है, वह जो शब्द है वह हिंसक प्राणियों को विदीर्ण कर रहा था। हिंसक प्राणियों को भी अहिंसा परमोधर्मः की घोषणा कर रहा था।

विचार विनियम क्या? इसलिए वेद का ऋषि कहता है, जब वह साधना के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो वह यह कहता है कि वाक् वाक्! मेरी वाक् शक्ति कैसी हो कि मेरे वाक्य को श्रवण करने के लिए, सर्पराज जितने भी हिंसक प्राणी हैं, अहिंसा परमोधर्मः की घोषणा करने लगे।

आओ, मेरे पुत्रों! विशेषता क्या? उच्चारण कर रहा हूँ कि वेद का वाक्यम् ब्रही वेद का ऋषि कहता है कि मेरी वाक् शक्ति पवित्र हो और कैसी वाक् शक्ति हो? मेरी वाक् शक्ति से प्रत्येक प्राणीमात्र वन्दना करने लगे, मन्त्रणा करने लगे जिससे उनके अन्तरात्मा में, जो हृदय में विराजमान होने वाली आत्मा को जो लोक है, उस लोक में विराजमान होने वाली पवित्र आत्मा है उस आत्म तत्त्व की आभा में रमण करता रहे।

हमारे यहाँ ऐसे ऐसे ब्रह्मवेत्ता, ऋषि हुए हैं, ऐसी महान मेरी पुत्रियां, मेरी माताएं विदुषी हुई हैं जिनके चरणों में सर्पराज ओत प्रोत हो करके उनकी गाथा गाते रहे हैं। तो विचार विनिमय क्या? कि साधक सबसे प्रथम कहता है कि मैं आत्म लो में जाने से पूर्व शब्द के मार्ग को जानना चाहता हूँ। मैं शब्द की शक्ति को जानना चाहता हूँ, जो यह कहता है प्रथम ही वाक् वाक् कहता है और वाक् वाक् कह करके यही उच्चारण कर रहा है कि मेरी वाक् शक्ति पवित्र हो।

द्वितीय वाक्य इसके पश्चात कहता है। वाक् प्राणम् प्रहवे वृत्तदेवाः। मेरा जहाँ वाक्य पवित्र हो वहाँ मेरी घ्राण पवित्र होनी चाहिए। प्राण पवित्र हों। मेरे प्यारे! इस मानव शरीर में प्राण गति करते हैं। वाक्यम् वाक् के पश्चात ये घ्राण के क्षेत्र में जाता है। घ्राण की शक्ति

में प्राणः प्राणः करके वह घ्राण को ऊँचा बनाता है। वह कहता है, हे प्रभु! मैं तेरे राष्ट्र में आया हूँ। मैं तेरे इस महान जगत को जानना चाहता हूँ।

जहाँ वह वाक् शक्ति में जाता है, वहाँ वह प्राण के क्षेत्र में जाता है। तो कहता है कि प्राणः प्राणः। मेरे प्यारे! घ्राण जो इन्द्रियाँ हैं, ये मन्द सुगन्ध को ग्रहण करने वाली हैं। परमाणु आते हैं, गति करते हैं, परमाणु एक नहीं, अरबों खरबों परमाणु आते हैं। गति करते हैं, ब्राह्म जगत में जाते हैं और बाह्य से आन्तरिक जगत में प्रवेश करते हैं। आन्तरिक से बाह्य जगत में चले जाते हैं। यह परमाणुओं का क्षेत्र है। नाभि केन्द्र से ले करके ब्रह्मरन्ध के आसन से गति करता हुआ घ्राण के द्वारा यह प्राण गति करता है। ये प्राणेन्द्रियां, ये प्राण की अशुद्ध शक्ति है। इसमें प्राण गति करता है अथवा नृत्य करता रहता है। मानव की जो घ्राणेन्द्रियाँ हैं, इन्हीं के द्वारा यह मन्द सुगन्ध को जानता है, दुर्गन्धि को जानता है। सुगन्ध को जान करके, परमाणुवाद को जान करके, यह पृथ्वी के खनिज को जानने लगता है। वायु मण्डल में, वायु में जो गति कर रही है, वायु में जो तरंगे गति कर रही हैं, परमाणु गति कर रहे हैं उन परमाणुओं को घ्राण के द्वारा ही वह जान लेता है कि यह परमाणु गति कर रहा है। इस प्रकार का परमाणु इसमें नृत्य कर रहा है। अथवा गति कर रहा है। वे जो गतियाँ हो रही हैं, उसी परमाणु को जान करके मानव भौतिकवाद में प्रवेश कर जाता है।

आध्यात्मिकवाद में जाने से पूर्व आत्मलोक में, घ्राण के लोक में, चला जाता है, वह प्राण के क्षेत्र में चला जाता है। मुझे स्मरण आता है बेटा! एक समय महर्षि भृंगी ऋषि जो उद्दालक गोत्र में थे। भंयकर वनों में तप कर रहे थे और तप क्या कर रहे थे कि घ्राण इन्द्रिय को जानने के लिए तत्पर थे। जब वह घ्राण इन्द्रियों को जानने के लिए तत्पर थे तो घ्राणेन्द्रियों से तरंगे गति कर रही थी, उन तरंगों को वह जान रहे थे और जिस स्थली पर विद्यमान थे, उनमें जो पृथ्वी में गन्ध आ रही थी, सुगन्ध आ रही थी, सुगन्ध आ रही थी, उस मन्द सुगन्ध को वह धारण कर रहे थे। उन परमाणुओं को, उन गतियों को जान रहे थे, उन तरंगों को वह गणित कर रहे थे। जब वह गणना में गणित कर रहे थे तो मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय उनके द्वार पर तृतकेतु

महाराज आये। तृतकेतु ऋषि ने कहा कि महाराज! यह क्या कर रहो हो? भृंगी ऋषि बोले कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो हमारी घ्राण इन्द्रियाँ हैं, इसमें जो विज्ञान प्रभु ने दिया है, उसको मैं जानना चाहता हूँ। ऋषि तरंगों की गतियों की आभा में रमण कर रहे थे। वेद के ऋषि, भृंगी ने यहाँ तक घ्राणेन्द्रियों को जाना। उस गति से क्या क्या जान सकता है? इस प्राण को जानने के पश्चात वह पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार की तरंगों में तरंगित अद्भुत गति हो रही है जो गतियाँ हो रही हैं। वे जो गतियाँ हो रही हैं। वे जो गतियाँ हैं वे रजोगुणी हैं, सतोगुणी हैं, उनको जानने के लिए, यह मानव का अन्तहृदय जान लेता है कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है? वह कितनी ऊष्णता में है, कितना शीतल है? वह कितना प्रेरणा दायक है? पृथ्वी का जितना गर्भ विज्ञान है, पृथ्वी में जितना भी विज्ञान गति कर रहा है, भूविज्ञान जितना भी है, प्राण के द्वारा उसकी सुगन्ध में उसकी घ्राणेन्द्रियों में, वह समाहित होने लगता है। मुझे स्मरण आता रहता है, भृंगी ऋषि महाराज इतने विज्ञान में रत्त रहते थे कि वह पृथ्वी के ऊपर ही वायुमण्डल में जो तरंगे गति करती रहती थी। उसको वह जानते रहते थे, और जानने के पश्चात उसके ब्राह्य जगत में लाते रहते थे।

परिणाम क्या? मुनिवरों! यह जो प्राण शक्ति है, यह जो घ्राण शक्ति है इसके ऊपर हमारा अधिपथ्य होना चाहिए। इसमें दो देवता विद्यमान हैं। एक कश्यप विद्यमान हैं, एक मित्रणेस्तुति विद्यमान है। एक चन्द्र स्वर में कहलाता है, एक सूर्य स्वर कहलाता है। एक में शीतल गति हो रही है और एक में ऊष्ण गति हो रही है। इन दोनों गतियों को जानने वाला एक महन बना रहता है, वह महान कहलाता है।

मुझे स्मरण है, इस प्राण के द्वारा चिकित्सा भी होती है। मैंने बहुत पुरातनकाल में एक ऋषि को दृष्टिपात किया। उनका नाम था केत्वक ऋषि महाराज। केत्वक ऋषि महाराज भी उद्दालक गोत्रीय कहलाते थे। केत्वक ऋषि महाराज भंयकर वन में चन्द्र स्वर पर और सूर्य स्वर पर अनुसन्धान कर रहे थे। उन्होंने कहा कि मानव के शरीर में जो भी रोग होता है तो प्राण चला जाता है, प्राण की शक्ति सूक्ष्म हो जाती है। मनीराम वही नृत्य करता है। तो इसलिए ऋषि ने कहा और वह जो प्राण शक्ति चली जाती है रूग्ण

के रूग्ण अब्रहेः वह रूग्ण क्यों होता है? क्योंकि इस वायुमण्डल में दो प्रकार की गति होती है। एक शीतल वह होती है, एक ऊष्ण होती है। वह जो शीतल गति है, ऊष्ण गति है, तो कही कहीं दोनों का विवाद हो जाता है, दोनों की एकता हो जाती है। दोनों जहाँ एक सूत्र में आ जाते हैं वहीं मानव रूग्ण रहने लगता है। कहीं शीतलता विशेष बन गई है, कहीं ऊष्ण गति विशेष बन गई है। तो ऋषिजनों ने यह विचारा कि अब हम प्राण शक्ति को जानना चाहते हैं। तो उनमें ऊष्णता प्रबल हो गई है, तो उन्होंने चन्द्र स्वरों का प्राणायाम करना प्रारम्भ किया। जब वे प्राणायाम करने लगे तो उस ऊष्णता में शीतलता आ गई और मानव स्वस्थ बन गया और कहीं शीतलता आ गई तो उसमें सूर्य प्राणायाम किया तो परिणाम यह हुआ कि शीतलता दूर चली गयी। बेटा! वह प्राण चिकित्सा कहलाती है।

हमारे यहाँ परम्परा से ही प्राण चिकित्सा ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रची है। यह प्राण चिकित्सा एक काल में नहीं परम्परा से प्राण चिकित्सा है जिससे वेद के ऋषियों ने कहा कि प्रत्येक प्राणी को प्राणायाम करना चाहिए क्योंकि प्राणायाम करने वाला जो मानव होता है वह ब्रह्मचारी रहता है। तो इसलिए प्रत्येक मेरी पुत्री को भी प्राणायाम करना चाहिए। कहीं सूर्य प्राणायाम है तो कहीं चन्द्र प्राणायाम है। दोनों प्रकार के प्राणायामों में मानव को सुसज्जित रहना चाहिए, उसी में गति करना चाहिए।

देखो, यह प्राण चिकित्सा कहलाती है। इसको हमारे वैद्यराज परम्परा से ही जानते हैं। उसमें यह है कि जैसे नाना प्रकार की वनस्पतियाँ माता वसुन्धरा के गर्भ में विद्यमान रहती हैं, वे जो नाना प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, वे जो वायु मण्डल में, वायु की तरंगों में मिश्रित हो जाती हैं, स्वतः ही मिश्रित रहती हैं। जब मानव प्राणायाम करता है तो देखो, सूर्य प्राणायाम करता है तो जो उस समय औषधियों का प्रवाह है, तरंगें हैं, वे तरंगे प्राण के साथ में नृत्य करती हैं और यदि शीतलता को लाना है तो चन्द्र प्राणायाम करने से वायु मण्डल में जो शीतल औषध है, वनस्पतियाँ हैं वे जो उनकी तरंगे में उनकी सुगन्ध जो गति करती हैं वह शीतल, शीतल ही परमाणुओं को अपने में लाने

का प्रयास होता रहा है।

परिणाम क्या? यह प्राण चिकित्सा है। आज मैं प्राण चिकित्सा के सन्म्बन्ध में विशेष विवेचना देना नहीं चाहता हूँ केवल यह कि कोई मानव रूग्ण हो गया है जिससे शीतलता आ गई है, उसे सूर्य प्राणायाम करना चाहिए और जिसे ऊष्णता आ गई है, उसे चन्द्र प्राणायाम करना चाहिए। दोनों प्रकार के प्राणायाम करने से मानव का स्वास्थ्य सुन्दर रहता है, सुसज्जित रहता है। मुझे स्मरण है, सुधन्वा नाम के वैद्यराज थे, वह सूर्य प्राणायाम तथा चन्द्र प्राणायाम को जानते थे, तुम्हें प्राणाम् वृहि वृत्ताः प्रतीत होगा जब राम और रावण को, दोनों का संग्राम हो रहा था, जिस समय संग्राम हो रहा था जब महाराजा मेघनाथ ने मेरे प्यारे! ऊष्णा शक्ति महाराजा लक्ष्मण के ऊपर प्रहार की जिससे महाराजा लक्ष्मण मूर्छित हो गए, मानो प्राण शुष्क बन गए। तो देखो, सुधन्वा को लाया गया और सुधन्वा वैद्यराज से राम ने प्रार्थना की कि महाराज! यह मेरा विधाता है, यह मूर्छित हो गया है, मृतक के समान बन गया है। उन्होंने कहा भाई! मैं तो नहीं जानता, परन्तु देखो, मेरे द्वारा वह औषधि नहीं है। ऋषि मुख पर्वत पर औषध है। तो देखो,! हनुमान जी जब उस औषध को लाए तो ब्रह्म वृत्तः देवत्याम् महाराजा सुधन्वा ने प्राणायाम किया और प्राणायाम करके उस अपनी प्राण शक्ति के द्वारा लक्ष्मण के द्वारा वह प्राण शक्ति उन्होंने उसमें भरण की और उस औषध के द्वारा उन्होंने शीतल प्राणायाम किया और शीतल प्राणायाम लक्ष्मण को कराया, उनकी मूर्छा समाप्त हो गयी। परिणाम यह हुआ कि पुनः से उनमें प्राण शक्ति आ गयी। वह प्राणायाम शक्ति कहलाती है।

आज मैं तुम्हें विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल तुम्हें यह वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ के हे मानव! आज हम अपनी मानवता में, अपने आत्म लोक में प्रवेश होने से पूर्व हमें इस प्रकार का क्रियाकलाप हमारे मस्तिष्कों में, हमारी क्रिया में होना चाहिए। तो वह क्रिया में क्या होता रहा? तो उन्होंने प्राणायाम किया। यह प्राणायाम की क्रिया हमारे यहाँ परम्परा से ही थी, आज से नहीं। मैं वर्तमान के काल की ही चर्चा नहीं, मैं उस काल की भी चर्चा करता रहता हूँ, जहाँ वशिष्ठ और अरून्धति माता दोनों प्राणायाम करते थे। पति पत्नी यह चाहते है कि हमारे गृह में सुंदर संतान का जन्म हो,

तो प्राणायाम करें। सूर्य और चंद्र प्राणायाम करने से उनमें ब्रह्मचर्य की शक्ति, ब्रह्मचरिष्यामि आती है, बल आता है, पवित्रता आती है तो गृह में संतान का जन्म होगा और वह संतान पिता से पहले उसका निधन नही होगा। तो परिणाम क्या? पिता से पहले प्रथम पुत्र पुत्री का निधन नहीं हो इसका भी प्राण चिकित्सा से सन्म्बन्ध रहता है। तो मेरे प्यारे! इसीलिए हमारे यहाँ जहाँ औषधि चिकित्सा है वहीं प्राण चिकित्सा ऋषि मुनियों में परम्परा से रही है।

आज मैं बेटा! इस सन्म्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। ऋषि मुनि रूग्ण नहीं होते थे, क्योंकि वे प्राण से प्राणायाम करते शीतली प्राणायाम होता है। एक खेचरी मुद्रा प्राणायाम होता है। ये नाना प्रकार के प्राणायाम होते हैं जिनको करने से मानव के द्वारा रोग नहीं होता। वे रोगों से दूर रहते हैं, उस मानव का जीवन सुंदर बना रहता है, सुसज्जित रहता है।

मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? जब साधक विद्यमान होता है तो वाक् वाक् कह करके प्राणः प्राणः कहता है और दो समय उच्चारण करता है और दो समय उच्चारण करता है प्राणः प्राणः। तो इसीलिए घ्राणेन्द्रियों के द्वारा हम प्राणायाम करें और इस प्राण चिकित्सा के कारण हमारा मानवीय जीवन पवित्र रहता है, मानवीय जीवन में एक महत्ता रहती है। परन्तु देखो,! हम जो इस संसार में आते हैं, वह आत्म लोक में जाने के लिए आते हैं, हमारा आत्म लोक पवित्र होना चाहिए।

देखो, वाक् वाक् कह करके प्राणः प्राणः कह करके प्राण चिकित्सा आती रहती है। हमारा प्राण पवित्र होना चाहिए। हमारे इस मानव शरीर में एक प्राण नहीं पांच प्राण हैं जो कार्य करते रहते हैं अथवा नृत्य करते रहते हैं। आज मैं कोई विशेष चर्चा में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या कि प्राण की शक्ति को जानने के लिए मानव के द्वारा अनुसन्धान होना चाहिए।

आज का विचार विनिमय क्या है? मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट कराने नहीं आया हूँ। मैं साधकों के क्षेत्र में तुम्हें लाया हूँ जहाँ साधक विद्यमान हो करके आत्म लोक में जाने के लिए सबसे प्रथम अपनी इन्द्रियों पर, अपने वाक् पर, अपनी घ्राणेन्द्रियों पर कितना

अधिपथ्य करते हैं? कितना उनका अनुसन्धान होना चाहिए? यह चर्चाएँ मैं तुम्हें कराने के लिए आया हूँ।
अब बेटा! मैं अपने विचारों को विराम देने जाऊँगा। परिणाम क्या हुआ इन वाक्यों के उच्चारण करने का कि हमारे द्वारा तीन आचमन होने चाहिए। आचमन में त्रि विद्या का भान और प्रेरणा होनी चाहिए और वह जो वाक् शक्ति है वह कितनी पवित्र हो और प्राण शक्ति में कितनी महत्ता होनी चाहिए? ये प्राण शक्ति ही चिकित्सा का मूलक है। मानव को सुसज्जित बनाता है, मानव को सुडौल बनाता रहता है। देखो, अपान, उदान, समान, ध्यान ये चार प्राण और हैं, मैं इनकी विवेचना कल ही प्रगट करूँगा।
आज का विचार विनिमय क्या कि हम प्राणों को, हम कुम्भक प्राणायाम करते हैं, हम रेचक करते हैं, हम पूरक करते हैं। इन प्राणायामों के द्वारा मानव कहाँ कहाँ चला जाता है? जो कुम्भक प्राण को जानता है वह जाल ऐसे गति करता है जैसे पृथ्वी पर घ्राणी गति कर रहा हो। जो रेचक को जानता है वह वायु की तंरगों को जानने लगता है, वायु में कौन सी तंरगों की गति हो रही है? क्या क्या गतियाँ हो रही हैं, किस प्रकार की गतियाँ हैं? उनको जानने लगता है।
बेटा! जो रेचक, कुम्भक और पूरक हैं। वह जो पूरे है आगे अब्रतम् ब्रह्म वृत्तः देवः वह अन्तरिक्ष में जो नाना प्रकार की अग्नियाँ गति करती हैं वह उनको जानने लगता है।
मुनिवरों! देखो, विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें साधको के क्षेत्र में ले आया हूँ। कल मुझे समय मिलेगा तो यह कल मैं विवेचना कर सकूंगा कि ये जो चारों आगे प्राण हैं, इन प्राणों की क्या क्या विशेषता है? ये प्राण क्या क्या करते हैं? ये मैं कल चर्चाएं प्रगट करूँगा। बाह्यजगत्, आन्तरिक जगत् की चर्चाएं ऋषि मुनि परम्परा से ही करते रहे है।
विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो,! सोमकेतु ऋषि महाराज भारद्वाज ने साधकों के क्षेत्र में अपनी विवेचनाएं प्रगट की हैं और उन्होंने कहा, हे ऋषियों! आज तुम इसीलियें मेरे द्वार पर आयें हो कि हमारा मानवत्त्व ऊँचा बनना चाहिए। मानव गृहि वृत्तः देवत्यम् और मानव आत्म लोक में जाना चाहता है। तो बेटा! आत्म लोक की चर्चाएं आगे मैं

कल प्रगट करूँगा।

आज तो हम केवल इतना उच्चारण कर पाए हैं तो हमारा वाक् शक्ति पवित्र हो। हमारी उन घ्राणेन्द्रियों में कितना विज्ञान है, कितनी परि चिकित्सा है? ये चर्चाएं मैं आगे कल प्रगट कर पाऊंगा। प्राणों को जानना, उसके पश्चात वाक् घ्राण के द्वारा जो आगे स्वर्ग में जीने की, मोक्ष में जाने के लिए, ब्रह्म से मिलन करने के लिए, आत्म लोक को जाने के लिए बेटा! हमें कौन कौन सी पगडण्डियों को अपनाना है और कौन कौन सी श्रेणियों को अपना करके हम ब्रह्म लोक में जाएंगे। ये चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगें।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हमें अपने मानवत्व को बनाने के लिए कितना चिन्तन करना है, मनन करना है? हमें मनीषि बनना है। मनीषि कौन होता है? पुत्रों! मनीषि वह होता है जो मनन करता है। जो चिन्तन करता है, वह मनीषि कहलाता है।

आओ मेरे पुत्रो! आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, उस देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम अपने मानवत्व को, बाह्य जगत् को सबसे प्रथम ऊँचा बनाएं। उसके पश्चात हम आन्तरिक लोक में प्रवेश करेंगे। आन्तरिक लोक और बाह्य लोक की चर्चाएं कल प्रगट करेगें। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा, उसके पश्चात यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। वेद पाठ। रघुनाथ मन्दिर अमृतसर

९ 08 07 1978 सांय आत्म लोक में प्रवेश

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव विश्व रचयिता जो महान् इस संसार में एक एक प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत है, उस महान् देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है।

प्रत्येक वेदमन्त्र उसकी गाथा गा रहा है, ध्वनि से गा रहा है। वैदिक ध्वनि आ रही है

जिसको पान करने वाले प्रातःकालीन अमृत को पान करके अमरावती को प्राप्त हो जाते है। क्योंकि उसे आचार्यों ने सुमन कहा है, उसको सोम्य कहा है। वह कैसा अमूल्य सोम्य है? जो सोम की वृष्टि करने वाला है और उस सोम को मानव पान करता है। परन्तु वह सोम जो प्रातःकालीन प्रसाद के रूप में प्रदान किया जाता है।

प्रातःकाल होते ही एक प्रकाश आता है। वह प्रकाश मानव की बुद्धियों को तीक्ष्ण और महान् बनाता है। वह प्रकाश को जो संसार में, जो जागरूक रहता है उसको मानव पान करता है और जो सुषुप्ति में चला जाता है तो उससे वह प्रकाश चला जाता है।

मेरे पुत्रे! हमें जागरूक रहना चाहिए, जगाने वाला कौन है? जो जागता ही रहता है, वह निद्रा में नही जाता। वह सदैव जागरूक रहता है, ऐसा कौन है, बेटा! वह मानव जागरूक रहता है, जो प्रभु के प्रकाश को जानता है कि इस काल में प्रभु का प्रकाश आ रहा है। प्रातःकाल का समय है सूर्य उदय होने वाला है। इस संसार को तेजोमयी बनाया जा रहा है, रात्रि का अभाव बन गया, प्रकाश आ गया।

वह जो प्रकाश आ रहा है उसी प्रकाश में तो मानव सदैव जागरूक रहता हैं जो जागरूक रहता है वही तो प्रसाद प्राप्त करता है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव को यहाँ जागरूक रहना हैं

प्रभु के राष्ट्र में जब रात्रि नहीं होती तो मानव को सुषुप्ति भी नहीं होती क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। सूर्य उसके राष्ट्र में अस्त नहीं होता। पुत्रो! प्रकाश को प्राप्त करने के लिए उस प्रसाद को पान करना है जो प्रातःकालीन की बेला में बिखर रहा है। परमात्मा के राष्ट्र में सदैव प्रातःकाल रहता है, सुमन रहता है, अमृत की वृष्टि होती है।

वह कैसा अमूल्य मेरा प्रभु है, जो उसको जागरूकता में पान करता है, वह अमृत बन जाता है। वह अमृतमय बन करके अपने में सौभाग्यशाली स्वीकार करता हैं।

आज का हमारा यह वाक्य, यह प्रातःकाल की अग्नि हमें सङ्केत कर रही है। हे अग्नि! तू मित्र बन करके हमें प्रकाश देती हैं। हमारे इस मानव शरीर को क्रियाशील बनाती है। हे अग्नि! तू आग्नेय है। तू कैसा आग्नेय है? तू देवताओं का दूत है तू देवताओं को,

हवि बना करके देवताओं को तृप्त कर देती है। तू कैसी हवि बनती है? तू वैश्वानर बन रही हैं तू वैश्वानर बन करके इस विश्व को ज्योतिर्मय बना रही है।

मेरे पुत्रो! वह अग्नि है। प्रातःकाल का वह प्रसाद है। वह ज्ञानाति जन्मजं बृहिः वृत्त देवाः वह ज्ञानरूपी अग्नि है। इस ज्ञान रूपी अग्नि का और बाह्य अग्नि का जब मिलान हो जाता है तो मानव के जीवन में प्रकाश हो जाता है। अन्तःकरणीय प्रकाश जागरूक हो जाता है, अन्तःकरण की ज्योति जागरूक हो जाती है।

मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार यह है कि प्रातःकाल में अग्नि से हवि बन करके प्रसाद रूपों में प्रदान किया जा रहा है। जो मानव उसे पान करता है, अमृत है। जो सुषुप्ति में चला जाता है, वह अज्ञान में रहता है। तो प्रत्येक मानव को अज्ञान को त्याग करके ज्ञान के क्षेत्र में पहुँचना चाहिए।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें उसी आभा में ले जाना चाहता हूँ जहाँ में ब्रह्मरन्ध्र की चर्चा कर रहा था। उस ब्रह्मरन्ध्र में जाने के लिए हम तत्पर हो गएं थे। मैं त्रिवेणी स्नान कर रहा था। जब हम त्रिवेणी का स्नान करते है, तो एक दिव्य रूप बन करके हमारे समीप आ जाता है। वह अपना ही एक मानवीय स्वरूप माना गया है। प्रभु का चित्रण माना गया है। जैसे मानव दर्पण में अपने को ही दृष्टिपात कर रहा है। दर्पण में कोई चित्र दृष्टिपात आता है। वह अपने में से ही तो आ रहा है।

इसी प्रकार जब हम त्रिवेणी का स्नान करते है, ज्ञान, कर्म व उपासना के क्षेत्र में चले जाते हैं, तो एक अनुपम प्रकाश आ जाता है। उसको योगीजन जानते है। योगीजन वह जो पाँच अग्नियों को जागरूक कर लेते है। त्रिवेणी के स्थान के ऊर्ध्व भाग में मैनें दो कृतिकाओं का वर्णन किया। किसी काल में जब कृतिका भ्रमण कराते है तो उस कृतिका में यह विशेषता होती है। जैसे ईडा, पिङ्गला, सुषुम्ना, जैसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती ये तीनों नदियाँ जैसे समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं और जब समुद्र में प्रवेश करती हैं तो अथाह समुद्र में उन नदियों का अपना अस्तित्व हो जाता हैं।

इसी प्रकार, ज्ञान, कर्म, उपासना के रूप में हो चाहे ईडा, पिङ्गला और सुषुम्ना के रूप में हो चाहे तमोगुण, रजोगुण एवम् सतोगुण के रूप में हो, जब ये तीनों नाड़ियाँ, तीनों

नदियाँ ये नदी रूप बन करके कृतिका के कृतिका उसे कहते हैं वे जो दो कृतिका हैं जैसे जिस प्रकार नदियों का मिलान समुद्रों से होता है, इसी प्रकार ईड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना का उनका अपना यहाँ आ करके अस्तित्व समाप्त हो जाता है और जो अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो आगे वहीं धारा समुद्र रूप में प्रवेश करके जैसा मैंने इससे पूर्वकाल में वर्णन कराया था कि ब्रह्मरन्ध्र जागरूक हो जाता है। ब्रह्मरन्ध्र की जो पङ्खुड़ियाँ हैं वे ऐसे ही गति करने लगती हैं, जैसे नाना लोक लोकान्तर अपनी अपनी आभा में गति करते है, जैसे सूर्य गति कर रहा है वह अपनी आभा से गति कर रहा है। पृथ्वियाँ अपनी आभा पर गति कर रही है।

परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे यह प्रभु की माला हो। ये जो लोक लोकान्तर गति करते है, कुछ ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रभु की माला हो और कैसी विचित्र माला है? वे एक दूसरे की परिक्रमा के रूप में दृष्टिपात आ रहे है। परन्तु वह परिक्रमा ही नहीं अपनी अपनी आभा में गति हो रही है। जैसे सप्तऋषि मण्डल ध्रुव की परिक्रमा करते है, परन्तु वे ध्रुव की परिक्रमा ही नही अपनी अपनी आभा पर भी गति कर रहे है, वह परिक्रमा ही दृष्टिपात आती हैं। जैसे भिन्न भिन्न प्रकार के मनके एक सूत्र में पिरों करके माला के रूप में दृष्टिपात आने लगते हैं इसी प्रकार लोक लोकान्तरों की माला ऋषियों को इस ब्रह्मरन्ध्र में दृष्टिपात आने लगती है और जैसा मैने इससे पूर्वकाल में कहा, करोड़ां नस नाड़ियों का ऊर्ध्वमुख हो जाता है।

ब्रह्मरन्ध्र में जाते ही प्राण, की मन की और आत्मा की धुकधुकी लगते ही वे करोड़ों रश्मियाँ जागरूक हो जाती हैं और वे करोड़ों रश्मियाँ एक एक रश्मि में से 72 72 हजार रश्मियाँ उत्पन्न हो जाती हैं 72 हजार जो रश्मियाँ हैं, उनका प्रत्येक लोक लोकांतर, आकाश गङ्गाओं से समन्वय हो जाता है। समन्वय होने के पश्चात यह ब्रह्माण्ड ऐसे दृष्टिपात आते हैं जैसे हम एक गृह में विद्यमान हैं। उस गृह का हम एक एक कक्ष अपने में गणित कर लेते हैं। वह माला ब्रह्मरन्ध्र की माला ऋषि ही तो पान करता है, ऋषि ही तो धारण करता है, वह जागता रहता है, वह जागरूक रहता है।

विचार विनिमय क्या है? इससे पूर्व एक पिपाद और अमृत का वर्णन चल रहा था।

पिपाद और अमृत क्या है? ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व भाग में जहाँ ये नस नाड़ियाँ जागरूक हो जाती हैं, वहाँ उसके ऊर्ध्व भागों में स्थित एक पिपाद नामक स्थान हैं इस पिपाद स्थान में अब ब्रह्मरन्ध्र पंखुड़ियाँ गति करने लगती हैं तो उनमें से रसों का स्वादन, रस आने लगता है जैसे मधु में से रस आने लगता है इसी प्रकार वह रस आता है। गति से वह सूक्ष्म बन जाता है, सूक्ष्मतम बन जाता है और उसको ऋषिजन आनन्द के रूप में अनुभव करते हैं।

यह वह आनन्द है जो आनन्द मेरे प्यारे! प्रभु की गोद में प्राप्त होता है। जो आनन्द क्षुधा वाले बालक को माता की लोरियों में प्राप्त होता है। जो आनन्द जब सुषुप्ति में प्राणी चला जाता है तो यह कहता है कि आज मैं ऐसी सुषुप्ति में चला गया। उस आनन्द को वह ग्रहण करता है। वह एक आनन्द ही आनन्द बिखेरने लगता है।

उस आनन्द में जाने के पश्चात मानव को कितना व्यापक बनना है? मैं बहुत पुरातन काल से एक विवेचना कर रहा हूँ। वह आत्म लोक की विवेचना है। आत्मलोक हम किसे कहते हैं? जहाँ हम ब्रह्मरन्ध्र की पुनः स्थिति का वर्णन करते हैं। जहाँ अन्त और पुनः सृष्टि का वर्णन करके बाहुभ्यामं में चले जाते हैं।

बाहुभ्यामं किसे कहते हैं? ये जो दिशायें हैं ये बाहुभ्यामं कहलाती है मानव दिशाओं को जानने लगता है। एक ऐसा विचित्र यह मानव शरीर बना हुआ है जब शरीर से ये आत्मा पृथक होता है, उस समय इसे आनन्द की प्रतीति होने लगती है। क्योंकि यह कर्म बंधनों का, यह कर्मों का एक बंधन है जो शरीर है।

प्रत्येक कर्म को व्यापक वाद में ले जाना है। प्रत्येक इन्द्रिय से जो कर्म होता है। उस प्रत्येक इन्द्रिय के कर्म को व्यापक बनाना है। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु का और अपना मिलान करना है। उनमें मानव तत्व को मानव दर्शन को पान करना है। जब आत्मा यह जान लेता है कि तू स्थूल शरीर नहीं है, तू तो एक चेतना है। तू चक्षु नहीं है, तू वाक् नहीं है तू घ्राण भी नहीं है और क्या है? तू घ्राण भी नहीं, चक्षु भी नहीं, श्रोत्र भी नहीं, वह कण्ठ और हृदय भी नहीं। तू क्या है?

एक रस रहने वाली चेतना है। जब तू इस शरीर से, इस मानव लोक से, शरीर से तू

जब पृथक होता है तो आत्मा, तेरा जो लोक है, जहाँ तू वास करता है वहीं तेरा लोक कहलाया जाता है। इसके कारण यह मानव शरीर चेतनित बना रहता है। जब यह आत्मा मानव के शरीर में वास करता है, चेतना बनी रहती है, संसार का व्यापार कर रहा है। संसार का व्यापार चल रहा है। ऋण बंधी संसार बना रहा है। हम एक दूसरे में ओत प्रोत होने के लिए तत्पर हैं।

वह जो तत्परता है क्या है? वे आत्मा के कारण ही तो दृष्टिपात आ रही है श्रोत्र शब्दों में जा रहे है। सर्व दिशाओ का ज्ञान उनके समीप है घ्राण में जा रहे है परमाणुवाद और तरंगो का विज्ञान उसमे निहित है नेत्रो में जा रहे है उसमे सर्व रूप कया ज्ञान है और उसका विज्ञान है हम नाभि में जा रहे है संस्कारो की उपलब्धि को जागरूक कर रहे है। परन्तु वह उसी काल तक जागरूकता है जब तक इस मानव शरीर में आत्मा विद्यमान है।

जब तक आत्मा विद्यमान है आत्मा द्वारा गति हो रही है तब तक मानव कहता है यह जीवीत है तब तक मानव, मानवा को जीवीत कर रहा है वह जीवीत बन रहा है क्रियाशील बन रहा है व्यापार कर रहा है वायु में उड़ान कर रहा है अन्तरिक्ष में उड़ान उड रहा है सूर्य लोको की उड़ान उड़ रहा है मंगल की उड़ान उड़ रहा है चन्द्र लांको की उड़ान उड रहा है एक लांक नही कहीं आकाशगंगाओ में गति कर रहा है कहीं वह बुद्ध में व शुक्र में जा रहा है कहीं वह सूर्य की किरणो के साथ योगी बन करके वह सूर्य लांक की पैड़ी लगा रहा है।

परिणाम क्या जब तक इस शरीर में आत्मा विद्यमान रहता है। तब तक यह ब्रह्माण्ड एक ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है और जब यह आत्मा इस शरीर से पृथक होता है अपने साथ में सूक्ष्म तन्मात्राओ को ले करके चला जाता है तो वह व्यापार चला गया। सूर्य सूर्य नही रहा जो किरणो से गति कर रहा था। वह गति नही रही लोक लोकान्तर भी दृष्टिपात नही आ रहे जो नेत्र रूप को को दृष्टिपात कर रहे थे जो इतने सूक्ष्मतम बन गएं थे कि वह नेत्र उस संसार को दृष्टिपात करने वाले उनके पत्नी, पुत्री, पुत्र यह सब खिलवाड़ हो रहा था। चेतना के साथ ही तो यह खिलवाड़ था वह जब तक विद्यमान

है। तब तक चेतना बनी रहती है। आत्म चेतना के पृथक होते ही यह पृथक हो जाता है जिसको यह संसार सजातीय बना रहा था द्रव्य पति का द्रव्य पति आदर कर रहा था। उसको महता दृष्टि से पान कर रहा था। जिस योगी को यागेश्वर कह करके उसका व्यापक स्वरूप एक मानव बना रहा था। जिसके उपदेश मंजरियो का श्रवण करके मानव भगवान कह रहा था। प्रभु कह रहा था। वह प्रभुता कहाँ चली गई
वह कहाँ थी प्रभुता! आत्मा के साथ ही तो वह प्रभुता थी जब आत्म तत्त्व चला जाता है। तो उसक समय यह शरीर रह जाता है सम्बन्धी जो उसको पालन कर रहे थे। माता पालन कर रही थी। पिता शिक्षा दीक्षा का चिन्तन कर रहा था। आचार्य उसे शिक्षा दे रहा था। राष्ट्र का राष्ट्रीय बन करके राष्ट्र का पालन हो रहा था। शव रह जाता है, तो कहते हैं कि इसे अग्नि में दाह कर दो। अरे, स्वरूप को तुम समाप्त करते हो जो स्वरूप आत्मा के होते हुए चेतना में पालन रूप में था आत्म चेतना में रहने के कारण वह क्रिया शून्य बन करके वह अग्नि के मुख में परणित करने लगे। मेरे प्यारे! व्ही तो अग्नि में चला गया अग्नि ने उसका दाह कर दिया दाह कर दिया तो बेटा! वह जो शरीर में पार्थिव तत्त्व थे वे पार्थिव तत्त्वां में प्रतिष्ठित हो गएं और जो घ्राण थे जिसमे सर्वत्र परमाणु और तरंगवाद का विज्ञान था। वह परमाणु प्राणेश्र रूपमे वायु में परणित हो गये।
जो आकाश बना हुआ था शरीर में जिसमे हम भोजन पान करते है भिन्न प्रकार का अवकाश में जा करके वह सूक्ष्म बन रहा था। संस्कार जागरूक बना रहे थे। मस्तिष्क से उसका निर्माण हो रहा थां। अवकाश भी चला गया वह अपने में ही लय हो गया कयांकि अपने स्वरूप में प्रवेश कर गया है नेत्रो की ज्योति अग्नि में प्रवेश कर गई वह अपने अपने स्वरूप में परणित हो गएं।
परिणाम क्या हुआ इस आत्मा को जाना उस काल मे जाता है। जब इस मानव शरीर को और आत्मा को तुम दो वस्तु स्वीकार करोगे और यह कहोगे कि यह शरीर नही है। आत्मा तो एक चेतना थी वह चली गयी, कहाँ गयी? जो उदान प्राण, जो चित्त का मण्डल कहता था वहीं चली गई है, स्मृति भी चली गयी, उदान के साथ में वह स्मृति

भी नहीं रही जो माता पिता की जानकारी थी। जो पुत्री पुत्रों! की जानकारी थी वह स्मरण शक्ति भी नहीं रही।

मेरे पुत्रों! वह आत्मा के साथ में ही तन्मात्राओं के आंगन में चित्त के मण्डल में प्रवेश हो करके चली गई विज्ञान में वह सब दृष्टिपात आ रहा था वह भी नहीं रहा। वह सब लय हो गया, एक दूसरे में परन्तु यह नहीं है कि वह समाप्त हो गया है, वह समाप्त नहीं हुआ है। उसका सूक्ष्म रूप बन गया है। तन्मात्राओं का सूक्ष्म रूप बन गया। जिन परमाणुओं से मानव शरीर चेतनित सा दृष्टिपात आता था, उसका रूपांतर हो गया, स्थूल नहीं रहा, उसका रूप अपने ही स्वरूप में परणित हो गया।

मेरे पुत्रों! वेद के ऋषियों ने कहा है कि मृत्यु का भी यहाँ अभाव बन गया है। मृत्यु नहीं है। संसार में मृत्यु का आभाव बन गया है। क्योंकि आत्म चेतना को जो जान लेता है, जो इस प्रकार का जो मैंने सप्त का वर्णन किया है। मैं सप्त होताओं का वर्णन कर रहा था। वे सप्त होता जो आहुति दे रहे थे, जो आहुति चल रही थी सूक्ष्म रूप बन करके एक व्यञ्जप्क् स्वरूप बन रहा था। आत्म लोक में जाने के लिए। आत्मा का लोक क्या है?

इस आत्मा को हम चेतना स्वीकार करके, ज्ञान स्वरूप स्वीकार करके इस संसार में आ करके हम कर्त्तव्यवादी बने। हम इसमें ममता में, ऐसी आभा में परणित न हो जाएं जिससे हमारे आत्म तत्त्व का अस्तित्व समाप्त हो जाएं। हम अपने मृत्यु स्वरूप को जानें। जिसको हम मृत्यु कहते हैं और एक जीवन स्वरूप को जानना चाहते हैं। दो स्वरूप मानव के समीप रहते हैं। उन दोनों स्वरूपों को जान करके मानव में एक पवित्र आभा का जन्म हो जाता है।

वह पवित्र आभा ही परमपिता परमात्मा की लोरियों का पान करा देती है। ज्ञान रूपी लोरियों का पान करा देती है। वह परम आनन्द का अनुभव करता है। वह आनन्द है और उस आनन्द को जो ग्रहण करता है वह अमरावती को प्राप्त हो जाता है।

आओ! मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। तुम्हें यह वर्णन कराने के लिए आया हूँ कि आत्म लोक में प्रवेश करना चाहते हैं। आत्म लोक क्या है? लोक

कहते हैं जहाँ वास होता है। यह मानव शरीर आत्मा को लोक है। परन्तु यह लोक उस काल में है, जब इसका विज्ञान स्वरूप तुम्हारे समीप हो। विज्ञान स्वरूप इसका व्यापकवाद यह सूक्ष्म सा पिण्ड जो मानव स्वीकार करके नाना प्रकार के काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के आंगन में प्रवेश कर जाता है तो यह संकीर्ण बन जाता है। वह संकीर्णता नहीं रहनी चाहिए। मानव लोलुपता में वह संकीर्ण नहीं बनना चाहिए।

इस मानव शरीर को व्यापकवाद स्वीकार करके, आत्म लोक स्वीकार करके और प्रत्येक वस्तु सामान्यता में रहे। कर्त्तव्यवाद की आभा जागरूक रहनी चाहिए। कर्त्तव्यवाद की आभा तब तक रहती है जब तक मानव प्रत्येक इन्द्रिय के स्वरूप को जानता है। प्रत्येक इन्द्रिय के स्वरूप को जब तक नहीं जाना जाता, जब तक वह कर्त्तव्यवादी बन ही नहीं सकता और जब इन्द्रियों के स्वरूप को नहीं जाना जाएगा तो अधिकार ही अधिकार पुकारने लगोगे। अधिकार ही अधिकार रह जाएगा। वह अधिकार जो है वह अनधिकार कहलाता है।

वह अधिकार ही अनधिकारता में परणित होता है। परन्तु हे मानव! तू अधिकार ही क्यों पुकार कर रहा है? तू अधिकार की पुकार न कर। तू कर्त्तव्य का पालन करेगा तो तेरा जो मनोवांछित जो भोग है वह तुझे स्वतः प्राप्त हो जाएगा। तेरा कर्म हैं कर्तव्यवाद, तेरी आभा है कर्तव्यवाद।

निष्कर्ष जिसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं है। वह जो कर्म है, वह जो आभा है वह ही तेरा निष्काम कर्मयोग कहलाता है। वह निष्काम कर्मयोग इदन्नमम् यह मेरा नहीं है, ये सब किसी का है, मैं किसी की गाड़ी में विद्यमान हूँ और वह गाड़ी जब मैं लक्ष्य पर चला जाऊंगा, गाड़ी मेरे से भी पृथक हो जाएगी।

इसी प्रकार, हे मानव! यह शरीर है और रथी इसमें आत्मा विद्यमान है इसका जो लक्ष्य है ब्रह्म को प्राप्त करना है। यह गाड़ी मार्ग में जा रही है, ब्रह्म इसका लक्ष्य है। ब्रह्म के द्वार पर जा करके आनन्द ही आनन्द, यह गाड़ी स्वतः हमसे पृथक हो जाएगी। यह है पुत्रों! आत्मा का लोक जिसको प्रत्येक मानव को जानना है। प्रत्येक मेरे बाल्य, मानव वृन्द को जानना है। जिससे मानव समाज ऊँचा बनता है। मानव समाज में एक

महत्ता आती है, जिससे प्रभु का जो रचाया हुआ जगत है, यह सुन्दर और पवित्र बतना रहे। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो क्या होगा? यह भोगना तो तुम्हें ही है। भोगवाद के क्षेत्र में चले जाओगे। इसीलिए अमृत को ही पान करना है। वह आनन्द है, वह महान् है, वह पवित्र है, वह अखण्ड करने वाला है। वह समापन नहीं होता।

आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है? मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हमें आत्मलोक में जाना है, जहाँ हमें सदैव जागरूक रहना है। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में जब रात्रि नहीं होती तो सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है, उस प्रकाश में जाने के लिए हमें प्रयास करना है।

यह मानव शरीर आत्मा का लोक है। आत्मा इसमें वास करता है कब तक? जब तक प्रत्येक इन्द्रिय के व्यापक रूप को हम जानते हैं। व्यापक रूप समाप्त हो गया तो इसमें यह रथी नहीं रहता। यह कार्मों का क्षेत्र बन जाता है। वह कर्म फलों का क्षेत्र बन करके कर्म अर्थात् कर्त्तव्यवाद से ही प्राणी है वह भाग्य की कल्पना करते रहते हैं। वह भाग्य को ही पुकारते रहते हैं। अरे, मानव! तुम भाग्यवादी क्यों बनते हो! तुम कर्त्तव्यवादी बनो। कर्त्तव्यवादी ही पारायणता को प्राप्त होता है, वह प्रभु का दिग्दर्शन है। वह अपना मानव दर्शन है। तुम अपने में ही अपनेपन का दर्शन करने वाले बनो, वह मानवीय दर्शन जो चित्रों में प्राप्त होता है।

आज का विचार विनियम क्या? हम परमपिता पमात्मा की आराधना करते हुए, महापुरूष एकान्त स्थली में चिन्तन करते रहे हैं? इस आत्मा को जानने के लिए। इतना गहन यह विषय है। इसके लिए मानव तपस्या करते है। रेवक मुनि महाराज 101 वर्ष तक गाड़ी के नीचे ही अपने जीवन को व्यतीत करते रहे, महाराज इन्द्र प्रजापति के यहाँ जा करके 101 वर्ष तक तपस्या करते रहे। मुझे स्मरण रहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस आत्मलोक के लिए 84 वर्ष तो मौन रहे, वे वाक्य उच्चारण नही करते थे, चिन्तन ही चिन्तन चलता रहता था।

इस आत्मलोक को विजय करने के लिए, जानने के लिए इन चक्षुओं से संसार को सुदृष्टिपात किया जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रायः ऐसा क्रिया कलाप उनके जीवन

में चलता रहा। अरे, चक्षु जब अपने मित्र बन जाते हैं, अग्नेय अपने मित्र बन जाता है तो कौन किसका हिंसक? कौन हिंसा करता है किसी की? सर्पराज क्या, सिंहराज क्या ये सब उस आत्मवेत्ता के चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं।

सर्पराज सर्प नहीं रहता, वह इस महापुरूष की पूजा कर रहा है। सिंहराज आता है आत्म ज्ञान का आत्मा से मिलान ही करके। वह सिंहराज भी इस महापुरूष की पूजा कर रहा है। पूजा का अभिप्राय यह कि जिससे हृदय में से सुगन्धि उत्पन्न हो रही है, सिंहराज भी अपने में स्वीकार करता है। अरे, तू भी तो ऐसा ही आत्मा था। सर्पराज भी यह चिन्तन करता है कि तू भी तो ऐसी ही आत्मा था। तू कर्म करता करता हिंसक बन गया, तू कर्म करता करता प्राणियों का भक्षण करने लगा। कहाँ? यह भक्षण रूप बन गया प्राणी। आत्मा भक्षण रूप बन गया। जहाँ वह आत्मलोक में जाने वाला था, रथ को स्वीकार कर लिया।

वह रथ भी अधूरा बन गया है जिस रथ को तुझे पान करना था। यह मानव का शरीर एक ऐसा रथ है जो पूर्ण रूपेण है, परन्तु और जितनी भी योनियाँ हैं वे सब कोई न कोई अंगहीन हैं, कोई न कोई रथ अंगहीन नहीं है। तो इसलिए वह अपने विकास को भी प्राप्त नहीं हो रहे। कोई हिंसक बन गया, कोई महा हिंसक बन गया कोई विष को पान कर रहा है, कोई विष को त्यज्ञग् रहा है। कहाँ तक बन गया यह?

यह आत्मा, यह आत्मा का कितने प्रकार का रथ है, ये कितनी योगियाँ हैं संसार में? असंख्य योनियाँ हैं। ये सूर्य लोक से आ करके आत्मा यहाँ आ गया, इस रथ को अपना लिया उसने। ऐसे रथ को अपना लिया जहाँ हिंसा बन गया।

परिणाम क्या? मेरे पुत्रों! में विचार यह दे रहा हूँ कि हे मानव! तू अपने रथ में विद्यमान है। तेरा रथ पूर्ण रूपेण है। इसमें तू हिंसक न बन, तू भक्षक न बन, तू रक्षक बन और रक्षक वह बनता है जो अपनी ही स्वतः रक्षा करता है, दूसरों की रक्षा करना जानता है। जो अपनी रक्षा नहीं करता वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा?

पुत्रों! आज का हमारा वाक्य! अपनी रक्षा क्या है? अपने आत्म लोक को जानना है। आत्मलोक को जानना ही अपनी स्वतः रक्षा है। उसी में कर्तव्यवाद है, उसी में मानव

वाद है। जब आत्म लोकी प्राणी बन जाते हैं। तो उनको राष्ट्र की भी आवश्यकता नहीं। कौन किसके ऊपर शासन करेगा? जब मानव अपने अपने रथ के ऊपर शासन कर रहा है। प्राणी प्राणी अपने ऊपर अपना मानवीय दिग्दर्शन कर रहा है। कर्तव्यवाद में चल रहा है तो कौन कर्त्तव्य वादियों पर शासन कर रहा है। अरे, शासन तो उन प्राणियों पर होता है जो कर्त्तव्य विहीन होते हैं। जो अधिकार ही अधिकार पुकारते हैं। रजोगुणी, तमोगुणी बन रहे हैं। राष्ट्र तो उनके लिए ही होता है। महापुरूषों के लिए राष्ट्र नहीं होता। वे राष्ट्र के लिए महापुरूष होते है। राष्ट्र की प्रणाली दे करके चले जाते है। राष्ट्र शिक्षा दे करके चले जाते हैं। परन्तु राष्ट्र के क्षेत्र में वे नहीं होते राष्ट्र के क्षेत्र से ऊर्ध्व में होते है।

मेरे पुत्रो! यह आज का विचार विनिमय क्या? हम आत्म लोक में प्रवेश करें। आत्मा का लोक क्या है? जहाँ मेरे पुत्रो! यह राष्ट्र नहीं रहता, हिंसक नहीं रहता। हिंसक भी पूजा कर रहा है, राष्ट्र भी पूजा कर रहा है। यह है आज का हमारा वाक्य।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय, कि हम आत्म लोकी बने। आत्मा के ऊपर मुनिवरों! अपना अधिपथ्य करते हुए, आत्म लोक में कर्त्तव्यवादी महान वादी बन करके इस रथ में रथी इसमे विद्यमान है। इस रथ को जोतना और जैसे सात पैड़ियाँ तुम्हें आत्म लोक की वर्णन की है।

अब पुत्रो! मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएँ मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा।

१० 01 05 1979 पुष्प 34 विष्णु रूपी आत्मा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से ही उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता हैं क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसकी ही प्रतिभा इस सर्व ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत है। जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य

जगत् हमें दृष्टि पात आ रहा है यह उस महान् मेरे देव की ही प्रतिभा है। मानो यह उसकी आभा का प्रतीक माना गया है।

हमारी वेदमन्त्र नाना प्रकार की प्रेरणा देता रहता है और उसमें नाना प्रकार का विज्ञान का वर्णन आता रहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र नाना प्रकार की प्रेरणा देता चला जा रहा था, और हमें प्रेरित कर रहा था कि हे मानव! तू मननशील बन। प्रत्येक मानव को इस संसार में मननशील बनना चाहिए। क्योंकि जो मन से मनन करता है उस मानव के जीवन में अंधकार नहीं होता। सदैव प्रकाश रहता है और प्रकाश ही मानव का जीवन है और अन्धकार ही मानव की मृत्यु है।

आओ! मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें एक ऐसे ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनियों का परम्परा से बेटा! विचार विनिमय होता रहा है और उनका विचार विनिमय ब्रह्माण्ड को महान बनाने के लिए और ब्रह्माण्ड में जो क्रिया हो रही है उसको ज्ञान और विज्ञान में ले जाने के लिए परम्परा से मानव लगा हुआ है अथवा वह अनुसन्धान करता रहा है।

मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना चित्रावलियों का वर्णन आता रहता है। नाना ऋषियों के यहाँ बेटा! जितना भी ज्ञान और विज्ञान अथवा परमाणुवाद है, अणु वाद है उसकी प्रायः उनकी अनुसन्धानशाला में उनका अनुसन्धान होता रहा है। जब मैं अपने देवतव वाले ऋषियां के विचार धाराएं, उनकी आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान में उनकी कितनी गतियां रहती थीं?

तो विचार आता है बेटा! उनकी उड़ान बड़ी विचित्र रही है। उड़ान उड़ने वालों ने भिन्न भिन्न प्रकार की उड़ानें उड़ी हैं। इस पृथ्वी से ले करके नाना लोक लोकान्तरारें में बेटा! ऋश्ज्ञियों का यातायात रहा है। अथवा उनका गमन होता रहा है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। जब ब्रह्मचारी सुकेता भारद्वाज मुनि के आश्रम से बेटा! एक यान में उड़ान उड़ी मंगल में मंगल से उड़ान उड़ता है श्वेतलोकों में, तो बेटा! वह 72 लोकों का भ्रमण करके पुनः अपनी यन्त्रशाला में, विज्ञानशाला में प्रवेश करता रहा है।

बेटा! मैं इस सम्बन्ध में तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। विचार यह कि वेद का

मन्त्र क्या कहता है? हमारे यहाँ ऊँची उड़ान उड़ने वाले वैज्ञानिकों ने अपनी शाला में विद्यमान हो करके बेटा! ध्रुव मण्डलां की यात्राएं की हैं। आओ मैं तुम्हें विज्ञान के युग में ले जाना नहीं चाहता हूँ जो कि सूक्ष्मतम् विषय रहा है। परन्तु दूसरे ऋषि यह विचारते रहते थे, जहाँ विज्ञान में इतनी उड़ान वहाँ द्वितीय उड़ान यह भी रही है कि आध्यात्मिक वेत्ता बनना चाहिए। आध्यात्मिक उड़ान उड़नी चाहिए।

बेटा! एक ऋषि तो विद्यमान हो करके परमाणु महा परमाणुओं, त्रसरेणुओं को जान रहा है। परन्तु एक ऋषि मृत्यु को विजय करने में लगा हुआ है और यह विचारता है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। क्योंकि संसार का कोई प्राणी यह नहीं चाहता कि मेरी मृत्यु हो वह मृत्यु से पार होना चाहिए।

तो आओ मेरे पुत्रो! मृत्यु से कैसे पार होता है? एक ऋषि तो उड़ान उड़ रहा है लोक लोकान्तरां की। वही ऋषि मृत्यु से विजयी होने के लिए सदैव तत्पर है। विचारता है कि प्रभु के राष्ट्र में अन्धकार नहीं होता, और जहाँ प्रकाश होता है! वहाँ रात्रि नहीं होती, और जहाँ रात्रि नहीं होती वहाँ मेरे प्यारे! देखो, मृत्यु भी नहीं होती। और जहाँ मृत्यु नहीं होती वहाँ सदैव ज्ञान का प्रकाश रहता है जहाँ अन्धकार होता है वहाँ ज्ञान नहीं रहता और जहाँ ज्ञान नहीं रहता बेटा! वहाँ अंधकार होता है। अंधकार में मृत्यु है।

वेद के आचार्यों ने ये भी कहा है कि हे मानव! तू मननशील बन करके मृत्यु से पार होने का प्रयास कर! मेरे प्यारे! माता दुःखित रहती है मेरा पुत्र मृत्यु को चला गया परन्तु वह मृत्यु से पार होने वाला जो वेद का ऋषि है, वेद की मेरी पवित्र विदूषी माता है वह यह चिन्तन कर रही है कि मृत्यु जयम् ब्रह्मलोकाः अवस्थित यह मृत्यु तो कोई वस्तु नहीं है।

आओ! मेरे प्यरो! मैं आज तुम्हें महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में ले जाना चाहता हूँ। भगवान राम की विवेचना प्रारम्भ हो रही थी और महर्षि वशिष्ठ ने यह निर्णय कराया कि हे राम! इस संसार में यदि तुम विष्णु राष्ट्र की स्थापना करना चाहते हो तो तुम्हें विष्णु बनना होगा। 1. सबसे प्रथम भुज में धर्म, 2. द्वितीय में गदा, 3. तृतीय में बेटा! चक्र और 4. चतुर्थ में शंख होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में बेटा! । चार प्रकार

की नियमावली होती है। 1. सबसे प्रथम चरित्र 2. उसके पश्चात् राष्ट्र की रक्षा, 3. तृतीय में संस्कृति और 4. चतुर्थ में वेद ध्वनि होनी चाहिए। बुद्धिमान होने चाहिए। और मुनिवरों! इनके नाना प्रकार के भेदन होते हैं।

आज मैं तुम्हें एक वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ। जहाँ राजा को विष्णु कहते हैं, वैदिक साहित्य में नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द माने हैं। वहाँ परमात्मा को भी बेटा! विष्णु कहा जाता है। वह कौन सा अब्रहेः वृतम् आत्मा विष्णु है? और परमपिता परमात्मा को विष्णु कहा जाता है। मेरे प्यारे! जो विष्णु हमारा लालन पालन कर रहा है। संसार को क्रियाशील बना रहा है। सत्यमय दृष्टि पात आने वाला जगत उसी परम ब्रह्म से, उसी विष्णु से ओत प्रोत रहता है।

आओ! मेरे प्यारे! । वह जो मेरा प्यारा विष्णु है, हमारा कल्याण करने वाला है। हम उसकी उपासना करते हुए और महात्मा ऋषि विष्णु को जानते चले जाएं। हमारे यहाँ जहाँ राजा को विष्णु कहते हैं, वहाँ आत्मा का नाम भी विष्णु कहा जाता है मुझे एक समय मेरे पुत्र महानन्दजी ने प्रगट कराया कि विष्णु तो अक्षय क्षीर सागर में रहता है और अक्षय क्षीर सागर में नारद अपनी वीणा के सहित है, गन्धर्वः गान गा रहा है, लक्ष्मी चरणों में ओत प्रोत है और विष्णु शेषनाग की शय्या पर विद्यमान हैं और पांचों फनों वाला जो शेषनाग है वो उसकी छाया कर रहा है।

मेरे पुत्रो! ये वैदिक ऋषियां ने एक रूपान्तर लिया और उसमें इसकी विवेचना की। हमारे यहाँ विष्णु अक्षय क्षीर सागर में रहता है, वेद का ऋषि कहता है अक्षम अक्षम क्षीर ब्रहेः सागराः अक्षम सरस्वतिः ये वेद की आख्याकिया कहती है कि अक्षय क्षीर सागर नाम ज्ञान का है। जहाँ मेरे प्यारे! मानव को ज्ञान होता है चारों प्रकार की बुद्धि उस मानव के समीप रहती है बुद्धि ऋतम्भरा और प्रज्ञा। ये चार प्रकार की बुद्धि जहाँ होती हैं उसे मेरे पुत्रो! अक्षय क्षीर सागर कहते हैं। बुद्धि यह दृष्टिपात कर लेती है कि ये नाना प्रकार के तारा मण्डल हैं, यह ब्रह्माण्ड हैं, आत्म तत्व की वार्त्ता प्रगट कर रहा है। मेरे प्यारे! जो उसे ग्रहण कर लेती है उसे बुद्धि कहते हैं और जो इस क्रिया में लगा हुआ है। मेरे पुत्रो। उसको साक्षात्कार जब कर लेता है तब उसे मेघावी कहते हैं।

और मुनिवरों! उनके ऊपर अनुसरण करके जो उन्हें अपने हृदय रूपी गुफा में धारण कर लेता है बुद्धि, मेधा, उसे ऋतम्भरा कहते हैं। उसे ऋतम्भरा प्राप्त हो जाती है। मेरे पुत्रो! जो परमात्मा में अवस्थित हो जाता है, अपने को ब्रह्माण्ड में और ब्रह्माण्ड को अपने में दृष्टिपात करता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड का दोनों का समन्वय करता है, वह प्रज्ञावी बन करके परमपिता परमात्मा का दिग्दर्शन करता है। इसका नाम अक्षय क्षीर सागर है। जो अक्षय क्षीर सागर में जाता हैवह मानव इस संसार सागर से पार हो जाता है।

मेरे पुत्रो! मैं आज तुम्हें कहाँ ले गया हूँ? प्रत्येक मानव यह विचारता रहता है। आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता यह विचारता रहता है कि मैं अष्ट चक्रों वाली और नौ द्वारों वाली यह जो अयोध्यापुरी है मैं इसको जानना चाहता हूँ। यह मानव का शरीर एक अयोध्या है। इसमें अष्टाचक्र और नौ द्वार कहलाते हैं। यह कैसी प्रिय पुरी है पुत्रो? मेरे प्यारे! इसमें अन्तरात्मा शरीर में विद्यमान है इस पुरी में परन्तु किसी द्वार से वह नहीं निकल पाता। कैसा विचित्र है यह राष्ट्र? राज कर रहा है इस राष्ट्र पर।

मेरे प्यारे! अष्ट चक्र है जैसे 1. मूलाधार, 2. नाभिःचक्र, 3. स्वाधिष्ठान चक्र, 4. हृदय चक्र, मेरे प्यारे! 5. कण्ठ, 6. घ्राण 7. त्रिवेणी और 8. ब्रह्म रन्ध और सोमाम् ब्रहेः कृतम् देवयत्म सोमव्रत पान कर लेता है। बेटा! मैं तुम्हें योग के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। महाराजा अष्टावक्र की विवेचना जानते थे। अष्टा चक्रों के मूल को जानते थे। उन्हें बेटा! इसलिए अष्टावक्र भी कहते हैं।

पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है उनका जीवन, उनके जीवन की आभा। मेरे प्यारे! । वे 1. मूलाधार में पृथ्वी विज्ञान को जानते थे और 2. नाभिः केन्द्र में पहुंचे तो वायु विज्ञान को जानते थे। 3. स्वाधिष्ठान चक्र में पहुंचे तो वहाँ अग्नि विज्ञान को जानते थे 4. हृदय चक्र में पहुंचे तो वहाँ अग्नि विज्ञान को जानते थे। 4. हृदय चक्र में पहुचे तो वहाँ अन्तरिक्ष विज्ञान को जानते थे। 5. कण्ठ चक्र में पहुंचे तो वहाँ जन्मजन्मान्तरों के उदान प्राण के साथ में चित्त के मण्डल को जानते थे। 6. मेरे प्यारे! जब घा्रण चक्र में पहुंचे तो मुनिवरों! देखो, जितना भी अन्तरिक्ष वाद है। उसकी सर्व दिशाओं को

जानते थे। 7. ब्रह्मरन्ध्र में जब पहुंचे तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड में जितने लोक लोकान्तर हैं, सब उस ऋषि के लिए बेटा! खिलवाड़ बन गया। और जब सोमरस का पान करने लगे तो जितना चन्द्र मण्डल है वो उसके अन्तर मस्तिष्क में बेटा! ओत प्रोत होकर के वह ऋषि सोम पान कर रहा है।

तो मेरे पुत्रो! योग में आज मैं तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ कि हमारे ऋषि मुनियों ने कितना अनुसन्धान किया। अष्टावक्र जैसों ने ये बेटा! देखो, जन्मजन्मान्तरों के ऋषि थे अष्टावक्र का इससे पूर्व जो जन्म था वह महर्षि विभाण्डक विभाण्डक से पूर्व इनका जन्म मेरे प्यारे! देखो,! मार्कण्डेय के नामों से उच्चारण किया जाता था। परन्तु मैं उस विचारधारा में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि चित्त के मण्डलों में जन्म जन्मांतरां के संस्कार विद्यमान हैं।

बेटा! मुझे स्मरण है एक समय महर्षि दधीचि अपने आसन पर विद्यमान थे और चित्त के मण्डल पर उसका अनुसन्धान चल रहा था। एकान्त स्थली पर विद्यमान थे। तो बेटा! देखो,! ऋषि उस चित्त के मण्डल को जानता हुआ प्राण के द्वारा मेरे प्यारे! वह समष्टिचित्त में प्रवेश हो करके वे एक लाख जन्मों की वार्त्ता को चित्त मण्डल से अपने में वे ग्रहण करने लगे। ऋषि कहता है, हे प्रभु! कैसा विचार का वन है? मैं कहाँ चला गया हूँ? तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! देखो, इस प्रकार भयंकर वन में जहाँ वह विज्ञान के वन में प्रवेश करता है उसको अक्षय क्षीर सागर कहते हैं।

अक्षय क्षीर सागर क्या है? जो अपने विचारों को चित्त के मण्डल में ले जाता है। चित्त की आभा को जान लेता है जैसे बेटा! हृदय में चित्त है इसी प्रकार समष्टि में भी अन्तरिक्षत में भी एक चित्त हैं बेटा! जहाँ जन्मजन्मान्तरों के संस्कारों का तारतम्य होता है। बेटा! जहाँ जन्मजन्मांतरों के संस्कारों का तारतम्य होता है। बेटा! जन्म जन्मान्तरों में जब अध्ययन किया हुआ वेद का ऋषि कहता है। कि तप के साथ में चित्र विद्यमान रहते हैं परन्तु आज मैं बेटा! विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ।

विचार यह देने के लिए आया हूँ मेरे प्यारे! देखो,! कौन? यह विष्णु रूपी आत्मा अक्षय क्षीर सागर में, जिसकी कोई सीमा नहीं है बेटा! अक्षय क्षीर सागर में रमण कर रहा

है। जब यह विष्णु रमन कर रहा है, गन्धर्व और नारद अग्रताम् देवा अक्षय क्षीर सागर में! शेषनाग की शय्या पर! विद्यमान हो जाता है। शेषनाग क्या है? मेरे प्यारे! शेषनाग कहते हैं जो पांचों फनां वाला शेषनाग कहलाता है। उस पर विष्णु विद्यमान रहता है। वह पांचों फनों वाला क्या है पुत्रो? मेरे प्यारे! 1. काम 2. क्रोध 3. लोभ, 4. मोह 5. हंकार, ये पांचां फन कहलाते हैं। ये पांचों फनों वाला शेषनाग! ऋषि आत्मा रूपी विष्णु इन विषयां को नीचे दबाकर के इनके ऊपर विश्राम करने लगता है और जब काम, क्रोध, लोभ, मोह, इत्यादि ये नीचे हो जाते हैं, दब जाते हैं, तब यह जो लक्ष्मी है, स्त्री है जो संसार को मोहने वाली है। मोहनी बन करके मानव को कहीं का कहीं ले जाता है यह उस ऋषि के जो शेषनाग की शय्या पर विश्राम कर रहा है उसके चरणों की वन्दना करने लगती है।

यह वन्दनीय बन जाती है यह शेषनाग पांचों फनों वाला क्या है? 1. योगी का क्रोध आता है तो मृत्यु कार्य, 2. वासना आती है तो मृत्यु कार्य 3. मोह आता है, 4. ममता आती है तो मृत्यु का कार्य 5. अहंकार आता है तो मृत्यु का कार्य इनमें पांचों में से कोई वस्तु आ जाए तो उसको मृत्यु में ले जाए, अंधकार में ले जाए। इसीलिए वह शेषनाग कहलाता है, जिसे नीचे दबाने वाला जो ऋषि है वह विष्णु रूपी आत्मा है। मेरे पुत्रो! देखो, इसको नीचे दबाकर के इसके ऊपर विश्राम करने लगता है।

मेरे पुत्रो! देखो, नारद अपनी वीणा को लेकर के गान गाने लगता है। बेटा! यह नारद वैदिक साहित्य में नारद के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु यह प्रकरण के आधार पर निर्णय किया जाता हैं मेरे प्यारे! देखो,। नारद नाम बेटा! मन को माना है। मानो यह चंचल रूपी वीणा को लेकर के विष्णु रूपी आत्मा के समीप आ जाता है और कहता है प्रभु! मुझे क्षमा करो मैं वीणा के सहित आ गया हूँ। बेटा! गन्धर्व नाम बुद्धि का है जो गान गाने लगती है। यह गान उद्गीत गाने लगती है बेटा! । यह मानव को रत्त बनाने के लिए उद्गीत गाने लगती है गन्धर्व बन जाती है और नारद वीणा को लेकर के मौन हो जाता है।

तो मुनिवरों! यह वीणा का स्वर चलता रहता हे, नृत्य करता रहता है और गन्धर्व गान

गाता रहता है, उद्गीत गाता रहता है, उद्गान गाता रहता है। कैसा उद्गान गाता है देवताओं से मिलने के लिए देवता बनने के लिए, देखो,! मेरे प्यारे! ब्रह्म रक्षणा सब लोकों में गमन करने के लिए और वो असुरपन को त्याग करके देवता प्रवृत्ति बनाने के लिए यह गान गाने लगता है। चंचलता को त्याग देता है।

तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? हमारे यहाँ यह आत्मा विष्णु कहलाता है। यह उस काल में विष्णु कहलाता है जिस काल में यह योगी बन जाता है योगेश्वर बन जाता है। उस समय मेरे पुत्रो! आत्मा को विष्णु कहते हैं। और यह आत्मा तो विष्णु है तू आत्मा विष्णु बन करके इस मानव का कल्याण करने वाला है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें आज विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि मुनिवरों! देखो,! विष्णु रूपी जो आत्मा है इसको भी हमें जानना है। जो इस आत्म तत्व को जानने वाला है वह इस संसार की ममता में नहीं आता ह। ै वह मृत्यु से पार हो जाता है। उस योगी के जीवन में रात्रि नहीं होती। वह सदैव प्रकाश में रहता है अन्धकार नहीं आता। वह सदैव प्रकाश ही प्रकाश में रहने वाला है। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में रात्रि ही नहीं होती तो बेटा! वहाँ अंधकार कैसा? वहाँ अंधकार कहाँ से आएगा?

आओ मेरे पुत्रो! विचार करें, हम विचारते रहें। वेद का ऋषि कहता है, मन्त्र कहता है, हे मानव! तू मननशील बन! मननशील बन करके तू मृत्यु से पार हो जा। क्योंकि मृत्यु से पार होने के लिए संसार में प्राणी आता है। प्रत्येक मानव मृत्यु को विजय करने के लिए आता है। यह मृत्यु मेरे जीवन में नहीं रहनी चाहिए। अज्ञान नहीं रहना चाहिए। प्रकाश और ज्ञान रहना चाहिए।

आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें उच्चारण करते करते कहाँ ले गया हूँ? मैं विष्णु रूपी आत्मा का वर्णन कर रहा था। यह कैसा विष्णु है? यह मेरे प्यारे! अगम्य प्रभु के समीप पहुंच जाता है। मोक्ष गामी बन जाता है। ज्ञान और प्रयत्न दोनां को एक सूत्र में ला देता है। दोनां मनके एक ही सूत्र में पिरोए जाते हैं, और सूत्र में पिरोने के पश्चात् अनन्त

प्रकाश का वह स्वामी बन जाता है।
आओ मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें उच्चारण करते हुए दूर चला गया। विचार यह चल रहा था कि एक योगी तो बेटा! मृत्यु को विजय करना चाहता है और द्वितीय ऋषि बेटा! राष्ट्र का प्रिय बनाता हुआ नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता है परन्तु देखो,! मन्तव्य ऋषि का जो मृत्यु को विजय करना हे, उसका मन्तव्य महान् है वह योगेश्वर है। परन्तु एक एक वस्तु पर वह अनुसन्धान करता है। एक एक इन्द्रिय पर अनुसन्धान करता है।
बेटा! एक समय चक्राणी गार्गी अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन कर रही थी। जब अध्ययन कर रही थी तो क्या? गान का अध्ययन कर रही थी। उद्गीत गाती हुई। एक समय बेटा! प्रातःकालीन भयंकर वन में आसन् को त्याग करके और वह गान गाने लगी। जब चक्राणी गान गा रही थी। हरितत्त गोत्र में उस कन्या का जन्म हुआ थ्ज्ञा। पनपेतु ऋषि महाराज के यहाँ वह अध्ययन कर रही थी। मेरे प्यारे! जब उद्गीत गाने लगी समागान गाने लगी। तो मेरे पुत्रो! उसका सामगान सर्पराजों के मध्य में हो रहा था। सर्पराज उसके गान को श्रवण कर रहे थे।
मेरे पुत्रो! कौन? ममतामयी माता की प्रसन्नता को पान करने वाला पुत्र प्रसन्न हो जाता है। सर्पराज प्रसन्न हो रहा है। हिंसा से रहित वह गान था। हिंसा से रहित जो गान होता है उसी को हिंसक प्राणी बेटा! श्रवण करते हैं। मेरे प्यारे! उसको श्रवण करने वाले उद्गीत में लगे हैं। मेरे प्यारे! देखो,! उन आश्रमों में एक समय भ्रमण करते हुए स्वादेष्कर ऋषि महाराज चाक्राणी गार्गी के समीप पहुंचे। चाक्राणी गार्गी को मन ही मन नमस्कार करके बोले, कि हे देवी! यह तुम क्या कर रही हो? चक्राणी विदुषी कहती कि हे प्रभु! मैं उद्गान गा रही हूँ। उन्होंने कहा, तुम क्यों गान गा रही हो? उन्होंने कहा मैं गान इसीलिए गा रही हूँ। मेरा अन्तहृदय उस प्रभु के मिलन की इच्छा कर रहा है। उन्होंने कहा प्रभु! से मिलन की इच्छा क्यों कर रहा है? चाक्राणी बोली कि कौन पुत्र ऐसा है जो क्षुधा लगने पर अपनी माता के लिए रुदन नहीं करता हो? प्रत्येक बालक अपनी माता के लिए रुदन करता है, जब उसे क्षुधा लगती है। तो मैं संसार से ऊब

गई हूँ, इन जन्म जन्मान्तरों की ग्राभा में। ग्रब मैं ग्रपने देव से मिलन करना चाहती हूँ। मेरा जिनसे बिछुड़न हो गया है। उसी से, मिलन की इच्छा हो रही है। मैं उससे ग्रपना मिलन चाहती हूँ। तो इसीलिए प्रत्येक मानव उस देव से बिछुड़ा हुग्रा है। मानो! प्रत्येक मानव का ग्रन्तरात्मा कहता है कि मैं उससे मिलन करना चाहता है।

तो मेरे पुत्रो! ऋषि मौन हो गया। ऋषि ने कहा, विदुषी! यह जिज्ञासा तुम्हें कैसे उत्पन्न हुई? उन्होंने कहा, यह जिज्ञासा वेद रूपी प्रकाश में जाने से उत्पन्न हुई। जब वेद रूपी प्रकाश में हम जाते हैं तो वेद हमें प्रेरणा देता है, ग्रन्तहृदय को विदीर्ण करता है। क्योंकि वह परमात्मा की वाणी हैं वह ज्ञान है वह पाप ग्रौर हिंसा से रहित है। इसीलिए वह मानो प्रसन्न बना रहा है। तो मेरे पुत्रो! चाक्राणी ने यह कहा तो ऋषि पुनः मौन हो गए ग्रौर मौन हो करके बोले कि ये सर्पराज, ये हिंसक प्राणी तुम्हारे गान को क्यों श्रवण कर रहे हैं?

उन्होंने कहा ये भी तो प्रभु! से बिछुड़े हुए प्राणी हैं। मानो! ये भी चाहते हैं कि हमारा प्रभु से मिलन हो। माता से मिलन हो। तो इसलिए इस गान को, निष्पत्त गान को श्रवण करने में लगे हैं। मेरे पुत्रो! चाक्राणी को मन ही मन में प्रणाम कर नमस्कार करके ग्रौर ऋषि ने वहाँ से गमन किया। तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक प्राणी बेटा! ग्रानन्द चाहता है। सुख चाहता है ग्रौर प्रसन्नता चाहता है, मृत्यु से विजय होना चाहता है। तो बेटा! हमें मृत्यु से विजयी होना है। ग्राग्रो मेरे पुत्रो! ग्राज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं ग्राया हूँ। विचार यह देने के लिए कि जैसे राजा का नाम विष्णु है, वैदिक साहित्य में ग्रात्मा का नाम भी विष्णु है। जैसे ग्रात्मा का नाम विष्णु है ऐसे बेटा! परमपिता परमात्मा का नाम विष्णु है जो सतोमय रहने वाला है, सत्मय संसार को क्रिया शील बना रहा है। पिण्ड ग्रौर ब्रह्माण्ड की जो रचना कर रहा है। मेरी प्यारी माता के गर्भस्थल में इस मानव शरीर का निर्माण हो रहा है। परमाणुग्रों के द्वारा निर्माण हो रहा है। निर्माण कर्त्ता बेटा! निर्माण कर रहा है। हे भोली मां! तुझे कोई ज्ञान नहीं होता कि वह निर्माण कर रहा है, तेरे गर्भ स्थल में

परन्तु वह निर्माण कर रहा है।
इस मानव के शरीर में 72 करोड़ 72 लाख 10 हजार 2 सौ 2 नाड़ियों का निर्माण हो रहा है। परन्तु कैसे निश्चय करना है? केसा वैज्ञानिक है वह मेरा देव? जो ब्रह्माण्ड की रचना व इस मानव पिण्ड की रचना मानी गई है। बेटा! पिण्ड ब्रह्माण्ड एक ही रचना में मानो उसको स्वीकार किया है। बेटा! यह चन्द्रमा का ब्रह्म सोम पान कर रही है। वही मानो बेटा! ? देखो,। इस पिण्ड को जान करके देव प्राण रूपी सूत्र में अपने को पिरो देता है। यह ब्रह्माण्ड उसके समीप आ जाता है। तो विचार विनिमय क्या? कि मुनिवरों! देखो,! परमाणुओं से ही निर्माण होता है।
आज का विचार विनिमय क्या? कि हे विष्णु! तू आत्मा है। कल्याणार्थ कल्याण करने वाला। मेरे प्यारे! ? विष्णु कहाँ रचना कर रहा है? माता के शरीर में रचना हो रही है, अन्धकार कूप में रचना हो रही है परन्तु मेरी भोली मां उससे वंचित्त रहती है। आओ मेरे प्यारे! ? आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन करते रहें, और उसकी प्रतिभा का गान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं यह जो संसार सागर है, यह मान अपमान वाला जो जगत् है। इससे हम पार हो जाएं। बेटा! ? शेष चर्चाएं तो मैं कल ही प्रगट करूंगा।
आज का विचार विनिमय क्या? आज का विचार, बेटा! मैं तुम्हें गम्भीरता में ले गया हूँ। कोई वाक्य नहीं, जहाँ गम्भीरता है वहाँ सरलता भी है। आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, ज्ञान और विज्ञान में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! ? आज का वाक्। कल मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। मेरी इच्छा यह है, कल मैं तुम्हें भारद्वाज मुनि के आश्रम में ले जाऊँगा। विज्ञानमयी आध्यात्मिकवाद की आभा में। शेष चर्चाएं कल प्रगट होंगी। आज का वाक् समाप्त! अब वेदों का पाठन पठन होगा। अच्छा भगवान आज्ञा, स्थानः रामतलाई आश्रम, भादरा।

११ 02 05 1979 पुष्प 35 मानव के कल्याण के मार्ग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया।

आज के हमारे इस मधुर अनुपम पठन पाठन में उस मेरे देव की महिमा का गुण गान गाया जा रहा था। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है, वह कितना अनुपम है। मानो उसी की प्रतिभा इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत है। संसार की कोई स्थली ऐसी नहीं है जिस स्थली पर वह मेरा देव न हो। कोई समुद्र की ऐसी तरंगें नहीं हैं, पर्वतों की कोई गुफा ऐसी नहीं है, कोई स्थली ऐसी नहीं, जहाँ मत्ता प्रभु गति न कर रहा हो अथवा विद्यमान न हो। वह सर्वत्र विद्यमान है।

जब मानव उसको अपना स्वरूप बना लेता है, और यह स्वीकार कर लेता है कि वह तो प्रभु! सर्वत्र विद्यमान है तो बेटा! मानव पापों से रहित हो जाता है। वह मानव पाप नहीं करता है। क्योंकि वह अपने प्रभु को प्रत्येक वस्तु में दृष्टिपात करने लगता है। वह अपने को मनका स्वीकार कर लेता है और वह मेरे पुत्रो! एक अपने को एक सूत्र में पिरो देता है।

आओ! आज का हमारा मन्त्र क्या कह रहा है? वसुन्धरा ग्रहणाम् बृहे, वृतम् देवाः हे मां! तुझे वेद ने वसुनधरा कहा है। वसुन्धरा क्यों कहते हैं? क्योंकि यह संसार तेरे में वशीभूत हो रहा है तेरे ही गर्भस्थल में विद्यमान है।

बेटा! यहाँ वैदिक साहित्य में वसुन्धरा के नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। वसुन्धरा नाम प्रभु को भी कहा जाता है। क्योंकि प्रभु को हिरण्यगर्भः भी कहते हैं। यह सर्व ब्रह्माण्ड जो प्रभु के गर्भ स्थल में नृत्य कर रहा है। मुनिवरों! देखो, वसुन्धरा नाम माता का भी है जिस माता के गर्भ स्थल में हम जैसे प्यारे पुत्रों! का निर्माण होता है।

माता के गर्भ स्थल में कहीं बुद्धि का निर्माण हो रहा है। बुद्धि के नाना प्रकार, मुनिवरों! चार प्रकार की बुद्धि कही जाती है। कहीं मेरे प्यारे! मनस्तत्व विद्यमान हो रहा है। कहीं प्राण नाना रूपों में गति करने लगता है। तो यह सब माता के ही गर्भ स्थल में निर्माण होता है।

वैदिक साहित्य में इस माता को वसुन्धरा कहा है। जहाँ वसुन्धरा माता को कहा है वहाँ

पर्यायवाची शब्दों में बेटा! वसुन्धरा नाम पृथ्वी को भी कहते हैं। मेरे प्यारे! मानव जहाँ वास करता है, और वह जिस स्थली पर वास करता है, वही माता वसुन्धरा के गर्भ में विद्यमान है।

मेरे प्यारे! यहाँ माता वसुन्धरा का वर्णन आ रहा है। हे मां! तू वसुन्धरा है। तेरे गर्भ स्थल में यह सर्व ब्रह्माण्ड वशीभूत हो रहा है, मानो बस रहा है। निर्माण हो रहा है। निर्माण वेत्ता निर्माण कर रहा हैं परन्तु हे मां! वसुन्धरा! तू अपने में इस संसार को बसा रही है। तेरी कैसी अनुपमता है? तेरे ही गर्भ स्थल से नाना प्रकार का खाद्य, खनिज पदार्थों की उत्पत्ति हो रही है।

माता वसुन्धरा के गर्भ स्थल में जब बेटा! वैज्ञानिक प्रवेश करता है तो नाना प्रकार के खनिज दृष्टिपात होने लगते हैं। नाना खनिजों का पिपाद बनता है, और वह स्थूल रूप में शुष्क बन करके नाना प्रकार के रत्नों के रूप में मानव के समीप आ जाता है। इस माता के गर्भ स्थल में बेटा! क्या नहीं है? अग्नि प्रवाह से प्रचण्ड हो रही है। अग्नि एक एक कण कण को तपा रही है इस माता के गर्भ स्थल में।

बेटा! माता के गर्भ स्थल में एक अखण्ड ज्योति जागरूक हो रही है। यही अखण्ड ज्योति माता के गर्भ स्थल में है, जो मेरे प्यारे! इस माता के गर्भ से पुत्र पुत्री का जन्म होता है। हे मां! तेरे गर्भ में तो अखण्डमयी ज्योति का प्रवाह चल रहा है। अग्नि प्रवाह से गति कर रही है। मेरे प्यारे! वही अग्नि पृथ्वी में गति कर रही है। नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को तपा रही है। वही अग्नि बन करके बेटा! नाना रूपां में इस संसार में दृष्टिपात आ रही है।

आओ! मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे पुत्रों! यह संसार स्वर्ग मय बनता है। प्रत्येक मानव यह चाहता है, मेरी माता और पुत्री यह चाहती है कि यह संसार स्वर्ग बनना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषि भी चाहता है कि मेरा आश्रम स्वर्ग मय हो जाए।

मुनिवरों! देखो, मानव कैसे स्वर्गमय बने? प्रत्येक मानव आनन्द की पिपासा में लगा हुआ है, आनन्द चाहता है यह आनन्द कैसे प्राप्त होता है? मेरे प्यारे! आध्यात्मिक वेत्ताओं

ने आध्यात्मिक विवेचना की। भौतिक विज्ञान वेत्ताओं ने भौतिक विवेचना की। परन्तु इस संसार को नाना रूपों में इसको स्वीकार किया है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें एक क्षेत्र, एक स्थली पर ले जाना चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें माता वसुन्धरा के सम्बन्ध में नाना विचार देने के लिए नहीं आया हूँ। केवल इस मन्त्र से यही कहता है जिसके गर्भ में वशीभूत रहते हैं, उसका नाम वसुन्धरा कहलाता है। जिसमें हम बस जाते हैं वही वसुन्धरा है। माता के गर्भ से पृथक् होते हैं तो पृथ्वी के गर्भ में आ जाते हैं। जो भी माता अत्तार करती है, व्यवहार में अप्रिय भी होता है। वही माता के गर्भ स्थल में प्रिय आहार, पुत्र आहार करता है, पुत्री आहार कर रही है। परन्तु जब माता के गर्भ से पृथक् होते हैं तो पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में आ जाते हैं। ये नाना प्रकार का खाद्य, खनिज पदार्थ दे देती है। इससे मानव अपने उदर की पूर्ति करने लगता है। मेरे प्यारे! जब यह मानव पृथ्वी से दूर ऊर्ध्व गति में प्रभु के गर्भ में अपने को स्वीकार करता है, तो वह ज्ञानी बन जाता हैं ज्ञान के क्षेत्र में रमण करने लगता है।

आओ मेरे पुत्रो! यह केवल माता वसुन्धरा का ही कार्य क्रम है। यहाँ नाना प्रकार के रूपों का वर्णन आता रहता है। बेटा! यहाँ अहल्या का भी वर्णन आता है, वैदिक साहित्य में गो का भी आता है, अजामेध का आता है, अश्वमेध आदि का भी आता है नाना प्रकार के योगों का वर्णन आता रहता है। कन्या याग का वर्णन भी आता है। मेरे पुत्रो! यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के जैसे अग्नि ष्टोम याग है, वाजपेय याग है और भी नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में हमें प्राप्त होता है। परन्तु आज मैं बेटा! तुम्हें गम्भीर यागों के सम्बन्ध में विवेचना देने नहीं आया हूँ। वर्णन आता रहेगा, वेदमन्त्र प्रेरणा देता रहेगा, वाक्य प्रगट होते रहेंगे।

आज तो मैं तुम्हें केवल इतना उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि मैं तुम्हें एक ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूँ। जो वार्त्ता मैंने पूर्व काल में भी प्रकट की है, और वार्त्ताओं को करता ही रहता हूँ। मेरे पुत्रो! आओ, आज मैं तुम्हें महर्षि भारद्वाज गोत्र में ले जाना चाहता हूँ। भारद्वाज गोत्र में बेटा! नाना ऋषि हुए हैं। परन्तु महर्षि भारद्वाज

जो रोहिणी केतु भारद्वाज थे, उनके पिता कौड़ली भारद्वाज कहलाते थे।

बेटा! एक कौडली भारद्वाज, शांडिल्य गोत्र में उनका संस्कार हुआ और रेणु केतु उनकी पत्नि का नामकरण था। परन्तु एक समय भारद्वाज बोले कि हे देवी! ऐसी इच्छा हो रही है कि हम अपने वंश के जो हमारे पूर्वज हैं, उनको हम निमन्त्रण दे करके हम पितर याग करना चाहते हैं। देवी ने कहा, प्रभु! यह तो प्रियतम है। मेरे प्यारे! उन्होंने अपने महापिताओं को और पिताओं को निमन्त्रण दिया और निमन्त्रण दे करके बेटा! उनका यथोचित्त स्वागत किया। परन्तु उनके गृह में एक बाल्य था भारद्वाज नामक। रेणु केतु भारद्वाज नामक बेटा! देखो, वह माता की लोरियों का पान करता रहा। माता ने उसे भोज्य कराया और वह क्रीड़ा करने लगा।

परन्तु देखो, सत्य इतना रमण करता भारद्वाज गोत्रों में। वह उनका स्वागत स्वीकार कर अपने अपने आसन पर गति कर गए, गमन किया। गमन करने के पश्चात्, अब मुनिवरों! वह बालक जब क्रीड़ा कर रहा था, तो रेणु भारद्वाज ने उसे अपने हृदय के समीप किया और बाल्य से कहा, हे बाल्य! तुमने भोज्य किया अथवा नहीं? उस समय उस बालक ने मिथ्या इन्कार कर दिया। उसने कहा, मैंने भोजन नहीं किया।

जब ऐसा कहा तो पिता कहता है अपनी पत्नी से, देवी! तुमने बाल्य को भोजन नहीं कराया? उसने कहा प्रभु! मैंने भोजन करा दिया है। उस बालक से कहता है, हे बालक! यह हमारा गृह तो अपवित्र बन जाएगा। क्योंकि जिस गृह में मिथ्यावादी पुरुष होते हैं, वह गृह तो अपवित्र बन जाता है। जिस राजा के राष्ट्र में प्रजा मिथ्यावादी होती है, वह राजा वह राष्ट्र भ्रष्ट बन जाता है। जिस विद्यालय में गुरु छल और कपटी मिथ्यावादी होते है। वह विद्यालय भ्रष्ट हो जाता है। हे बालक! तू हमारे गृह को अपवित्र करने के लिए आया। तुम्हें प्रतीत है, हमारा जो भारद्वाज गोत्र है, इसका जो निकास हुआ है वह दद्दंड गोत्रों से हुआ है और दद्दण्ड गोत्र का जो निकास है वह हरितत गोत्रों से हुआ है और हरितत गोत्र का जो निकास वह रेणु वृत्तिका गोत्रों से हुआ है और रेणु वृत्तिका गोत्र का जो निकास है वह ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से हुआ है। परन्तु देखो, हमारे

वंश में कोई भी मिथ्यावादी पुरुष नहीं हुआ। तुमने यह मिथ्या उच्चारण क्यों किया? उस समय वह बालक तथा ब्रह्म वेत्ता आदि सब लज्जित हो रहे थे। मेरे प्यारे! जब लज्जित हो रहे थे तो माता कहती है, हे पुत्र! हमारा शांडिल्य गोत्र कहलाता है। शांडिल्य गोत्र का निकास भी इसी प्रकार हुआ है। जैसे ब्राण केतु गोत्र हुआ उससे उसका निकास हुआ। ब्राण केतु गोत्र का निकास वैशम्पायन गोत्रों से हुआ है। वैशम्पायन का जो निकास हुआ है, अंगीरस गोत्र से हुआ है। और देखो, हमारे वंश में भी कोई मिथ्यावादी बालक नहीं हुआ है। जिस माता के गर्भ स्थल से मिथ्यावादी पुरुषों का, पुत्रों! का जन्म होता है, उस माता का गर्भाशय पतित बन जाता है। माता अभागी बन जाती है। वह सौभाग्यशाली होती है, जिस माता के गर्भ स्थल से महान् पुरुषों के जन्म होते हैं। सत्यवादी पुरुषों के जन्म होते हैं। जिससे यह समाज पवित्र बन जाता है।

माता अपने पुत्र को जब यह उच्चारण कर रही थी तो बालक के हृदय में माता पिता के शब्द अंकित हो गए। मेरे पुत्रो! उनका विषय शान्त हो गया। उस समय चार वर्ष और चार दिवस की आयु बालक की थी। 5 वर्ष का हुआ तो महर्षि तत्त्व मुनि महाराज के यहाँ उसका प्रवेश हुआ। जब शिक्षा के लिए प्रवेश हुआ तो ऋषि ने उन्हें अपना लिया। महर्षि तत्त्व मुनि महाराज की आयु 284 वर्ष की थी। उस समय बेटा! उनके स्वीकार करने पर विद्या अध्ययन होने लगा।

जब विद्या का प्रारम्भ हो गया तो उनका जो विषय था ब्रह्मचारी का, वह परमाणु वाद था। जो वेद में परमाणु होता है उसे मैं जानना चाहूँगा। जो पितर ने कहा है, कि विचारों से गृह अशुद्ध बन जाते हैं, विचारों से राष्ट्र अशुद्ध बन जाता है, विचारों से ही सारे अशुद्ध बन जाते हैं मेरा विषय वह कहलाएगा। तत्व मुनि महाराज ने बेटा! उनका जो वेदों ने प्रमाणित किया वही उनका पठन पाठन का वह क्रम बन गया। और विद्या का अध्ययन कर लिया। जब परीक्षा होती तो उन ब्रह्मचारियों में प्रथम आए। किन्हीं में द्वितीय आते रहे। परन्तु उनका अध्ययन चलता रहा।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है भारद्वाज विद्या को अध्ययन करता रहा। अध्ययन करते हुए उन्होंने विद्या को पूर्ण कर लिया। एक समय तत्त्व मुनि महाराज बोले, हे ब्रह्मचारी!

तुम्हारी विद्या पूर्ण हो गई है, अब तुम विद्यालय को त्याग दो! आचार्य दीक्षान्त में कहता है, हे ब्रह्मचारी! तुम विद्यालय को त्याग रहे हो। आज से देखो,! विद्यालय की यही शिक्षा है कि तुम मिथ्यावादी मत बनो! सत्य कथन, सत्य उच्चारण करने में तत्पर रहना। अन्यथा मौन व्रत रहना। मेरे प्यारे! ज्ञान और विज्ञान में तुम्हारी गति होनी चाहिए। यह उपदेश दे करके ऋषि ने अंतिम चरण में भारद्वाज को विद्यालय से विदा किया।

मेरे पुत्रो! भयंकर वनों में जाकर उन्होंने विचारा कि मुझे करना भी क्या है? उन्होंने जिस विद्या का अध्ययन किया था, उन्होंने एक स्थली पर जाकर कजली वनों में एक यज्ञशाला का निर्माण किया। बेटा! सबसे प्रथम दो कोण की यज्ञशाला का निर्माण किया। तृतीय कोण यज्ञशाला का निर्माण किया। पञ्च कोण की यज्ञशाला का निर्माण किया। नाना ऋषि उनके समीप आने लगे। ब्रह्मचारी अध्ययन के लिए आने लगे। क्रियात्मक शिक्षा की प्रणाली प्रारम्भ हो गई।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है वे 24 कोणों की यज्ञशाला का निर्माण करने वाले बनें उसके पश्चात् जो परमाणु वाद उत्पन्न होता था, उस परमाणु को एकत्रित करने लगे और परमाणु एकत्रित करते, उनमें जब तरंगें उत्पन्न होने लगीं। मेरे प्यारे! वे यन्त्रों का निर्माण करने लगे। ऐसा बेटा! मुझे स्मरण है, उन्होंने बेटा! अपनी विज्ञानशाला में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण कर लिया। मेरे पुत्रो! वे वैज्ञानिक बन गए। परन्तु वह काल महर्षि रेवक्य मुनि का था। महर्षि रेवक्य मुनि महाराज को एक गाड़ी के नीचे विद्यमान हुए 101 वर्ष हो गए थे, तप करते हुए। वे महान् तपस्वी थे। मृत्यु को विजय कर रहे थे। क्या मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए? मृत्युञ्जय बनना चाहिए। मेरे प्यारे! उनके यहाँ एक सभा हुई। इस सभा में मेरे प्यारे! महर्षि वरुण, महर्षि श्लाघ, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेवक, महर्षि पनपेतु, महर्षि सोमकेतु, महर्षि विभांडक, महर्षि कृतकानू, देव ऋषि नारद और आदि ऋषि विद्यमान थे। जिसमें वैशम्पायन, व्रतकेतु ब्रह्मचारी कवंघी ब्रह्मचारी, रोहिणी केतु ब्रह्मचारी, कृतिभानु चाक्राणी गार्गी श्वेतकेतु आदि और भी नाना विदुषी और ब्रह्मचारी और ऋषि मुनियों का समूह था।

मेरे पुत्रो! यह विचार विनिमय होने लगा। क्या यह मानव जब वाक्यों का उच्चारण करता

है, तो वाक्यों के प्रत्येक शब्द के साथ में चित्र बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। यह कैसे करता है? मानव के हृदय से घ्राण से श्वास की उत्पत्ति होती है। श्वास में इतना परमाणु जाता है। इतना आकार का जाता है। जितना एक मानव आकार का वह प्राणी है। उसी आकार का वह चित्र बन जाता है। परमाणुओं का। तो मेरे पुत्रो! देखो, इस विचार में दर्शनों से समीक्षा की परन्तु वक्तव्य न ला सके। अब ऋषि मुनियों ने विचारा कि हमें क्या करना चाहिए? रेवक मुनि बोले कि हमारे विचार में यह आता है कि, महर्षि भारद्वाज मुनि आश्रम में प्रवेश करें और वहाँ इसकी जानकारी होगी।

मेरे पुत्रो! ऋषियों ने वहाँ से गमन किया। भ्रमण करते हुए महर्षि भारद्वाज मुनि के द्वार पर पहुंचे। जहाँ मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी सुकेता विद्यमान हैं। ब्रह्मचारिणी शबरी विद्यमान है। अब मुनिवरों! देखो,! जब वे उनके समीप पहुंचे तो महर्षि भारद्वाज ने ब्रह्मवेत्ताओं को दृष्टिपात करके हर्ष ध्वनि की। उसने कहा, यह मेरा कैसा सौभाग्य जागरूक हो गया है? मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ? मेरे गृह में ब्रह्म वेत्ताओं का आगमन हुआ है। मैं तो महान् लघू हूँ।

ऋषियों को नमस्कार करके बोले, कहो भगवन्! आपने मेरे आसन को कैसे पवित्र किया है? उन्होंने कहा, भगवन्! महर्षि मुग्दल बोले कि महाराज! हम तुम्हारे आसन पर तुम्हारे इस विज्ञान को दृष्टिपात करने के लिए आए हैं। क्योंकि तुम्हारे वंश में कोई भी परमाणु वाद विद्या को जानने वाला नहीं हुआ सब ब्रह्मवेत्ता हुए हैं और तुम्हारे हृदय में यह पिपासा जागी है। कहाँ से जागरूक हुई?

ऋषि कहता है कि यह माता पिता की प्रेरणा है। यह माता पिता की देन है। माता यह चाहती है अपने पुत्र को मैं ऋषि बनाना चाहती है कि मेरा पुत्र वायु मण्डल में गति करने लगे, तो गति करने लगता है। माता का गर्भाशय एक महान् विद्यालय कहलाया जाता है। माता की लोरियां जब पान कराती हैं, माता विचार देती है, तो बालक को महान् बना देती है। मेरे प्यारे! जब ऋषि ने ऐसा कहा तो उन्होंने कहा धन्य है, प्रभु! हम तुम्हारी विज्ञानशाला को दृष्टिपात करना चाहते हैं।

मेरे प्यारे! महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना विज्ञानशालाएं थीं। उनमें नाना यन्त्र विद्यमान

थे। वे यन्त्रशाला में ले गए। जिस यन्त्र का सबसे प्रथम निर्माण किया था। क्या एक मानव एक स्थली पर विद्यमान है, और उस मानव के वहाँ से प्रस्थान करने के पश्चात् ढ़ाई घड़ी (एक घंटा) के पश्चात् बेटा! उस मानव का चित्र ले लेता था। ढ़ाई घड़ी के पश्चात् वह मानव गत कर गया है, प्रस्थान कर गया है। मेरे पुत्रो, उन्होंने कहा कि सबसे प्रथम मैंने इस यन्त्र का निर्माण किया है। इस यन्त्र में यह विशेषता है कि आप ऋषि लोग यहाँ से गमन कर जाओगे तो ढ़ाई घड़ी के पश्चात् वह आपका चित्र ले सकता है।

मेरे पुत्रो! उन्होंने कहा धन्य है। अब द्वितीय विज्ञानशाला में ले गए। उन्होंने कहा, ये मेरी द्वितीय विज्ञानशाला है। इस विज्ञानशाला के यन्त्रों में ये विशेषता है। एक मानव का रक्त का बिन्दु कहीं मुझे प्राप्त हो जाए, चाहे वह मानव इस संसार में है अथवा नहीं है। उस एक रक्त के बिन्दु से ही उस मानव का साक्षात्कार तथा उस मानव का चित्र आ जाता है। तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, धन्य है भगवन! हम तो केवल दर्शनों में अध्ययन करते रहे, परन्तु हमने यह क्रिया में दृष्टिपात नहीं किया। उन्होंने क्रिया में दृष्टिपात कराया। तो बेटा! एक रक्त का बिन्दु ले करके उन्होंने एक रक्त के बिन्दु से यन्त्र में सुकेता का चित्र आ गया बेटा! उसमें। मेरे प्यारे! उनेंने कहा, धन्य हैं भगवन्! ऋषि कहता है कि मेरे यहाँ तृतीय विज्ञानशाला है। जिस विज्ञानशाला की यह विशेषता है कि अन्तरिक्ष में याग गति कर रहा है। मेरा यन्त्र गति कर रहा है। उस यन्त्र में जहाँ रजोगुणी, तमोगुणी, सतोगुणी वायु गति करती है उस वायु का, जब इस वायु से मिलान करके अग्नि की तरंगों में प्रवेश करती है, तो वह उसको विभाजन करती है। रजोगुणी शब्द कहाँ जाता है? सतोगुणी पृथ्वी मण्डल में मानो द्युलोक में दर्शनों से गुंथा हुआ, सत्य में गुंथा हुआ द्युलोक को चला जाता है। तो यह विभाजन होता हुआ मुनिवरों! उनका चित्र आ रहा है। उन शब्दों का चित्र आ रहा है, जिनकी वायु मण्डल में गतियां हो रही थी। वह गति उन्हें प्रत्यक्ष दृष्टिपात होने लगी।

मेरे प्यारे! आगे ऋषि कहता है, आओ! मेरे प्यारे! उनको चतुर्थ विज्ञानशाला में ले गए। जो यन्त्र विद्यमान हैं उस यन्त्र में यह विशेषता है कि जैसे सूर्य उदय होता है और पृथ्वी

के अन्तर्गत एक प्राण कृति भानु नाम की एक रेखा कहलाती है और उस रेखा में प्राण वायु, प्राण वर्द्धक जो परमाणु होते हैं उनको वह यन्त्र शोषण कर लेता है रेखा नग्न हो जाती है। तो जब राष्ट्र को भस्म करना हो उस रेखा को मानो परमाणुओं को यन्त्र में शोषण कर लेने राष्ट्र का राष्ट्र अग्नि में भस्म हो जाएगी उसी सूर्य से।
मेरे प्यारे! देखो,! इस प्रकार का यन्त्र कहाँ? महर्षि भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में मेरे प्यारे! देखो, ऋषियों ने सर्वत्र उनकी विज्ञानशाला का दिग्दर्शन कर लिया। वे मौन विद्यमान हो गए। परन्तु, महर्षि मुग्दल और शांडिल्य मुनि ने एक स्वर में कहा, प्रभु! हमने तुम्हारी विज्ञानशाला को दृष्टिपात किया। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि इतने विशाल विज्ञान का अंतिम परिणाम क्या होगा? इसका क्या बनेगा? आपके यहाँ अग्नेयास्त्र है, ब्रह्मास्त्र है वरुणास्त्र है, अग्नि है इनका यह विनाश का क्षेत्र बन गया है इसका अन्तिम परिणाम क्या बनेगा?
भारद्वाज जी कहते हैं कि ऋषियों! तुम आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता हो। उन्होंने कहा कि हम केवल आध्यात्मिकवादी हैं और तुम आध्यात्मिकवादी और भौतिकवादी दोनों को पसंद करते हो। मेरे पुत्रो! हे ऋषियो! इस विज्ञान के दो परिणाम होते हैं एक मृत्यु, एक जीवन। उन्होंने कहा, प्रभु! इस विज्ञान का सदुपयोग होगा तो जीवन जीवन की धारा उत्पन्न होगी और यदि विज्ञान दुरूपयोग होगा तो मृत्यु हो जाएगी।
ऋषि कहने लगे कि महाराज! यह कैसे? जब इस विज्ञान, नाना प्रकार की वित्रावलियों में मेरी सदाचारी पुत्र और पुत्रियों के नृत्य होने प्रारम्भ हो गए। ऋषि मुनियों के जीवन चरित्र आते हैं तो समाज में, महत्ता आती ह। ै विज्ञान का सदुपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है। ईश्वर ज्ञान विज्ञान केवल आध्यात्मिक वाद से सुगठित कर लेते हैं, कर्त्तव्यवाद में मानव का मिलाप करते हैं, तो विज्ञान से मानव का जीवन और राष्ट्र का जीवन बनता चला जाएगर। समाज का जीवन बन जाता है उन्होंने कहा, भगवन्! यह तो वाक्य यथार्थ है।
जब विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है, नाना प्रकार की चित्रावलियों में मेरी पुत्रियों के नृत्य होने लगते हैं। उनमें अश्लीलता आनी प्रारम्भ हो जाती है। मेरे प्यारे! राष्ट्र केवल

द्रव्यपति ही बनना चाहता है, चरित्र और कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है, तो बेटा! मानो राष्ट्र के राष्ट्र का विनाश होने वाला है। विज्ञान का वहाँ दुरूपयोग हो रहा है। मेरी पुत्रियों के जब अश्लील चित्र आने प्रारम्भ हो जाते हैं, उनको ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी दोनों सर्व दृष्टिपात करते हैं, श्रवण करते हैं, उनसे उनका ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। ब्रह्मचर्य के दूषित होने पर आलस्य और प्रमाद आ जाता है। आलस्य और प्रमाद आने के पश्चात् मुनिवरों! देखो, अधिकार की पुकार करने लगता है तो राष्ट्र में, समाज में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है।

बेटा! वेद का ऋषि क्या कह रहा है? मेरा तो अन्तर्हृदय गद् गद् हो रहा है, जब वेद का ऋषि यह कहता है कि समाज को कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। मेरे प्यारे! कर्त्तव्य जो मानव का अन्तर्हृदय कहता है इस वाक्य को। मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है कि भारद्वाज मुनि यह वाक्य प्रगट कर रहे थे। वे कहा करते थे कि ब्रह्मचर्य मानव का दूषित नहीं होना चाहिए। ब्रह्मचर्य में महत्ता होनी चाहिए, चरी होनी चाहिए, चरी की रक्षा होनी चाहिए।

मेरे पुत्रो! देखो, ब्रह्म की आभा में मानव रमण कर सकता है। ब्रह्मचरी, ब्रह्म और चरी दो ही तो अर्थ माने गए हैं ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को, चरी कहते हैं प्रकृति को। प्रकृति के पदार्थों को ब्रह्म में पिरो करके जो प्राणी, उसका समन्वय करता है वही ब्रह्म चरी को चरता है ब्रह्मचारी कहलाता है।

आओ मेरे पुत्रो! देखो,! नग्न नृत्यों को देखकर वह दूषित हो गया, उसमें आलस्य आ गया। आलस्य के आने पर प्रमाद आ जाता है। प्रमाद आया और वह कहता है मुझे अथवा मेरे जीवन में अधिकार प्राप्त होना चाहिए। अधिकार ही अधिकार रह जाता है। कर्त्तव्य वाद नष्ट हो जाता है। और जब कर्त्तव्य वाद नष्ट हो जाता है, तो समाज में रह क्या जाता है? और जब अधिकार की पुकार होने लगती है, तो उस समय राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है। रक्त मय जीवन बन जाते हैं समाज के।

मेरे प्यारे! यह वाक्य भारद्वाज ही नहीं कहते थे। ये वाक्य महाराज अश्वपति भी कहा करते थे। इन वाक्यों को बेटा! विष्णु व अंगरीस ने भी कहा है। वायु आदित्य भी कहा

करते थे ब्रह्म के पुत्र अथर्वा ने इस वाक्य को समझाया इस वाक्य के ऊपर विचार दिया। आज मैं उन विचारों में जाना नहीं चाहता हूँ।

मैं तुम्हें ये वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ पुत्रों! परिचय देने के लिए। मैं व्याखाता नहीं हूँ। मैं बेटा! बुद्धिमान भी नहीं हूँ। क्योंकि मैं परमात्मा के समीप जाने के लिए उत्सुक हूँ। परन्तु मैं तो केवल परिचय देने के लिए आता हूँ। पुत्रो! केवल ब्रह्म की आभा का परिचय देने के लिए आया हूँ।

आओ मेरे प्यारे! देखो,। परिचय के स्वीकार करने वाले बनो! मानव को कर्त्तव्य वादी बनना चाहिए। और आलस्य और प्रमाद मानव के जीवन में नहीं आना चाहिए। आलस्य प्रमाद आ गया तो बेटा! देखो,! संसार में अंधकार आ जाएगा मुनिवरों! देखो, तुम्हें स्मरण होगा राजा जनक का जीवन।

राजा जनक के राष्ट्र में जब कृषकों को आलस्य, प्रमाद आ गया था, तो राजा जनक ने स्वयं दो वृषभों को लेकर के इस माता वसुन्धरा के गर्भ में स्वर्ण के हल से अन्न को उत्पन्न किया था और राष्ट्र का अनुकरण समाज कर रहा था। आलस्य समाप्त हो गया। देखो, वैश्यों ने उनका अनुकरण किया।

तो मेरे प्यारे! विचार यह कि हमारे यहाँ आलस्य और प्रमाद नहीं रहना चाहिए। आलस्य और प्रमादी ही मेरे प्यारे! विज्ञान का दुरूपयोग करता हैं कर्तव्य वादी ही विज्ञान का सुदपयोग करता है, जिससे राष्ट्र, और समाज को अच्छा बनाता है।

यह है बेटा! आज का वाक्! आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः हमारा क्या है? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, माता वसुन्धरा की आराधना करते हुए, हम इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। बेटा! ज्ञान, कर्म, उपासना के द्वारा हम पार होना चाहते हैं।

आज मैं विज्ञान की वार्त्ता क्या? मैं विज्ञान का विरोधी नहीं हूँ। केवल भौतिक वाद नहीं होना चाहिए। भौतिक विज्ञान होना चाहिए परन्तु भौतिक वाद के साथ आध्यात्मिक विज्ञान भी होना चाहिए जिससे दोनों का समन्वय हो करके और हम दोनों प्रकार के

विज्ञान को जान करके अपनी ऊर्ध्व गति करें।

यह है बेटा! आज का वाक्। इसके उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि हे माता! तुझे वेद ने वसुन्धरा कहा है। तू वसुन्धरा बन करके इस संसार को ऊँचा बना दे। आओ! मेरे प्यारे! आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमदेव! आनन्द मय महामना देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस सागर से पार हो जाए। यह मान और अपमान वाला जो संसार रूपी सागर है इस सागर से पार होना है। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। उसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। अच्छा भगवन्! आज्ञा, स्थान : रामतलाई आश्रम, भादरा

१२ 04 09 1979 पुष्प 35 यजुर्वेद पारायण याग की पूर्णाहुति पर दिया गया प्रवचन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है।

कई काल में हमने वर्णन करते हुए कहा था कि प्रत्येक मानव का जीवन उस परमपिता परमात्मा के ऋृत और सत् से कटिबद्ध हो रहा है। कोई भी प्राणी हो वह पर्वतों की कन्दराओं में रमण करने वाला हो, वह राजस्थली पर हो, विज्ञानशाला में हो, यौगिक क्षेत्रों में हो, वह मानव उस परमात्मा के ऋृत और सत् से कटिबद्ध होता रहता है। तो इसलिए प्रत्येक प्राणी मात्र को यह विचारना है कि जिस ज्योति में रमण करना चाहते हैं। हम उस ज्योति को दृष्टिपात करना चाहते हैं। जिस ज्योत के लिए परम्परा से ही मानव अनुसन्धान करता चला आया है और अपने मानवीय जीवन की आहुति देता चला आया है। तो विचार विनिमय करना है कि जिस ज्योति के लिए मानो इतना प्रसार, इतना अनुसन्धान कि राजा अपने राष्ट्र को त्याग देता है। गृही अपनी ममता को

त्याग करके गमन करता है। मेरे पुत्रों! उस ज्योति को पाने के लिए गमन करता है, जिस ज्योति से हमारा जीवन कटिबद्ध हो रहा है। अथवा जिससे उसका समन्वयं हो रहा है। आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि हमारे प्रत्येक वाक्य अधूरेपन में रह जाते हैं।

यमाचार्य का वाक्य मानो मध्य में ही है। विचार विनिमय होता रहता है, अनुसन्धान होता रहता है। मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी प्रेरणा देते रहते हैं, प्रेरणा का जो द्योतक है प्रेरणा की जो मानवीय तरंगें हैं, वह मानव के हृदय को छूती रहती हैं। हमारे हृदय को भी छूती रहती हैं, अथवा स्पर्श करती हैं। प्रेरणा क्या, यज्ञ गृहे वृत देवा मानो देखो, याग के सम्बन्ध में अपना कोई विचार प्रकट करें। कई कालों से यह वाक्य प्रकट करते चले आए हैं कि मानव का जीवन यागमय होना चाहिए, मानव के जीवन में याग सर्वोपरि है। हमने इससे पूर्व काल में यागों की चर्चाएं कीं और यज्ञों की चर्चा करते हुए कहा था कि मानव के जीवन में एक सार्थक सार होना चाहिए। जिस मानव के जीवन में कोई सार नहीं होता, तपस्या नहीं होती, मेरे प्यारे! वह मानव अपनी मानवता से वंचित्त रह जाता है। मानवशीलता से वंचित्त रह जाता है। तो वेद का ऋषि यह कहता रहता है कि यज्ञमान, तू अपनी मानवता को ऊँचा बना। जहाँ तू बाह्य जगत् को सुगन्धि देता है वहाँ तेरे आन्तरिक जगत् में भी सुगन्धि होनी चाहिए। वह जो आन्तरिक जगत् और बाह्य जगत् दोनों का जब समन्वय करता है तो तू वैज्ञानिक बन जाता है।

मुझे वह काल स्मरण है पुत्रो, महर्षि भारद्वाज अपनी यज्ञशाला में विराजमान हैं ब्रह्मचारी सुकेता और कबन्धी उसके द्वार पर और देवर्षि नारद मुनि भी आ पहुंचे। देवर्षि नारद मुनि का प्रश्न करने का स्वभाव था। नारद मुनि ने यह प्रश्न किया कि महाराज! यह तुम क्या कर रहे हो? वृत्यां देवाः महर्षि याज्ञवलक्य मुनि के आश्रम में पहुंचे, तो उस ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि महाराज! यह क्या कर रहे हो? याज्ञवलक्य मुनि महाराज कहते हैं कि मैं याग कर रहा हूँ। उन्होंने कहा तुम याग क्यों कर रहे हो? मैं एक पौधे को सींचने जा रहा हूँ। मैं एक पौधे को सींचना चाहता हूँ और उस पौधें को पृथ्वी में, द्यु लोकों में और लोक लोकान्तरों में उनकी तरंगें पहुंचाना चाहता हूँ। तो ऋषि ने कितने

व्यापक शब्दों में इस वाक्य को कहा परन्तु ऋषि नारद जी कहते हैं कि महाराज! यह याग वृक्ष कैसे है? इसको आप कैसे पहुंचाओगे। क्योंकि महर्षि भारद्वाज ब्रह्मवेत्ता थे। इतने में वे महर्षि भारद्वाज भी आ पहुंचे उसी आश्रम में। याज्ञवल्कय मुनि महाराज और ऋषि भारद्वाज ब्रह्मचारी सुकेता देवर्षि नारद। जब इन ऋषियों का विचार विनिमय होने लगा तो महर्षि याज्ञवलक्य कहते हैं कि मैं अपने याग रूपी वृक्ष को अपने में सींचना चाहता हूँ। तो मुनिवरों! यह वाक्य तो बहुत प्रिय था और व्यापक था। परन्तु नारद जी ने पुनः प्रश्न किया कि हमें व्यापक रूप से इसका सर्व रूप प्रगट कीजिए। याज्ञवलक्य मुनि बोले कि व्यापक इसका जो स्वरूप है वह यह है कि यज्ञशाला में हम याग करते हैं। अग्नि और साकल्य की आहुति देते हैं। नाना प्रकार की वनस्पतियों को एकत्रित करके वह अग्न्याधान करते हैं। क्योंकि अग्नि देवताओं का दूत है, जितने देवता हैं वे सब प्रसन्न होते हैं, जब वे प्रसन्न होते हैं तो उनका पञ्चीकरण हो जाता है। पञ्चीकरण में जितने भी वे प्रसन्न होंगे, जितनी उनमें शुद्धता होगी, पवित्रता होगी उतना उनको जानना हमारे लिए सहज होगा। हम उनको अच्छी प्रकार जान सकते हैं। याग एक बिन्दु है। उस बिन्दु में से एक मार्ग तो आध्यात्मिक मार्ग को चला जाता है और एक मार्ग भौतिक विज्ञान को चला जाता है। परन्तु या यूं उच्चारण कर लीजिए कि दोनों मार्ग एक ही केन्द्र से होकर जाते हैं। भौतिकवाद के मार्ग से होते हुए जहाँ भौतिकवाद समाप्त हो जाता है वहाँ आध्यात्मिकवाद शुरू हो जाता है।

तो यह ऋषि ने बहुत व्यापक रूपों से प्रगट करते हुए कहा। परन्तु यह वाक्य तो बहुत ही प्रिय था। परन्तु ऋषि ने जब यह कहा तो नारद जी कहते हैं कि महाराज! इसका और व्यापक स्वरूप प्रगट कीजिए। उस समय वेद के ऋषि याज्ञवलक्य मुनि कहते हैं कि वह याग जब हम करते हैं तो उसमें हम स्वाहा कहते है। स्वाहा कह करके साकल्य अग्नि में प्रदान कर देते हैं। तो उसमें से वह जो सुगन्धि है, साकल्य है, वह अपने स्थूल स्वरूप को अग्नि में प्रदान कर देता है। और अग्नि उसको भस्मीभूत कर देती है। उसमें से जो सूक्ष्म अथवा औषधियों का जो रूपान्तर होता है, सूक्ष्म स्वरूप बनता है, वह तरंगों में परणित हो जाता है। उन तरंगों में यज्ञमान की भावना होती है। ब्रह्मा जो

भावनायुक्त हो करके वेद का शोधन कर रहा है। उदात्ता जो वेदों का गान गा रहा है, वह गान ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्यु होता जनों की जो विचारों की तरंगें होती हैं वे वायुमण्डल में परणित हो जाती है। , मिश्रित हो जाती हैं। जब वायुमण्डल में तरंगें मिश्रित हो जाती हैं, तो हम उससे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता एक विज्ञानशाला का निर्माण करते हैं। देखो, उसमें कितने प्रकार के साकल्य होते हैं। यज्ञशाला में यज्ञ के साकल्य में तो स्वर्ण की धातुओं का मिश्रण भी होता है। जितने भी पदार्थ होते हैं मानो देखो, जैसे जितनी भी पुष्टिकारक औषधिएं हैं, जितनी भी प्राणवायु वर्धक हैं वनस्पतियों का उसमें आदान प्रदान किया जाता है तो वही सूक्ष्म स्वरूप बन करके वायुमण्डल में मिश्रित हो जाता है। और वायुमण्डल से हम प्रवृत देवः, यज्ञमान का जो विमान है यज्ञमान का जो क्षेत्रीय याग है वह याग स्रोत बन करके वह देवताओं के मार्ग से होता हुआ लोक में, अन्तरिक्ष लोक में विमान बन करके ओत प्रोत हो जाता है। क्योंकि वेद का ऋषि कहता है यह जो शब्द है अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाता है। ओत प्रोत हो करके तरंगों के रूप में अन्तरिक्ष में यज्ञशाला का स्वरूप यज्ञशाला का एक मनोवृत्त उसमें ओत प्रोत हुआ तरंगों में तरंगित रहता है। और यज्ञमान का, होताजनों का चित्र भी होता है। यज्ञशाला जिन साकल्यों से जिसका निर्माण किया है, मैंने पूर्वकाल में भी वर्णन किया है उसका भी चित्र द्युलोक तक चला जाता है। जब वह चित्र चला जाता है तो उसकी चित्रावलियों में एक मनोनीतता ओत प्रोत हो जाती है, एक महत्ता ओत प्रोत हो जाती है, जिसको प्रत्येक मानव अपने में धारण करने लगता है।

तरंगों को अपने में धारण करता हुआ वह मनोनीतता से विचारता है। उन तरंगों का, उन परमाणुओं का विभाजन करता है। तो जो वह विभाजन कर लेता है मानो देखो, एक अणु से परमाणु दूसरे परमराणु से मिलान करता है। कहीं परमाणुओं से शक्तिशाली जो औषध है साकल्य है, अग्नि ने जिसका रूपान्तर कर दिया है उसके स्वरूप को वह परिवर्तित करता है। वैज्ञानिक अपनी विज्ञानशाला में उन तरंगों को अपने में ग्रहण करता है और ग्रहण करके उसमें से नाना यन्त्रों का निर्माण करने लगता है। जब यन्त्रों का निर्माण हो जाता है तो वैज्ञानिक यह विचारता, यह उड़ान उड़ता रहता है उनके

द्वारा वह कहीं सूर्य मण्डल की यात्रा करता है। कहीं उन्हीं तरंगों को ले करके वह मंगल में चला जाता है। कहीं वह शुक्र में गति करने लगता है। नानात्तोक लोकान्तरों के प्राणीमात्र की आवास, आदान प्रदान को वह जानने लगता है। मुनिवरों! उसमें जानकारी द्वारा गति करने लगता है। क्योंकि वह अनुभय का विषय नहीं, प्रत्यक्षवाद का विषय बन जाता है। परन्तु उसके पशत् जब यह उड़ान उड़ता रहता है तो एक काल वह आता है जब वह थकित हो जाता है। यह भौतिक विज्ञानवेत्ता थकित हो जाता है। शरीरों को त्याग देता है। पुनः उसका अन्तरात्मा उसी अभिलाषा में उसी योनि को वैज्ञानिकता प्राप्त करता है। परन्तु देखो,! अनुसन्धान अन्वेषण करता रहता है। अन्वेषण करता हुआ इतना उज्ज्वल अन्वेषण करता है कि वह यहाँ से उड़ान उड़ता है, नाना लोकों की उड़ान उड़ने में तत्पर हो जाता है। अन्त में जब इसकी चरम सीमा पर चला जाता है।

विचार यह कि मेघावी का जो केन्द्र है, मेघावी का जो क्षेत्र है वह समाप्त हो जाता है। परन्तु देखो, मेघा, ऋतम्भरा के क्षेत्र में गमन करता है। वैज्ञानिक याग्यवलक्य मुनि कहते हैं हे ब्रह्मचारियो, हे ऋषियो, हे विदुषियो! देखो, उस काल में यह याज्ञिक जो बना हुआ है वह याज्ञिक बन करके आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करता है। उसकी उड़ान में कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता, इतना परमाणुवाद है, इतना प्रकृति का क्षेत्र है, लोक लोकान्तरों का मण्डल है जिनकी कि वह गणना भी नहीं कर सकता। मेरे पुत्रो! वेद का ऋषि यह कहता रहता है कि परमाणुओं का अनुसन्धान करते तो बहुत सी निहारिकाएं हैं।

जिसमें जाने में ही कल्प का कल्प समाप्त हो जाता है। ब्रह्मा का दिवस समाप्त हो जाता है। उस दिवस में उस निहारिका का प्रकाश पृथ्वी मण्डल पर भी नहीं आ पाता। मेरे पुत्रो! प्रभु के इस विज्ञान को उच्चारण करने के लिए वाणी थकित हो जाती है। मेरे पुत्रो! मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते रहते हैं कि याग के सम्बन्ध में कुछ विचार दिया जाए। तो याग कैसा सूक्ष्मतम, कैसा रहस्यमय वस्तु है।

मेरे पुत्रो, जब यजकान का विमान बन करके अन्तरिक्ष में जाता है तो वहाँ से एक मार्ग

भौतिकवाद का है, जिसको समापन करके वह आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करता है। आध्यात्मिक मार्ग किसे कहते हैं? मृत्यु क्या है प्रत्येक मानव की यह आकांक्षा बनी रहती ह कि मृत्यु किसे कहते हैं? मेरे पुत्रो, मृत्यु के सम्बन्ध में वह आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता अपनी अन्तरात्मा के ऊपर अन्वेषण करता है। मनस्तत्व के ऊपर मनन करता है, प्राणतत्व के ऊपर अनुसन्धान करता है। मानो जब इनके ऊपर अनुसन्धान करता रहता है तो वह काल आता है जब इसे मृत्यु के अस्तित्व की प्रतीति होने लगती है। वेद का वही ऋषि कहता है भौतिक वैज्ञानिक मनोआध्यात्मिकता में प्रवेश करके कहता है, कि ज्ञान किसे कहते हैं? संसार का ज्ञान हो गया, प्रकृतिवाद का ज्ञान हो गया। अब वह आन्तरिक जगत् के ज्ञान के क्षेत्र में जाता है। सबसे प्रथम स्थूल जगत् का ज्ञान हो गया। परमाणुवाद से इसका निर्माण हुआ था। परमाणुवाद का विच्छेद हो गया। तो इसकी विकृतता हो गईं मुनिवरों! वह क्या है? उसको हम क्या उच्चारण कर सकते हैं? भूः भुवः वृतदेवः, मेरे प्यारे! वह वृत देव है तो वह प्रकृति वाद है। परन्तु सूक्ष्म प्रकृति के मण्डल में पहुंचेंगे। तो पांचों का पञ्चीकरण जो है, वह होता रहता है। या उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। परन्तु जब और भी पञ्चीकरण की तन्मात्रा में पहुंचेंगी। तो उसको कारण या लिंग कहते हैं। उस कारण या लिंग में विराजमान होने वाली जो चेतना है चेतना का उस चेतना से जब समन्वय हो जाता है तो यह जो प्रकृतिवाद है इसका मानव से विच्छेद हो जाता है। प्रकृति का सर्वत्र ज्ञान सत् में ॠत में दोनों में ज्ञान हो करके मोक्ष के आनन्द को मानव प्राप्त करता रहता है। वह जब करता रहता है तो वहाँ मृत्यु होती ही नहीं। वहाँ मृत्यु का अभाव हो जाता है। क्योंकि वहाँ तो प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है। क्यों वह जान लेता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल का क्या अस्तित्व है? स्थूल का भी सूक्ष्मान्तर हो जाता है। जैसे प्रलयकाल में प्रकृति का रूपान्तर हो जाता है। इसी प्रकार उसका रूपान्तर हो जाता है। नष्ट नहीं होती कोई वस्तु। मानो इस पञ्चीकरण में ये तरंगें हैं। वह सब ओत प्रोत हैं। वह कारण लिंग जानने वाला जो सूक्ष्म शरीर वाला है। स्थूल शरीर की मानो सूक्ष्म तरंगें बन करके द्यु लोक में प्रवेश हो गईं अन्तरिक्ष में प्रवेश हो गई हैं। तो वह किसी किसी काल में अपने उस स्वरूप को

भी दृष्टिपात करता रहता है। वे शब्दों के साथ में चित्र अन्तरिक्ष में चले गए। वह जो द्यु लोक में प्रवेश हो गए। वह जो विमान बन गया। यज्ञमान का अपनी पत्नि के सहित उसका भी किसी किसी काल में बेटा! वह दिग्दर्शन कर लेता है। मेरे प्यारे! में बहुत गम्भीरतम रहस्य में चला गया हूँ। मेरे प्यारे! महानन्द जी को भी दो शब्द उच्चारण करने थे परन्तु वेद का विषय इतना गम्भीर है, इतना महान् है कि इस में क्षुधा समाप्त ही नहीं होती। उच्चारण करने की जो महत्ता है, प्रभु का जो गुणगान गाना है, यह ऐसा अनुपम है, इसमें मानव को क्षुधा तथा पिपासा ही लगी रहती है। परन्तु विचार क्या वह जो सूक्ष्म शरीर है वह मेरे प्यरो देखो, स्थूल और सूक्ष्म दोनों की आभा में परणित हो जाता है। और परणित होकर के वहाँ जब मृत्यु का अभाव हो जाता है तो मानवता के जीवन में प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। तो प्रकाश किसे कहते हैं? वेद को। विवेक किसे कहते हैं जो प्रकृतिवाद से मानव उदासीन हो जाता है।

प्रकृतिवाद से कौन उदासीन होता है पुत्रो, जो भौतिकवाद के मार्ग से होता हुआ आध्यात्मिकवाद के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है, परमाणुवाद की चरम सीमा को जान करके लोक लोकान्तरों को व्यापक रूप दे करके आकुंचन कर देता है। आकुंचन करके अपने अन्तरात्मा हृदय में उसका दिग्दर्शन करने लगता है। मेरे पूज्यपाद इसका दर्शन करते रहते थे। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत होता रहता था, नतमस्तक होता था तो वह वार्त्ता किसी किसी काल में प्रगट करते थे। आज मैं विशेषता देने नहीं आया हूँ। केवल वाक्य यह कि माना ेदेखो, वह दिग्दर्शन करता है। उस ज्योतिर्मय की ज्योति के लिए परम्परा से मानव परिश्रम करता चला आया हैं उस ज्योति का वह अनुभव करता ह। ै प्रसारण नहीं कर सकता। आकुंचन करके उसको अन्तरात्मा में दृष्टिपात तो कर सकता है। पर वाणी से उच्चारण करने के लिए असंभव बन जाता है। क्योंकि वह उसकी अपार ज्योति है। तो आओ मेरे पुत्रों! आज का विचार विनिमय क्या है? आज का वेद का ऋषि यह कहता है, वेद का मन्त्र क्या कहता है कि हम वास्तव में अनुपम ज्योति को जानने का प्रयास करें। अब मेरे प्यारे! मैं यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत ऊँची उड़ान उड़ रहा था। देखो, एक वैज्ञानिक अपनी यज्ञशाला में यज्ञ

कर रहा है। रूपान्तर में विज्ञानशाला का निर्माण हो रहा है और उसके रूपान्तर में विवेकशाला का निर्माण हो रहा है। उसके विवेक में मुनिवरों! देखो,! चेतना को, ज्ञान को, प्रकाश को ज्योति को, जानने का ज्योतिशाला का निर्माण हो रहा है। तो मुनिवरों! देखो,! यह सब एक महान् प्रकाश है। अनुपम ज्योति है। जिस ज्योति को जान करके मानव का जीवन ऊँचा और महान् बनता है। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्दों की विवेचना कर सकेंगे।

ओं ज्ञानी वृतं देवः यौ यंचमाः दुरितांह बवृप याचाम् देवम् ब्राह्मणों वृतेः लोकः यश्चंम् ब्राह्मणाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपनी कैसी उड़ान उड़ रहे थे। जिस उड़ान को उड़ने के लिए मानव सदियों से लालायित रहा है और विचार विनिमय करता रहा है कि मैं आध्यात्मिक उड़ान उड़ने लगूं। और मैं यदि इन वाक्यों की पुनरुक्ति करने लगूं अथवा पूज्यपाद गुरुदेव के समीप कोई वाक्य उच्चारण करना ऐसा है मानो एक वृत्त होता है एक सूर्य होता है। मैं दोनां की कल्पना कर सकता हूँ मगर दोनों की कल्पनार मानो हम उनके समीप एक सूक्ष्म से प्रकाश के तुल्य हैं। परन्तु जो हमें मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कुछ समय के पश्चात् अमूल्य समय प्रदान किया उसके लिए मैं सदैव आभारी रहता हूँ और उनके लिए अपनी वाणी में कोई शब्द ऐसा नहीं है जो उस शब्दों से मैं प्रशंसा कर सकूंगा। परन्तु आज का जो हमारा वाक्य है वह क्या कह रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने याग के सम्बन्ध में जो उड़ान उड़ी है ऋषि मुनियां के विचार विनिमय अथवा उनकी विचारधारा का जो प्रदर्शन किया है वह उच्चारण करने के सुयोग्य नहीं है। और भी ऊँची उड़ान उड़ी जा सकती है। परन्तु आज इस भौतिक काल में, जब कि हमारी यह आकाशवाणी मृत मण्डल में प्रवेश कर रही है। उच्चारण क्या मैं अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा याग की प्रथमा, याग को दृष्टिपात कर रहा हूँ। बहुत पुरातन काल की वार्त्ता जब स्मरण आने लगती है तो नाना प्रकार के यागों में परणित होने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मानवीय जो संस्कार होते हैं प्रानवीय जो विचारधारा होती है वह यागों में परणित रहती है। परन्तु मैं आज ब्राह्मणों वृत्त देवाः, हे ब्राह्मण तेरी वाणी में जो वेद की आभा, वेद का रस उस मेरे देव ने, उस मेरे यज्ञमय स्वरूप ने परणित कर दिया है

उसका धन्यवाद है। हे ब्राह्मण तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहना चाहिए। क्योंकि जिससे वैदिकता का प्रसार होता रहें इस समाज में, इस अभाव में जहाँ नाना प्रकार की रूढ़ियां अपने अपने स्थलों पर विद्यमान हैं। जहाँ रूढ़ियों का प्रदर्शन हो रहा हो मानो देखो, ऐसे काल में वैदिकता की परम्परा प्रकाशमय जीवन को प्रकट करना भी साहस का कार्य है। वेद प्रकाश को कहते हैं। वेद किसी की सम्पदा नहीं है। कोई मानव यह उच्चारण करने लगे कि यह रूढ़ि है। वेद का रूढित्र नहीं कहते। हे ब्रह्मण! तेरी उद्गारता तरंगों को शोधन करने वाली बने। परन्तु आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य प्रगट कराना चाहता हूँ। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों की चर्चाएं की हैं। आज का जो मानव समाज है आज का जो भौतिकवादी प्राणी है वह यह चाहता रहता है कि मनस्तव वृहे वतः। , वह मन से आगे कोई वार्त्ता को दृष्टिपात करना नहीं चाहता। वह कहता है कि यह मन ही है संसार का विभक्त करने वाला और यह जो प्रकृति का जो स्वभाव है इसमें मन्तव्य रहता है। परन्तु यह माना जाता है इसमें मानो द्वितीय ऋषियों का भी यही मन्तव्य रहता है। ऋषि मुनि भी इसी मन्तव्य के रहते हैं परन्तु जहाँ मैं इस वाक्य को उच्चारण करूं वहाँ यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। गृह में सदैव वैदिकता का प्रसार और द्रव्य का सुदपयोग होता रहे। अरे, मानव! अब तक अपने जीवन में द्रव्य का दुरूपयोग किया है। अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम सदुपयोग में लगे चले जाओ। तुम्हारे जीवन का अखण्ड सौभाग्य इसी काल में बन सकता है जब तुम त्तव्य का सदैव सदुपयोग करते हो। क्योंकि दुरूपयोग करना यह मानव का कर्त्तव्य नहीं। मानव तो सदैव सत्यता के लिए आया है। सत्यमय जीवन बनाने के लिए आया है। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नित्य प्रगट करते रहते हैं। यह नाना प्रकार की वार्त्ता प्रगट करते रहते हैं। हे यज्ञमान! तेरे जीवन की धारा मानवता में परिवर्तित होनी चाहिए। यदि लक्ष्मी का तू सदुपयोग करेगा तो लक्ष्मी तेरे गृह में प्रवेश हो जाएगी। लक्ष्मी मां है। मां का दुरूपयोग करना यह पुत्र के लिए दुर्भाग्य है। जब इसी प्रकार द्रव्य का जो भी मानव सदुपयोग करता है। सदुपयोग करके शब्द में रमण करता है तो मां उसे अपने कण्ठ में

धारणा कर लेती है। जैसे माता का प्रिय बालक है, माता का पुत्र जब माता को दुरित देने लगता है तो माता उस बालक को मानो आज्ञाकारी स्वीकार नहीं करती। परन्तु देखो, जब माता की आज्ञा का पालन पुत्र करता है तो माता अपनी प्रीति की सर्वत्रता को उसे न्यौछावर कर देती है। इसी प्रकार यह द्रव्य तो प्रभु! का है जिसका दुरूपयोग किया जाता है वह द्रव्य तो प्रभु! का है। मानो यह किसी की सम्पदा नहीं है। यह तो मानव के लिए व्यापार के लिए, उसका सदुपयोग करने के लिए उसका पूजन करने के लिए है। तो पूजन का अभिप्राय क्या है।

मैंने कई काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न किया था कि पूजा किसे कहते हैं? पूजा का अर्थ त्त उसका सदुपयोग करना। उसको सत्य में लगाना यही उसका सदुपयोग माना जाता है। वह द्रव्य बृहे लक्ष्मभ्, वह स्त्री है, पोषगामसी है। वही ओढ़ना है वही निचला स्थल है। मानो वही लक्ष्मी वही मां है अपनी लोरियों का पान करा देती है। वह लोरी क्या है? मानो उसमें से जो तरंगें उसकी जो आभा है उसको जो धारणा करता है वह तरंगित हो जाता है। महान् बन जाता है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। द्रव्य की आभा में रमण करते हुए तुम सदुपयोग की आभा की ओर देखो, उसी में रमण करने की आकांक्षा प्रगट कर। क्योंकि यही तेरा जीवन है यही तेरी मानवता मानी जाती है।

आज जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। पूज्यपाद वहाँ वेदों का याग हो रहा था, होताजन अपनी उद्गमता से, उदारता से आहुति प्रदान कर रहे थे। मेरा हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा था। मेरा अन्तरात्मा कैसा प्रसन्न हो रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं ब्रह्मा की स्थली पर विराजमान हूँ। उसी प्रकार जहाँ शुद्ध हृदय से संकल्प से मानो अपवाद को त्याग करके और देखो, पति पत्नी गम्भीर हो करके गम्भीर मुद्रा में प्रवेश करके, आत्मीयता से याग करते तो सौभाग्य की ही चर्चा है। वह तो सौभाग्य ही सौभाग्य है तो इसीलिए आज का हमारा विचार आज का हमारा वेद का ऋषि आज का हमारा वाक्य यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और याग जैसे उत्तम कर्मों को रचाते रहें क्योंकि इसमें वायुमण्डल शोधन

होता है। इससे तुम्हारा विमान बन करके अन्तरिक्ष को चला जाता है। वह स्वाहा के साथ में तुम्हारा यज्ञशाला का, यज्ञमान का विमान है, और विमान यह द्यु लोक को चला जाता है। इसके विज्ञान की चर्चाएं तो मेरे प्रभु मेरे पूज्यपाद बारम्बार, आज भी प्रगट कर रहे हैं। इससे पूर्व काल में भी कर रहे थे। इसी प्रकार करते रहते हैं, विचार देते रहते हैं। मैं भी उन विचारों की कुछ टिप्पणियां करने चला जाता है।

टिप्पणियां क्या हैं? मानो देखो, आज का यह वाक्य कि विज्ञान क्या कहता है? आज का विज्ञान कहता है कि प्रत्यक्षवाद होना चाहिए। आज का विज्ञान यह कहता है कि मंगल में प्राणियों का अभाव हो गया है। परन्तु देखो, इस मंगल में बहुत पुरातन काल में मैंने कहा था कि वहाँ प्राणी हैं और वे प्राणी इस पृथ्वी मण्डल पर आते हैं और प्राणी आ करके जहाँ से चित्र लेकर के वह अपने मंगल मण्डल को प्राप्त हो जाते हैं। आज का प्राणी आज का इस पृथ्वी मण्डल का जो प्राणी है उन वैज्ञानिकों को दृष्टिपात भी नहीं कर सका। मानो देखो, वह कहीं कहीं समुद्रों की तरंगों में वह भस्म हो गया। मृतक बन गया। परन्तु देखो, उसका यान समुद्रों की तरंगों में आभायित हो गया। उसका यन्त्र अवृत हो गया। परन्तु मैं उस सम्बन्ध में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ केवल उच्चारण करना यह कि वहाँ का प्राणी इस पृथ्वी पर आता है। यहाँ का प्राणी अभी गया नहीं, परन्तु अभी तो उसका यान जा रहा है। यान से यह अनुमान अनुमानित हो रहा है। परन्तु अनुमान में कुछ संशय रहती है। जब प्राणी वहाँ प्रवेश करेगा, प्राणी वहाँ पहुंचेगा तो उन्हें देखो, राष्ट्रीयता प्राप्त होगी। और ऐसी राष्ट्रीयता नहीं जैसी आधुनिक वर्तमान काल की राष्ट्रीयता इस पृथ्वी मण्डल पर है। एक दूसरा राष्ट्र एक दूसरे को नष्ट करने के लिए तत्पर विराजमान है। एक राजा मानो अपनी प्रजा को अपने में ग्रहण करने के लिए तत्पर है। इसी प्रकार एक राजा है वह अपनी प्रजा को नहीं चाहता। मानो प्रजा के वैभव को संग्रह करके अपने में आनन्दित होना चाहता है। परन्तु ऐसा राष्ट्र नहीं। वह राष्ट्र ऐसा है जहाँ वैज्ञानिक यन्त्रों की आभा है जहाँ राष्ट्र विज्ञान की तरंगों में प्रजा को सुखद देने वाला है। किसी प्रकार विज्ञान का कुछ दुरूपयोग नहीं हुआ है। आधुनिक काल में इस पृथ्वी मण्डल पर देखो, विज्ञान का दुरूपयोग कैसे होने लगा

है। जहाँ जिस राजा के राष्ट्र में जिस समाज में जिस राजा को वह आभा लग जाती है कि मेरे द्वारा द्रव्य होना चाहिए। द्रव्य की मानो आह आ जाती है। वह राष्ट्र किसी भी काल में उत्तम नहीं बनेगा। क्योंकि द्रव्य वाद जो राष्ट्र होता है वह राष्ट्र नहीं होता। कर्तव्य वादी राष्ट्र होता है। कर्तव्यवाद जिसके द्वारा होता है वह राष्ट्र को ऊँचा बनाता है। परन्तु देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। वह पृथ्वी मण्डल का काल था जहां मैं आकाशवाणी का इतना प्रसारण कर रहा हूँ मानो देखो, राजों की चर्चा उनके वैज्ञानिक की चर्चा कर रहा हूँ। माहम ब्रहे वृत्त देवाः, देखो, महाराज अश्वपति ने वैज्ञानिकों से यह कहा कि मानव के आहार की तुलना करो। जब आहार की तुलना होने लगी तो ऋषियोत्तने और सुधनवा इत्यादि वैज्ञानिकों ने यह कहा कि हमारे विचार में तो प्राणी की हिंसा पर प्राणी को प्रहार करना क्योंकि परमात्मा ने जितने भी कीट पतंग योनियां प्रदान की हैं वे मानव के राष्ट्र की सम्पदा हैं।

परमात्मा की सम्पदा है और राष्ट्र की सम्पदा है इसलिए क्योंकि प्राणीमात्र को यह सुख देते हैं। जितने भी प्राणी हैं वे एक दूसरे के विष को निगलते हैं। एक दूसरे के विष को पान करते हैं। प्रायः वह एक दूसरे प्राणी का भक्षण करने वाले हैं। परन्तु उसके पश्चात् भी वह प्राणी के लिए जिसका जो आहार होता है वह उसी का आहार उसी के लिए लाभप्रद होता है। राष्ट्रीयता का आहार यह नहीं होता कि हम दूसरे प्राणी को अस्त्रों शस्त्रों से प्रहार करें। अपना भोज्य पदार्थ बना लें। यह भोज्य पदार्थ बनाना इसी प्रकार मानव के लिए हीनता है, राष्ट्र के लिए भी हीनता है, अहाः इसी प्रकार इसमें तमोगुण ही तमोगुण की तरंगें मानव को छाती रहती हैं। जब मानव को आगे चल करके छूती हैं तो मानव की आभा में हम नहीं पहुंच पाते। वह मानव जो इस प्रकार के आहार विहार में परणित हो जाता है वह तमोगुण में रमण करता हुआ राष्ट्र में विज्ञान का दुरूपयोग करता है। यन्त्रों में जहाँ ऋषियों मुनियों के चित्र आने चाहिएं थे वहाँ मेरी पुत्रियों के नग्न चित्रों को दृष्टिपात करते हैं। उनको दृष्टिपात क्यों करते हैं? क्योंकि राष्ट्र को द्रव्य आता है। राष्ट्र तो इसलिए प्रसन्न है कि द्रव्य आ गया। प्रजा इसलिए प्रसन्न है कि वह कहती है कि हमारा मनोरंजन होता है। मेरे भोले प्राणियों इस मन को कहीं

भी लगा दिया जाए वहीं यह प्रसन्न रहता है यह आध्यात्मिकवाद में भी प्रसन्न है। ऋषियों मुनियों के चरित्र में भी प्रसन्न है। परन्तु जहाँ नृत्य होते हैं वहाँ भी प्रसन्न हो करके तमोगुण छा करके राष्ट्र की मानवीय चरित्र और आभा को समाप्त कर देता है।

अरे, उस मानव के द्वारा भी कुछ रह जाता है, जिस मानव का चरित्र और मानवता चली जाती है? क्या उस राजा के राष्ट्र का भी अस्तित्व रह जाता है, जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियां नग्न नृत्य करके अपने उदर की पूर्ति करती हैं? क्या वह राष्ट्र रह जाता है? तो हमें यह विचारना है कि अपनी राष्ट्रीयता को ऊँचा बनाने के लिए प्रत्येक प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। भगवान मनु ने मानो मछली से लेकर के सब प्राणियों की रक्षा करने के लिए घोषणा की है। आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा अपने गुरुदेव को प्रगट कराना नहीं चाहता। जब राजा द्रव्य पति होना चाहता है, द्रव्य चाहता है, प्रजा के वैभव को संग्रह करना चाहता है, उस काल में उन तथ्यों पर पहुंच जाते हैं कि विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव घोषणा करते रहते हैं कि जब विज्ञान का दुरूपयोग होने लगता है वही काल भयंकर होता है। वह एक मानव मानव का भक्षक होता है और वह जब भक्षक हो जाता है तो ऐसे ऐसे यन्त्रों का निर्माण हो जाता है और उससे मानव का चरित्र समापन हो जाता है।

आज प्रत्येक मानव यह चाहता है कि प्राणी मात्र में स्नेह हो और यह स्नेह कैसे हो? स्नेह नहीं हो सकता, जबकि मानवीय पद्धति ऊँची नहीं बनेगी। जब तक मानव का विचार ऊँचा नहीं बनेगा। जब तक मानव में आध्यात्मिक वाद भौतिक विज्ञान दोनों का समन्वय नहीं होगा। तब तक इस समाज को, संसार को राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकते क्योंकि ऊँचा उसी काल में बनेगा जब विचारक प्राणी विचारेंगे कि हमारी मानवीय पद्धति क्या है? हमारे रहन सहन की पद्धति क्या है? इनके ऊपर जब तक चिन्तन नहीं होगा तब तक मानव न तो ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है, न वह सदाचारी बन सकता है। वह वातावरण की तरंगों में तरंगित होता हुआ अपने मानवत्व को समाप्त करता रहता है। इसी प्रकार मेरी पुत्री मानो श्रृङ्गार में लगी हुई है। श्रृंगारों में नाना प्रकार के आभूषणों को युक्त कर देती है और सौंदर्य केवल वस्तु में रह गया, आभूषणों

में रह गया। परन्तु जब मैं माता से यह प्रश्न कर रहा हूँ कि माता यह तो तेरा आभूषण नहीं है। मानो वह आभूषण को जानती ही नहीं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कौशल्या के आभूषण को चर्चा कर रहे थे, मंदालसा के आभूषण की चर्चा कर रहे थे। देखो, माता जब पुत्र को बना देती है, उसका कंठ ही उसका सौंदर्य है। जब कंठ में विद्या होती है, राष्ट्र को ऊँचा बना देती है तो वही उसका आभूषण माना गया है। हे मां, तू उन आभूषणों में संलग्न हो, जिन आभूषणों से तेरा राष्ट्र ऊँचा बनेगा, पवित्र वाद होगा, उस काल में यह संसार ऊँचा बनेगा। आधुनिक काल का वैज्ञानिक नाना प्रकार के यन्त्रों में संलग्न है। एक वैज्ञानिक ने यह घोषणा की है कि वह जो पृथ्वी के अंतर्गत जो एक रेखा है शोमभानुक कृतिक नाम की रेखा है। उस रेखा के प्राण वायु को यदि हम अपने में धारण कर लेते हैं यन्त्रों के द्वारा अपने में खींच लेते हैं तो सूर्य की किरण नग्न हो करके आएगी। वह राष्ट्र का राष्ट्र भस्म हो जाएगा। आधुनिक काल का वैज्ञानिक इस विज्ञान में लगा हुआ है। आधुनिक काल का प्राणी लोक लोकान्तरों की घोषणा कर रहा है। उड़ान उड़ रहा है। परन्तु जब प्राचीन काल के विज्ञान को दृष्टि पात करते हैं तो ऐसा दृष्टिपात होता है कि विज्ञान का अभी जन्म भी नहीं हुआ है। इस विज्ञान का, भौतिकवाद के विज्ञान का अभी जन्म भी नहीं हुआ है। द्वापर के काल में जब प्रवेश करता हूँ और घटोतकच और भीम के विज्ञान को विचारता हूँ, तो आधुनिक काल का विज्ञान वहाँ नहीं पहुंच सका। नारान्तक के विज्ञान को विचारते हैं, जब वह अपने यान में उड़ान उड़ता था। अपने यान में सुकेता जब मार्ग को अपने में ग्रहण कर लेता था इतनी तीव्र गति वाला यान था। परन्तु वही यान वहाँ से उड़ान उड़ता मंगल से शुक्र में चला जाता है। वहाँ भी दो ही घड़ी का मार्ग है। बहत्तर लोकों का भ्रमण करके पृथ्वी पर आ जाता था। परन्तु आधुनिक काल के विज्ञान की मैं कहाँ तक कल्पना कर सकता हूँ। यह कल्पना वाला वाक्य नहीं विचार विनिमय यह कि विज्ञान में जाना मानव का मौलिक कर्त्तव्य है।

आज मनसत्व तथा आत्मा को जानना चाहता है तो तपश्चर्या बिना किए नहीं जाना जाता। क्योंकि श्रद्ध में देहि हृदय ब्रह्मलोकः। , हृदय में एक महत्ता उत्पन्न होती है। मैं

कटुता में अवश्य चला जाता हूँ। परन्तु विचार विनिमय यह है कि यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे तेरे जीवन की धारा बनी रहे। हे ब्रह्माण! तेरी उद्गान और वैदिकता, सहस्त्रों वर्षों की आयु हो करके, स्वास्थ्य की अखण्डता बनी रहे। वैदिकता का सदैव प्रसार होता रहे। वेद गान वायु मण्डल में ध्वनि करता रहे, देवता ग्रहण करते रहें। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यागों के सम्बन्ध में अपना विचार विनिमय दे रहे थे। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को चिन्ता लगी हुई है, और वह चिन्ता यह है कि हमारा वायुमण्डल कैसे पवित्र बने। परन्तु आधुनिक काल में यदि यह दशा, यह गति चलती रही तो कुछ काल में जैसा पूज्यपाद गुरुदेव उच्चारण कर रहे थे कि तीन प्रकार की प्रलय होती है। हो सकता है इन तीनों में से कोई प्रलय न आ जाए। (1) क्योंकि वायुमण्डल जब दूषित होता है तो अग्निकाण्ड होने लगते हैं। पृथ्वी विष उगलने लगती है। वायु अपने विष उगल करके प्राणीमात्र को अपने में भस्म करने लगती है। (2) कहीं पृथ्वी में दरार बन करके पृथ्वी के विभक्त हो जाते हैं। उसमें मानव समाज समापन होने लगता है। (3) ऐसे कहीं समुद्रों से जल प्लावन न आ जाए, चन्द्रमा अपनी तरंगों से विष न उगल दे। ऐसा अनुभव न हो जाए। आधुनिक काल का वैज्ञानिक इस बात से चिंतित हो रहाह ै। कि वायुमण्डल में जो दूषित वातावरण हो गया है, यह कैसे समाप्त हो। तो यह हमसे प्राप्त करो, हम इसका उत्तर देंगे और इसके ऊपर तुम आचरण करो। इसलिए गो घृत को लेकर के गोओं का पालन होना चाहिए। उनके घृत और दूध को लेकर मानव उसका पान करे और घृत के द्वारा याग करे। और उस याग का परमाणु जब अन्तरिक्ष में जाएगा तो एक एक गोघृत का परमाणु वायु में शोधन हो करके मानो एक एक सहस्त्र परमाणुओं को एक परमाणु में निगलने की शक्ति होती है। इसलिए वातावरण दूषित हुआ शान्त हो जाता है। वह शोधन हो जाता है। परन्तु इस विज्ञान में मैं अधिक नहीं जाऊँगा। विचार यह कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। हमारा यह ऋषि मुनियों का क्षेत्र, ऋषि मुनियों की आज्ञा थी कि प्रत्येक प्राणी गोघृत के द्वारा याग करे।

परन्तु आज का राष्ट्र तो बड़ा विचित्र बन गया है। स्वान के पालन करने में तो प्रसन्नता होती है और गो के पालन करने में कहते हैं कि वह दूषित वातावरण करती है। अरे,

इसका तो श्वास भी लाभप्रद है। उसका प्रत्येक अंग लाभप्रद है। आज का हमारा विचार अब समापन होने जा रहा है। आज का विचार यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का तेरी मानवता का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहे। अब मैं अपने गुरु से आज्ञा चाहता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः धन्य हो, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अनपे कुछ विचार दिये। इनके विचारों में एक विडम्बना तो रहती ही है। परन्तु विडम्बना के साथ विचारों में एक महत्ता भी, एक ओज था एक मानो विलक्षणता था। और वह यह कि मानव के लिए शिक्षा, द्रव्य को सदुपयोग करना, यह मानवता का कर्त्तव्य है। आज के वाक्य समापन करने से पूर्व में भी जैसा महानन्द जी की प्रेरणा है। हे यज्ञमान! हे ब्रह्मण। तेरे जीवन की आभा सदैव विचित्र बनी रहे, महान् बनी रहे। शुद्ध संकल्प और प्रेरणा आती रहे। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

१३ 28 09 1979 पुष्प 35 आध्यात्मिक जीवन मे उत्तरायण क्या है

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस पवित्र वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे प्रभु! अथवा आनन्दमयी, ममतामयी, श्रोत्रमयी की महिमा का गुणगान गाया जाता है।

बेटा! गान गाया जा रहा है परन्तु कैसे प्रिय स्वरूपों में वह गान गाया जा रहा है? भिन्न भिन्न रूपों से गाया जा रहा है। दार्शनिक दर्शनों की आभा में तेरा गुणगान गा रहा है। योगेश्वर तेरी योग महिमा का गुणगान गा रहा है। बेटा! वैज्ञानिक विज्ञानमयी तेरी महिमा का गुणगान गा रहा है। परन्तु साधक जब तेरी साधना में रत्त हो जाता है। मानो साधक और साध्य दोनों की आभा एक सूत्र में पिरोई जाती है। जैसे बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ है।

महर्षि प्रम्हण से एक समय महाराजा तिलक ने कहा कि महाराज! इस हमारे मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं और पांच कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं, दस प्राण कहलाते हैं, मन

बुद्धि चित्त, अहंकार ये सर्व किसमें ओत प्रोत रहते हैं? तो मेरे पुत्रो! उस महर्षि प्रम्हाण ने उत्तर देते हुए कहा, श्मऊ वृत्तम् प्राणः वेद का ऋषि कहता है कि ये सब प्राण में ओत प्रोत रहते हैं। क्योंकि प्राण ही गति कर रहा है। आन्नादाम् भूतम् प्रव्हेः लोकाः और अन्नादि उस प्राण का भोज्य बन रहा है। प्राण भोक्ता बन करके उसको भोग रहा हैं और मुनिवरों! देखो, ये ज्ञानेन्द्रियों के विषय, कर्मेन्द्रियों के विषय अपने में अपने को ही बर्तते रहते हैं।

बेटा! मैं कहाँ चला गया हूँ? आज का तो हमारा यह चिन्तन करने का ही विषय नहीं था। आज तो मैं तुम्हें एक महान् ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूँ। दार्शनिकों को सभा में दर्शनों का चिन्तन और मनन करना ये मानव का कर्त्तव्य है। क्योंकि इससे वायु मण्डल में पवित्रता आ जाएगी। तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विज्ञान के क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ।

मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं। जहाँ यह प्रेरणा आती रहती है कि योगम् ब्रह्मेः प्रमाणाः वृत्तः देवाः जहाँ वेद की यह प्रेरणामयी आभा मुझे बाध्य करती रहती है। तो आज मैं तुम्हें एक ऐसी विवेचना में ले जाना चाहता हूँ जहाँ आज का हमारा वेदमन्त्र ममतामयी की याचना कर रहा था, ममतामयी की प्रेरणा दे रहा था। ममतवम् ब्रह्मेः मातस्तुतिः देवाः हे मां! तू सरस्वति बन करके तू हमारे कण्ठ को सजातीय बना देती है। हमारा कण्ठ, हे मां सरस्वति! तेरे ही, आभा में ओत प्रोत जब हो जाता है, सत्व, सत्त् में ही तो मानो वह सरस्वती बना करके बेटा! कण्ठ का उज्ज्वल बना देती है। मानव को ख्याति मयी प्रवीण बना देती है और यह उच्चारण करता है। मानव कि अमुक प्राणी के कण्ठ में सरस्वती वास कर रही है।

मेरे प्यारे! देखो, वाणी को हमारे वैदिक साहित्य में सरस्वती कहा है। दुर्गम् बृव्हेः वृत्तम् वृहिः वृत्ताः ये वेद की आख्यापिकाएं हैं। वेद का ऋषि कहता है चिन्तन करता हुआ क्या? मानव के दुर्गुणों को जो शान्त करने वात्त है वह दुर्गा कहलाती है। दुर्गुणाम बृव्हेः वृत्ताम् मन्द वृत्तिथि मेरे प्यारे! वे दुर्गुणों को शान्त करने वाली है। कौन? वह कैसी मेरी भोली मां है? कैसी भोली वह शक्ति है। जिसके कारण मानव अपने दुर्गुणों को शान्त

कराना चाहता है। वे दुर्गुण उस काल में शान्त होते हैं जब प्रचण्ड ज्ञान की अग्नि मानो दुर्गा बन करके हमारे नाना प्रकार के अशुभ, अशुद्ध कर्मों को दग्ध बना देती है। मेरे पुत्रो! देखो, वह दुर्गेवेति है जो दुर्गुणों को शान्त करने वाली है।
आगे वेद का ऋषि कहता है कर्मणाम् बृव्हिः कृतम् देवाः अष्ठमम् बृहिः विजयकृतिः देवतवम् लोकाः वैदिक साहित्याचार्यों ने बेटा! बहुत ही इसके ऊपर मनन किया। क्योंकि परम्परा से हमारे यहाँ मुनिवरों! देखो, प्रकृति की और चैतन्य जिसके कारण चेतनित यह जगत् दृष्टिपात आता है। परम्परा से ही मानव इसका साधक बनता चला आया है। इसके ऊपर मानव का अधिपथ्य रहा हो और देखो, इसके ऊपर सदैव प्रतिभा, आभा में मानव सदैव परणित रहा है। यह आज कोई नवीन वाक्य नहीं है।
जैसा मेरे पुत्रों! महानन्द जी मुझे उच्चारण करते रहते हैं कि आज का समाज मानो मां दुर्गा की गोद में जाने के लिए तत्पर हो रहा है। मां काली अष्ट भुजा की गोद में जाने के लिए तत्पर हो रहा है। मेरे पुत्रो! मैं इस स्वरूप को तो जानता नहीं कि किस प्रकार मानव उसमें रत्त रहना चाहता है। परन्तु हमारे योगेश्वर, आचार्यजन जब इसमें रत्त रहते थे, तो बेटा! उसके भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप उनके समीप आते रहते थे। जैसे हमारे यहाँ बेटा! अष्ट भुजों का प्रायः वर्णन आता रहता है। हमारे यहाँ यौगिक साहित्य में जब योग के ऊपर अनुसन्धान करने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, योग की आठ प्रवृत्तियां मानव की जागरूक हो जाती हैं। आठों भुजाओं से वे कल्याण करने वाली अष्ट भुजा अष्टम् ब्रह्मेः बेटा! अष्ट दिशाएं कहलाती हैं।
सबसे प्रथम मेरे प्यारे! देखो, प्राची दिक्, दक्षिणी दिक्, प्रतीचि दिक्, उदीचि दिक् और ध्रुवा। मुनिवरो। देखो, ऊर्ध्वा दिक् ब्रह्मे ईशान कोणों में ऊष्वाकृतियों में दक्षिणाय में बेटा! देखो, ये ईशान कृतिका कहलाती है ये अष्ट भुजा कहलाती हैं। मेरे प्यारे! देखो, यह जो प्रकृति का सर्वत्र ब्रह्माण्ड, प्रकृति की जो रचना हो रही है वह मुनिवरों! देखो, सबसे प्रथम पूर्व दिशा से प्रकाश आता है। वह अदिति सूर्य उदय होता है प्रातःकाल में। इसीलिए बेटा! देखो, उस मां का सबसे प्रथम भुज हमारे यहाँ पूर्व दिशा में आता है

जिसमें अदिति उत्पन्न होते हैं।

वह मेरे प्यारे! प्रकाश का भण्डार है। प्रातः काल होते ही प्रत्येक मानव पूर्वाभिमुख उच्चारण कृतिः मानो पूर्वामुख हो करके वह याग करता है। जैसा बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा जाबाला सत्यकाम् जब महर्षि गौतम ने मेरे प्यारे! देखो, यह उच्चारण कर दिया था कि जाओ! इन चार सौ गऊओं को ले जाओ! और जब तक एक सहस्र नहीं हो जाएं मेरे द्वार पर नहीं आना। तो मुनिवरों! देखो, जाबाल पुत्र तब तक सत्यकाम 400 गऊ ले करके मुनिवरों! देखो, जब वह वे गऊऐं (एक हजार) हो गईं, सहस्र हो गईं, तो मेरे पुत्रो। देखो, पूर्वाभिमुख हो करके वे जब याग करने लगे, अग्नि का प्रकाश, अग्नि होत्र करने लगे, तो उस समय उसे एक वृष (वृख) प्रेरणा देता है। और वृष कहता है हे जाबाल सत्यकाम्! गव्वाम् बृव्हिः वृतम् सहस्राणि हम एक सहस्र हो गए हैं। अब गुरु उद्दालक गुरु के द्वार पर चलो। गोत्तमा बृहिः मानो गुरु के द्वार पर चलो!

महर्षि गौतम के द्वार पर उद्दालक नहीं थे। परन्तु देखो, अब चलो! मेरे पुत्रो! देखो, पूर्वाभिमुख हो करके जबाला सत्यकाम् याग कर रहा है। याग करने के पश्चात् मुनिवरों! देखो, वह अगले दिवस को वहाँ से प्रस्थान करते हैं। क्योंकि पूर्वभिमुख हो करके याग करना। क्योंकि याग इसीलिए, देखो, क्योंकि वह प्रकाश का भण्डार हैं वह मां इस प्रकृति का एक भुज कहलाता है। इससे प्रकाश उसके एक भुज में प्रकाश है।

मुनिवरों! देखो, वह प्रकाश कैसा है? पूर्व दिशा से ही मुनिवरों! देखो, सूर्य उदय होता है। वह ऊषा और कान्ति के सहित आता है। ऊषा और कान्ति प्रातःकालीन जब मानव सूर्य से पूर्व उदय होती है, तो ऊषा और कान्ति मानो प्रसाद रूप में मानव को प्राप्त होती है। हे मानव! तू उस प्रसाद को प्राप्त करने वाला बन। मुनिवरों! देखो, ऊषाकाल जब होता है उस ऊषाकाल में, मानो अन्तरिक्ष में लालिमा होती है, वह लालिमा मानव के प्रकाश का नेत्र बन करके मानव को अमृत बिखेरती रहती है। प्रत्येक मानव अमृत के पान करता रहता है।

इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा कि जो साधना करने वाले पुरुष हैं, मानो जो गृह में रहने वाले पुरुष हैं, वे सदैव जागरूक हो जाएं और वे पूर्वाभिमुख हो करके,

पूर्वाभिमुख करके मुनिवरों! देखो, अपना ध्यान अथवा साधना करने में सदैव रत्त रहें। क्योंकि वह प्रकाश का भण्डार है। प्रकाशाम् देवत्यम् क्योंकि प्रकाश ही तो मानव का जीवन है। कांति बन करके आती है, जहाँ बेटा! अन्धकार समाप्त हो जाता है। अन्धकार नहीं रहता प्रकाश के आने पर। क्योंकि अन्धकार अज्ञान का प्रतीक है और प्रकाश ज्ञान का प्रतीक माना गया है।

मेरे पुत्रो! सबसे प्रथम ये पूर्वा कहलाता है। यह देवी कि एक भुजा कहलाती है, मां काली की एक भुजा कहलाती है। मां ममं बृहिः कृताम् देवाः मेरे प्यारे! देखो, एक भुज कह लाता है। द्वितीय भुज दक्षिण दिक् कहलाता है। दक्षिण दिक् किसे कहते हैं? मेरे पुत्रो! देखो, वे पूर्व से दक्षिण को ही विद्युत की तरंगें चलती हैं। मैं विज्ञान के युग में तुम्हें नहीं ले जाऊगा। मैं विज्ञान की वार्त्ता प्रगट करने नहीं आया हूँ। क्योंकि आध्यात्मिक वाद में विज्ञान की तरंगें ओत प्रोत रहती हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह जो दक्षिण उसमें शब्द विद्यमान होता है। एक मानव शब्द का उच्चारण करता है। उच्चारण करके उसका जो शब्दों का भण्डार है, वह दक्षिण दिक् कहलाता है। क्योंकि वह द्वितीय चरण अथवा द्वितीय भुज कहलाता है।

मुनिवरों! देखो, दक्षिण में विद्युत का भण्डार रहता है। हमारे यहाँ आचार्यों ने एक वाक्य कहा है कि प्रत्येक मानव को दक्षिण दिशा को मुनिवरों! देखो, पगों की आभा को प्रगट करके कदापि विश्राम में तल्लीन नहीं रहना चाहिए। क्योंकि इससे मानव की शक्ति वह दक्षिण दिशा को प्राप्त विद्युत और मानव की विद्युत दोनों का समन्वय हो जाता है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि दक्षिण दिशा को पगों को करके विश्राम नहीं करना चाहिए। विश्राम में तल्लीन नहीं रहना चाहिए। ऐसा मुनिवरों! देखो, हमारे वैदिक साहित्याचार्यों ने एक शिक्षा प्रद वार्त्ता प्रगट की है।

यदि और भी भी ऊर्ध्व में जाओगे तो मुनिवरों! देखो, दक्षिण में शब्दों का भंडार है। जो भी शब्द जाता है, वह दक्षिण में क्योंकि श्रोत्रों का जो देवता है, वह दक्षिण दिशा कहलाती है। इसीलिए जो भी शब्द आता है, उस शब्द को जान करके, जो भी उच्चारण करता है, वह एक गति करता है, और उत्तरायण से मानो पूर्व हो करके वह दक्षिणायन

को प्राप्त हो करके जब मानव के क्षेत्रों में प्रवेश करता है। तो मेरे पुत्रो! देखो, वह इसीलिए कि यह जो दक्षिण दिशा है, यह अग्नि, यह विद्युत का भण्डार है। नाना प्रकार की विद्युत आती है। विद्युत आ करके मेरे प्यारे! वन इत्यादियों की वृद्धि कर देती है। हमारे यहाँ आचार्यों ने कहा, प्राची दिक्, दक्षिणा दिक् और प्रतीची दिक्। प्रतीची दिक् कहते हैं, मेरे प्यारे! मानो, पश्चिम दिशा को। यह जो पश्चिम दिशा है यह मां की तृतीय भुज कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, साधना करने वाला कहता है, हे प्रतीची दिक्! हे अन्न भण्डार! तू मानव वृद्धि कहलाता है, क्योंकि पश्चिम दिशा में अन्न का भण्डार होता है। प्रभु का दिया हुआ अन्न का भण्डार हाता है। जब पश्चिम दिशा से वायु वेग से गति करती है, विद्युत को साथ में ले करके आती है, तो मां पृथ्वी के गर्भ में बेटा! नाना प्रकार की आभा को परणित कर देती है। नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ इसी से उत्पन्न होने लगता है।

विचार विनिमय क्या? देखो, यह अन्न का भण्डार है, अन्नादि कहलाता है। तो वह प्रतीची दिक् कहलाता है। प्रतीची दिक् ऊर्ध्वप्रव्हेः लकाः मानो वह तृतीय कहलाती है, तृतीय मां का भुज कहलाता है। प्रकृति मां काली का वह भुज कहलाती है। मेरे प्यारे! इससे वह अन्नादि प्रगट करती है, अन्नादि को प्रसाद रूप में देती है। नाना प्रकार के खनिज को वो प्रसाद रूप में परणित करती है। तो मुनिवरों! देखो, वह, प्रतीची दिक् कहलाता है। प्रतीची दिक् आभा में रमण करने वाला है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह एक मंगलम् बृहिः लोकाः वह आभा में गति करने वाली एक विचित्रता है।

आओ, मेरे प्यारे! देखो, वह तृतीय भुजा कहलाती है, और चतुर्थ जो भुजा है वो उदीची दिक् कहलाती है। उदीची का अभिप्राय क्या है? उदीची कहते हैं उत्तरायण को। तो मेरे प्यारे! त्तजतने साधकजन हैं वे उत्तरायण को मुखाभिमुखी करके बेटा! साधना करते हैं, योगाभ्यास करते हैं, प्राण की गति को लेते हैं। क्योंकि जितना भी ज्ञान का भण्डार है, वह उत्तरायण में रहता है। हमारे यहाँ मुनिवरों! देखो, उत्तरायण और दक्षिणायन दो प्रकार की दिशा कहलाती है।

मेरे प्यारे! दो प्रकार का ज्ञान होता है एक उत्तरायण होता है, एक दक्षिणायन होता है।

मुनिवरों! देखो, एक माह में दो पक्ष होते हैं एक उत्तरायण होता है, एक दक्षिणायन होता है। एक शुक्ल होता है, तो एक कृष्णा होता है। मेरे प्यारे! कृष्णा अंधकार को कहते हैं और शुक्ल प्रकाश को कहते हैं।

तुम्हें प्रतीत होगा मेरे पुत्रो! महाभारत के काल में जिस समय महाभारत का संगत्तम हो रहा था। तो मुनिवरों! देखो, पितामह भीष्म कौन? महाराजा शान्तनु के जेठे पुत्र। जब मुनिवरों! देखो, उन पर अर्जुन के बाणों की वृष्टि हुई, तो मुनिवरों! देखो, वे शर शया पर, बाणों की शैय्या पर विद्यमान हो गए। जब विद्यमान हो गए, तो उन्होंने यह संकल्प किया हुआ था, कि जब तक यह सूर्य उत्तरायण में नहीं होगा, तब तक मैं अपने शरीर को नहीं त्यागूंगा। क्योंकि उत्तरायण का अभिप्राय क्या है?

मेरे प्यारे! उत्तरायण किसे कहते हैं? उत्तरायण कहते हैं, प्रकाश को। क्योंकि उत्तरायण में जब सूर्य होता है, उत्तरायण प्रकाश है, ज्ञान है। आज हम यदि सूर्य से उत्तरायण को मापने लगते हैं, तो बेटा! देखो, वैदिक साहित्य में यह मापा नहीं जाता है। परन्तु हम जब इसको दार्शनिकता से इसको गठित करना चाहते हैं, तो प्रायः यह गठित हो जाता है। क्योंकि उत्तरायण कहते हैं, जब सूर्य उत्तरायण में हो। क्योंकि सूर्य का अभिप्राय यह है सूर्य के दो प्रकार के स्वरूप हैं।

एक समय बेटा! बहुत पुरातन काल की वार्त्ता है। कहीं उत्तरायण दिशा में स्वेन नामक राजा के यहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था बेटा! । बहुत परम्परा की वार्त्ता है। क्योंकि वहाँ वृष्टि याग कराना था। तो मैं आज उस साहित्य में तो जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु वहाँ उस याग में यह प्रसंग उत्पन्न हुआ कि क्या सूर्य की उत्तरायण है या उत्तरायण का और भी स्वरूप माना जाता है? दक्षिणायन से क्या संतुलन की जा सकती है?

परन्तु देखो, सूर्य के दो स्वरूप एक लौकिक और एक पारलौकिक दो इसके रूप माने जाते हैं। एक लौकिक है, जो सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है। मानव के नेत्रों का प्रकाश बन करके आता है। मानव सूर्य के प्रकाश में अपना कर्त्तव्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। एक सूर्य का यह अदिति रूप कहलाता है। यह अग्नि का भंडार है। अग्नि के

प्रकाश से, परमपिता परमात्मा के द्यु के प्रकाश से वह प्रकाश देता रहता है।
एक हमारे यहाँ वेद रूपी सूर्य माना गया है। वेद रूपी सूर्य का कैसा प्रकाश है? वह ज्ञान रूपी सूर्य कहलाता है। जैसे मानव के नेत्रों का प्रकाश इस अदिति सूर्य से अन्धकार समाप्त होता है। इसी प्रकार जो वैदिक साहित्य को गम्भीरता से अध्ययन करने वाले होते हैं, ज्ञान रूपी प्रकाश से, बेटा! मानव के अन्तःकरण से प्रकाश होता है। देव! यह केसी विचित्रता है बेटा! वैदिक साहित्य में प्राप्त होती है? क्या? मानो वह जो सूर्य उदय हो रहा है, वह ज्ञान रूपी सूर्य, उससे मानव का अन्तर्हृदय पवित्र और प्रकाश में जा रहा है।
इसी प्रकार मेरे प्यारे! महाभारत के काल में मुझे स्मरण है। मानो देखो, भीष्म जी, ने देववृत ब्रह्मचारी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं उत्तरायण में सूर्य के होने पर शरीर का त्याग करूंगा। क्योंकि उत्तरायण हमारे यहाँ प्रकाश को कहते हैं, और दक्षिणायन जो हैं अन्धकार को कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, दक्षिणायन अन्धकार है अब्रुहिः कृताम् देवाः उत्तरायण में क्योंकि एक वर्ष में 12 आदित्य होते हैं, जिनको माह कहते हैं। 12 आदित्यों में मुनिवरों! देखो,! छह कृष्णा पक्ष में होते हैं, छह शुक्ल पक्ष के कहलाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, यह इसी प्रकार से, ऐसा क्यों ऋषियों ने विभक्त कर दिया है? इसके ऊपर बेटा! मैं विशेष टिप्पणी में आज देना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल इतना ही देना चाहता हूँ कि यह दक्षिणायन है। इनमें से छह माह उत्तरायण कहलाते हैं। उत्तरायण का अभिप्राययह कि सूर्य मानो एक प्रकाश में आ जाता है और यह अपनी विशेष किरणों के द्वारा मुनिवरों! देखो, यह अमृत को बिखेर देता है। विशेषता में विशेषता आ जाती है। एक मानो देखो,! उत्तरायण का, दक्षिणायन का अभिप्राय यह कि मानव के जीवन में एक दक्षिणायन आता है, एक उत्तरायण आता है। उत्तरायण ज्ञान और विवेक को कहतेत्तैं, और दक्षिणायन मुनिवरों! देखो, अज्ञान और अन्धकार को कहते हैं।
मेरे प्यारे! देखो, यह पितामह भीष्म के हृदय में यह अज्ञान आया और यह अज्ञान कैसे आया? मानो देखो, न प्रतीत यह क्यों आया? मोह के कारण आया? या राष्ट्र के कारण आया? मुनिवरों! देखो, जिस समय वह बाणों की शैय्या पर विद्यमान थे। तो उस समय

उत्तरायण की प्रतीक्षा थी। तो मुनिवरों! देखो, महारानी द्रौपदी उन्हें नित प्रति गायत्री का जप करती हुई, वह अन्न को तपाती थीं। और उस अन्न को अपने बाबा पितामह भीष्म को प्रदान करती थीं। उसको वह स्वतः भोजन कराती थीं। क्योंकि वह उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

एक समय उपदेश दे रहे थे कि मानव को इस ब्रह्मयाग में रमण करना चाहिए। यह ब्रह्म याग ही एक महान् याग कहलाता है। मानो हम काली मां, देवी के उस स्वरूप को जानने वाले बनें, जो अष्ट भुजाओं वाली है। आठों भुजाओं में कोई न कोई प्रतीक माना गया है। किसी में शंख माना है, किसी में चक्र माना है, किसी में स्वाति माना है, किसी में पदम् की प्रतिभा मानी है परन्तु देखो, किसी में गदा मानी है और त्रिशूल भी इसके भुजों में रहता है। मानो देखो, इस आभा में हमें रमण करना चाहिए और ब्रह्म के आभा में ब्रह्म चिन्तन में रमण करना चाहिए।

जब पितामह भीष्म यह उपदेश दे रहे थे, तो महारानी द्रौपदी ने कहा कि हे पितर! आपका यह उपदेश उस समय कहाँ था? उस काल में जब मैं रजोमय (रजस्वला) थी और मुझे महाराजा दुर्योधन इस सभा में, हस्तिनापुर के आँगन में मुझे नग्न करना चाहते थे? उस समय यह आपका ब्रह्ममय उपदेश कहाँ था? उस समय पितामह भीष्म बोले, हे देवी! हे पुत्री! मैं उस समय, क्योंकि राष्ट्र का मैंने पापमयी अन्न को ग्रहण किया था। अन्न से ही मानव के द्वारा मज्ञा की उत्पत्ति होती है, ओज उत्पन्न होता है। उसी से बुद्धि का निर्माण होता है। मेरी बुद्धि उसी प्रकार की हो रही थी। मैं उस समय देखो, वशीभूत था अन्नादि के। मेरे प्यारे! देखो, और आज तेरे इस पवित्र अन्न से जो तू मुझे पान कराती है और मानो देखो, अर्जुन के तीखे बाणों ने रक्त का शोषण कर दिया है। आज मेरी बुद्धि निर्मल बन रही है। तो मेरे प्यारे! देखो, मेरा उत्तरायण आ गया है।

मुनिवरों! देखो, उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा में नहीं था। वह देवता, वह ब्रह्मचारी इस प्रतीक्षा में था कि मुझे ज्ञान हो जाए, मुझे विवेक हो जाए। जिस समय मैं प्राणों का त्याग करने वाला हूँ। क्योंकि सूर्य का मानव के जीवन से, आत्मा से कोई विशेष सम्बन्ध

नहीं है। ज्ञान रूपी सूर्य से आत्मा का सम्बन्ध है।
मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है महाराजा भीष्म ने एक वर्ष चार दिवस में मुनिवरों! देखो, अपने शरीर को त्यागा था। इतने समय तक महारानी द्रौपदी उसे पवित्र गायत्री छन्दों से गुंथे हुए अन्न को पान, कराती रहती थी, मानो देखो, जिससे उसकी बुद्धि निर्मल हो गई, ज्ञान हो गया। क्योंकि ज्ञान तो उन्हें पूर्व था। बाल्य काल में बहुत अध्ययन किया था। माता को वे ज्ञान देते रहते थे।
मुनिवरों! देखो,! इसी प्रकार जो माता अपने पुत्र को यह चाहती है कि मेरा पुत्र पवित्र बने, मेरे पुत्र में महत्ता आ जाए तो माता गायत्री छन्दों का पठन पाठन करके जब माता अपने पुत्र को शुद्ध विचारों का भोज्य कराती है, तो वह माता सौभाग्यशालिनी होती है। उस माता के आभा में ही मानो देखो, पुत्रों! का जन्म होता है, आभा में ही पुत्रों! को महान् बना देती है।
मेरे पुत्रो! मैं आज विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ। आज जैसे माता मन्दालसा का वर्णन आता रहता है। वे गर्भ से ले करके 5 वर्ष तक तो शिक्षा देती रहती थी। अन्नादि पवित्रता से ग्रहण कराती रहती थी। ब्रह्मवेत्ता बन जाते थे। पुत्र अहा! वह माता सौभाग्यशाली है जिस माता के गर्भ से ब्रह्मवेत्ता पुत्रां का जन्म होता है, बुद्धिमानों का जन्म होता है।
आज बेटा! मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट कराने नहीं आया हूँ। मैं अपने विषय को विस्तार में ले जाना नहीं चाहता हूँ, यह तो भयंकर वन है। आओ! मेरे प्यारे! देखो, उत्तरायण और दक्षिणायन की मैं सूक्ष्म सी चर्चा कर रहा था। पितामह भीष्म ने मृत्यु से चार दिवस पूर्व यह कहा था महारानी द्रौपदी से और पांचों पांडवों से कि अब मैं चार दिवस में अपने शरीर को त्याग दूंगा। क्योंकि अब मुझे ज्ञान हो गया है। मेरे जीवन का अन्धकार समाप्त हो गया है और प्रकाश हो गया है, ज्ञान हो गया है। अब मैं अपने शरीर को त्याग दूंगा। क्योंकि मैं उत्तरायण में चला जाऊ। उत्तरायण ज्ञान और प्रकाश को कहते हैं, अब मुझे ज्ञान हो गया है।
तो मेरे प्यारे! देखो, यह उत्तरायण दिशा ऐसी है, यह उत्तरायण ऐसा है यह ज्ञानियों के

लिए ज्ञानवान है, ध्यानियों के लिए ये ध्यानावस्थित हो जाते हैं। मेरे प्यारे! इससे अपने बुद्धि को, प्रत्येक मानव को निर्मल बना लेना चाहिए, पवित्रता में ले जाना चाहिए।

आओ! मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। उत्तरायण का अभिप्राय तुमने जान लिया होगा। उत्तरायण कहते हैं मुनिवरों! देखो, जो मानव को प्रकाशमय बना देता है। मुनिवरों! देखो, यह माता का चतुर्थ भुज कहलाता है। यह उस माता का चतुर्थ भुज कहलाता है। कौन सी मेरी पवित्र माता है? जो काली मां है। मानव के अन्तःकरण से कालिमा रूपी रात्रि को समाप्त कर देती है और अदिति बन करके। मेरे प्यारे! देखो, उत्तरायण बना देती है, मानव के जीवन को।

आओ! मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चाओं में नहीं जाना चाहता हूँ। व्याख्या करता रहूँगा। तो उत्तरायण की व्याख्या में मुझे इतना समय पर्याप्त नहीं है। मैं केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ और परिचय क्या है? उत्तरायण का परिचय है। आज मैं तुम्हें उत्तरायण की विवेचना क्योंकि उत्तरायण से विद्युत का जो जन्म बृहिः मानो देखो, विद्युत चलती है उत्तरायण से दक्षिण में उसका पुनः भण्डार बन जाता है। क्योंकि इसीलिए मानव जब संस्कार पति पत्नी का होता है, तो उस परिक्रमा को भी देखो,! वह पश्चिम से उत्तरात्ता को गति करके और वे मुनिवरों! देखो, समापन। उत्तरायण कृति देखो,! पश्चिम दिशा का जहाँ प्रारम्भ होता है वहाँ समापन हो जाता है और मुनिवरों! देखो, वहीं से पिफर पुनः गति करते हैं। सप्त अबृहिः सप्त परिक्रमा होती है। उन सप्त परिक्रमा का अभिप्राय तो मैं कभी समय मिलने पर करूंगा। आज तुम्हें उस आभा में ले जाना नहीं चाहता हूँ।

विचार क्या? मुनिवरों! देखो, यह तो उत्तरायण की चर्चा चल रही थी। परिक्रमाओं की चर्चा नहीं चल रही है। विचार क्या? यह उत्तरायण, यह माता का चतुर्थ भुज कहलाता है और ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः मेरे प्यारे! देखो, ध्रुवा में रमण करना। ध्रुवा कहते हैं, नीचे आभा कृतियों में जहाँ मानव आसन पर विद्यमान होता है। साधक कहता है, हे प्रभु! हे ध्रुवा दिग् विष्णु! हे विष्णु! तू मेरे निचलेत्तथान में, भी तू ही विद्यमान है। तू कैसा पवित्र देवता है? मानो देखो, वह कहता है ध्रुवा दिग् विष्णुः अधिपतिः मुनिवरों!

देखो, दिग् विष्णु कह रहा है। वह दिग् विष्णुः की याचना कर रहा है। मैं जब चारों भुजाओं को जान लेता हूँ इस प्रकृति के त्ते उस समय मैं दिग्विष्णु, दिग् विजय बन जाता हूँ। मैं विष्णा के स्वरूप को जानने में मैं कुछ कुछ सफलता को प्राप्त करने लगता हूँ। यह बेटा! साधक याचना करता है।

साधक यह विवेकृति कर रहा है। तो मुनिवरों! देखो, वह कौन सा साधक है जो दिग् विष्णु हो? मेरे पुत्रो! देखो, जो ध्रुवा में त्तने वाला है। जो ध्रुवा गतिः प्रव्हेः मेरे प्यारे! देखो, प्रकृति की भी यह ध्रुवा गति में वह ज्ञानी गति करता है। वैज्ञानिक इसमें रमण करने लगता है। मेरे प्यारे! साधक ध्रुवा में प्रभु को दृष्टिपात करता है और मुनिवरों! देखो, महाकाली का जो वह ध्रुवा मेरे प्यारे! मां काली ध्रुवा में भी ऊर्ध्व में भी, प्राची में भी, दक्षिणी में भी, प्रतीची में भी, उदीची में भी मां ही मां मुझे दृष्टिपात होने लगती है।

हे ममतामयी मां! तू कैसी भोली है? तू कैसी महान् है? तू अन्धकार को समाप्त करके तू प्रकाश में लाने वाली है। तू प्रत्येक मानव को प्रकाश में ला रही है और वह प्रकाश ही मानव को प्रतिष्ठित बनाता है। तेरी ममतामयी जो महत्व है वह मानव के हृदय में ओत प्रोत हो जाता है।

मेरे प्यारे! दिग् विष्णुरधिः पतिः मुनिवरों! देखो, वो दिग्विष्णुः है। विष्णु की हम याचना करते हैं। मेरे प्यारे! देखो, दिग्विष्णु एक भुज में माता के देखो, दिग् अस्ति रहता है। वह ध्रुवा में भी रहने वाली है। तो इसीलिए मुनिवरों! देखो, यह मां का पांचवां भुज कहलाता है और छठा जो भुज है वह उर्ध्वा में रहता है।

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिः हे बृहस्पति लोकों में रमण करने वाले प्राणियो! मानो देखो, मां बृहस्पति लोकों में गति करने वाली है। वह कैसी ऊर्ध्वा में रहने वाली मां है? ऊर्ध्वा में भी बेटा! साधक मां को दृष्टिपात कर रहा है। मां की ऊर्ध्वा में आभा को साधक दृष्टिपात कर रहा है।

मेरे पुत्रो! देखो, ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिः वह बृहस्पति हैं नाना लोक लोकान्तरों में बेटा! देखो, वैज्ञानिकों के लिए बृहस्पति मण्डल है, दार्शनिकों के लिए बृहस्पति अन्तरिक्ष है

और देखो, जो मुनिवरों! देखो, देव प्रवृत्ति वाले हैं, बृहस्पति उनके लिए गुरु बन करके, उनके ऊपर साया (छाया) करके बेटा! प्रकाश दे रहा है, ज्ञान की आभा प्रकट कर रहा है।
तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो, दिग् बृहस्पति वे बृहस्पति हैं। मुनिवरों! देखो, वह ऊर्ध्वा में श्वित्रो शिव बन करके मानव का कल्याण करने वाला है। शिव बन करके वह कल्याण कर रहा है मानवप का। दिग्वृषा वृष्टम् बृव्हेः नाना प्रकार की बेटा! सुखां की आनन्द की वृष्टि कर रहा है। कैसी वृष्टि कर रहा है? शिवम् ब्रह्मेः कृताः मेरे प्यारे! वे शिव महा आनन्द की वृष्टि करके मानव को प्रकाश दे रहा है। देवतव को प्राप्त कर रहा है। दैवी सम्पदा वाले देववत् को प्राप्त होने जा रहे हैं।
मेरे पुत्रो! इस मां का मुनिवरों! देखो, छठा भुज कहलाता है। जिसमें ऊर्ध्वा में बृहस्पति गति कर रहा है। ऊर्ध्वा में बेटा! जब तुम जाओगे, तो नाना प्रकार के मण्डलां में चले जाओगे। आगे चले जाओगे तो द्यु लोकों में रमण करने लगोगे। आगे चले जाओगे, तो तुम्हें बेटा! ऐसे ऐसे लोक प्राप्त होंगे, मुनिवरों! देखो, चार अरब बत्तीस करोड़ का यह जो कल्प चला जाता है, सृष्टि का दिवस चला जाता है, इतने समय में भी मुनिवरों! देखो, इन मण्डलों का प्रकाश पृथ्वी मण्डल तल पर नहीं आ पाता।
मेरे पुत्रो! वह कैसा है? वह कैसा आभावाला है? इतने समय में 3 3 कल्प समाप्त हो जाते हैं। यह ब्रह्मरात्रि, ब्रह्म दिवस समाप्त हो जाते हैं परन्तु बहुत से तारामण्डलों का प्रकाश इस पृथ्वी को स्पर्श भी नहीं कर पाता।
आज मैं बेटा! पुनः विज्ञान के युग में तुम्हें ले जात्त नहीं चाहता हूँ। हमारे वैदिक साहित्यत्तें जहाँ ज्ञान आता है, वहाँ विज्ञान आता है। जहाँ विज्ञान आता है, वहाँ उपासना आती है। जहाँ उपासना आती है, वहीं मानव की प्रतिभा आती है।
तो मेरे पुत्रो! देखो, यह आभा में रमण करने वाली कौन है बेटा! ? ब्रह्माण्डम् बृहे कृताम् वेद का ऋषि कहता है कि ब्रह्म के कमण्डलों में यह ममतामयी देवी किसी काल में वास करती थी। कहीं इसको संध्या के रूप में परणित किया है, कहीं मां काली के रूप में इसको वर्णन करने लगते हैं। कहीं मां शक्ति के रूप में इसे प्रकट करने लगते

हैं, कहीं शन्नो के रूप में प्रकट करने लगते हैं, कहीं दुर्गे, दुर्गा मां के रूप में प्रकट करने लगते हैं, कहीं मुनिवरों! देखो, इसको वसुन्धरा कहते हैं, कहीं इसको धेनु कहते हैं, कहीं इसको गो रूपों में परणित करने लगते हैं। दैवी सम्पदा वालों ने इसको बेटा! भिन्न भिन्न रूपों में माना है। मैं पर्यायवाची शब्दों को भी तुम्हें उच्चारण नहीं कर पाता बेटा! ।

विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो, इस मां के मैंने षट् (छः) भुजों का वर्णन किया है। आज मैं तुम्हें विशेषता देने नहीं आया हूँ। मैं इसकी विवेचना करता ही रहूँगा। और करता ही रहूँगा तो बेटा! मुझे कोई मार्ग भी प्राप्त नहीं होगा। विचार क्या? कि इसकी इतनी विस्तृत व्याख्या है, इतना विस्तृत विचार है कि वैदिक साहित्य में नाना मन्त्र इस प्रकार आते हैं।

मेरे पुत्रो! मैं विचार दे रहा था, देवी याग में जा रहा था। देवी याग प्राणी को करना चाहिए। मेरे पुत्रो! ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पति ऊर्ध्वा में गति करने वाला मेरे प्यारे! देखो, उपस्थान को प्राप्त होता है। ऊर्ध्वा में कौन जा रहा है? साधक जा रहा है। ऊर्ध्वा में कौन जा रहा है? जो ब्रह्मवेत्ता बनने जा रहा है, जो ब्रह्म का चिन्तन करने वाला है। साधक मुनिवरों! देखो, योगीजन अपनी उड़ान उड़ रहा है। ऊर्ध्वा में कौन जाता है? प्रकृति की गोद में बेटा! वैज्ञानिक चला जाता है, विज्ञान के युग में गति करने लगता है। वैज्ञानिक यन्त्रों पर विद्यमान हो करके लोक लोकान्तरों की यात्रा करने लगता है। परन्तु लोक लोकान्तरों में विशेष यात्रा में केवल मैं तुम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिः ऊर्ध्वा में मुनिवरों! देखो, मानव को जाना चाहिए, ऊर्ध्वा में रमण करना चाहिए। मेरे पुत्रो! देखो, ईषामबृहेः कृताम् यह जो ईशान कोण कहलाता है, इसमें मेरे प्यारे! देखो, यज्ञशाला में देखो,! जहाँ कलश की स्थापना होती है यज्ञशाला का जब आकार बनता है त्रिभुजों वाला तो मुनिवरों! देखो, वह तिच्चम बृव्हेः वहाँ ईशान में कलश और ज्योति का प्रकाश होता है।

मेरे प्यारे! देखो, ईशान में गति करने वाला जब मुनिवरों! देखो, योगाभ्यास करने वाला प्राणी मूलाधार में मूलबन्ध को लगा देता है। मूलबन्ध को लगा करके उसके पश्चात् वो

नाभि केन्द्र में वह ज्योति का प्रकाश दृष्टिपात करता है। उसके पश्चात् वह जालन्धर बन्ध को लगा करके हृदय चक्र में मुनिवरों! देखो, अपने में ज्योति को दृष्टिपात करता है। उसके पश्चात् वह कण्ठ में और स्वाधिष्ठान चक्रों में और मुनिवरों! देखो, जहाँ त्रिवेणी का स्थान, जहाँ इडा, पिंगला, सुषुम्ना इनका मिलान होता है वहाँ त्रिभुज कहलाता है बेटा! तीनों गुणों, तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण, को दृष्टि पात करके बेटा! आत्मा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है।

ब्रह्मरन्ध्र में जब योगेश्वर जाता है, तो वह सर्व ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करता है। मैं बेटा! यौगिक आचार्यों ने क्षेत्र में भी तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल परिचय देने आया हूँ। ईशान कोण में मुनिवरों! देखो, कलश होता है। यज्ञशाला में और ईशान कोण में ज्योति विद्यमान होती है। ज्योति को योगी ध्यानावस्थित करता है। कलश उसे कहते हैं, जो कुंभाकार बनाता है। मेरे प्यारे! जहाँ इसमें जल ओत प्रोत होता है। मुनिवरों! देखो, इसमें अमृत होता है। वह अमृत मानो प्राण की वृष्टि कर रहा है, मानो ज्ञान की वृष्टि कर रहा है। वे वणो बृहेः मुनिवरों! देखो, कलश कहता है कलशाम् बृहिः कृतोः भावाः स्वस्तिः देवाः वे सरस्वती के देने वाला है।

मुनिवरों! देखो, उसको पान करने से सरस्वती आती है। अमृत के ही पान करने वाले सरस्वती को अपने में धारण करते हैं। वह ईशान मेरे प्यारे! देखो, मां काली का (सातवां) भुज कहलाता है।

मेरे प्यारे! इसी को लेकर के ऋषियों ने कल्पना की है कि मानव के नेत्रों में भी सात देवता कहलाते हैं। मेरे प्यारे! देखो, रुद्रः लालिमा जो नेत्रों (टेप बदलते समय रह गया), उसमें पृथ्वी विद्यमान् रहती है। मानो सफेद जो मानो देखो, श्वेत वर्ण की नेत्रों में आभा है वह अदिति का स्वरूप है। मेरे प्यारे! जो कालिमा का स्वरूप है मुनिवरों! देखो, वह अप्रति चन्द्रमा का रूप माना गया है। क्योंकि वह अमृत बिखरने वाला है और उसमें बेटा! एक एक कृतिका होती है। मुनिवरों! देखो, उससे वह अमृत को क्या, वह साम्डबृहियों ब्रह्म को प्राप्त करता है।

बेटा! ये सात देवता मानव के नेत्रों में विद्यमान हैं। उन नेत्रों को ही वे नेत्रित करता

रहता है। सात देवता ही तो मानो देवी सम्पदा वालों ने स्वीकार किए हैं। मेरे प्यारे! कण्ठ के उपरले भाग में सप्त ऋषि कहलाते हैं। एक का नाम गौतम है, द्वितीय का नाम भारद्वाज है, एक का नाम विश्वामित्र है, कश्यप है और मुनिवरों! देखो, वशिष्ठ है और जमदग्नि है और स्वाति है, मुनिवरों! देखो, ये सप्त ऋषि कण्ठ के ऊपरले भाग में विद्यमान हैं।

दो ऋषि नेत्रों के द्वार पर विद्यमान हैं और दो ऋषि मानव की नासिका के छिद्रों के द्वार पर विद्यमान हैं और मुनिवरों! देखो, दो ऋषि विश्वामित्र और कश्यप दोनों ऋषि श्रोत्रों के द्वार पर विद्यमान हैं और एक ऋषि बेटा! वाक् में हैं, जिसको जमदग्नि कहते हैं।

मेरे प्यारे! मैं देवताओं की आभा में ही चला गया। यह तो बेटा! भयंकर वन हैं मैं वन में जाना नहीं चाहता हूँ क्योंकि ऋषियों ने इस मानव शरीर की कल्पना ब्रह्माण्ड से की है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना पर बेटा! याज्ञवलक्य मुनि ने जनक की सभा में उत्तर देते हुए कहा है। परन्तु यहाँ स्वाति ऋषि जब बृहस्पति के द्वार पर पहुंचे, वहाँ भी उन्होंने महाराजा कृतिभा प्रजापति ने भी ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना की है।

आज मैं तुम्हें दूर नहीं ले जाना चाहता हूँ विचार क्या? कि वह ईशान कोण है, वह मेरे प्यारे! देखो, सप्तम् भुज कहलाता है। आठवां जो भुज है वो दक्षिणाय कृति कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, इसमें विद्युत समाहित हो करके और पश्चिम दिशा से अन्न का भंडार लेकर के इस मानव को भरण कर देती है।

आओ! मेरे प्यारे! देखो, मैं इस देवी के आठों भुजां की चर्चा तो विस्तार से, मानो इसके स्वरूपों का वर्णन तो मैं कल ही कर पाऊगा परन्तु आज मैं तुम्हें यह वर्णन कराने आया हूँ कि हे मां! तू हमारा कल्याण करने वाली है। तू दुर्गा बन करके हमारे दुर्गुणों को शान्त करती है। जब तू मानो ध्रुवा में रहती है, तो पृथ्वी बना करके, वसुन्धरा बन करके हमारा कल्याण करती है। ऊर्ध्वा में रहती है, हमारे ऊपर अपनी अमृत की वृष्टि कर देती है कहीं मेघों से वृष्टि करती है, उससे वनस्पति उत्पन्न होती है।

मुनिवरों! देखो, यह तो चर्चा मैं कल करूंगा कि ऊर्ध्वा में कौन सी देवी का भुजंगृतियों

भुजाओं में क्या क्या कार्य करती है? विचार क्या मुनिवरों! देखो, प्राची में रहती है, तो प्रकाश देती है। मानो एक भुज तेरा प्राची में रहता है, तो प्रकाश में अग्रतम दक्षिणाय में रहता है विद्युत तरंगें देता है और मानो उदीची में रहता है, तो वह प्रकाशाम, ज्ञान देती है। मुनिवरों! देखो, ये आभा में प्रतीची में ये अन्न का भण्डार बन करके प्राणशक्ति का आधार है। क्योंकि अन्नादि, अन्न और प्राण के सहयोग से यह मानव का शरीर चलता है, संसार गति कर रहा है, ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। प्राण भोक्ता बन करके भोग्य वस्तु को प्रदान कर रहा है।

पुत्रो! यह है आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आभा में रमण करते हुए, उस महामना देव की मत्ति का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। कल बेटा! मैं तुम्हें यह उच्चारण करूंगा कि ब्रह्मा के कमण्डलु से इस देवी का अवतरण इस पृथ्वी पर, भू मण्डल में कैसे होता है? इसका वैज्ञानिक स्वरूप क्या है? और भौतिक स्वरूप क्या है? दोनों स्वरूपों का वसन में कल कर सकूंगा। आज का वाक् समाप्त! अब वैदिक पठन पाठन होगा। श्री एम.एल. अग्रवाल एच 3/2 रेवौली स्टेट, शांटली कलकत्ता 64 समय : रात्रि 7।

१४ 17 02 1980 पुष्प 36 ग्रहण का स्वरूप

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माना गया है।

जो उस परमपिता परमात्मा को वर लेता है अथवा उसको अपना वरुण बना लेता है, वह मानव इस संसार सागर से पार हो जाता है। परन्तु आज का हमारा एक एक

वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञानमयी संसार का वर्णन कर रहा है, उस वरुण की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, इसी प्रकार यह संसार और प्रत्येक वेदमन्त्र की जो एक एक शब्दावली है, वह उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन कर रही है।

जब हम यह विचारते हैं कि प्रभु ने इस विज्ञानमय जगत् अथवा विज्ञान में एक महान् धारा का वर्णन किया है, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह परमपिता परमात्मा इस प्रकृति के अथवा इस ब्रह्माण्ड के एक एक कण कण में व्याप्त हो करके इसे संचालन कर रहा है। जब हम यह विचारने लगते हैं, तो प्रत्येक वेदमन्त्र में तुम्हें यही वस्तु प्राप्त होने लगेगी। आज मैं तुम्हें विज्ञान के स्वरूप की चर्चाओं में ले जाने के लिए आया हूँ। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। मेरे प्यारे! महानन्द जी नाना प्रकार के प्रश्न करते रहते हैं, परन्तु उनकी विचारधाराओं में ऐसी विडम्बना तथा एक ऐसी महत्ता रहती है, जिसके ऊपर हम परम्परा से विचार विनिमय करते चले आए हैं। आज भी उनका महत्वपूर्ण एक वाक्य, एक प्रश्नावली आ रही है और आती रहती है। आज भी उसकी प्रेरणा मुझे प्राप्त हो रही है। वह प्रेरणा क्या है? गृणाम् बृहेः वृणातीः अस्ताहम् इस वेद की आख्याकिया के आधार पर है। वेद की आख्याकिया यह कहती है कि ये जो प्रभु ने एक अमूल्य जगत् का निर्माण किया है, एक दूसरा जो मण्डल गतिशील हो रहा है, वह एक ऐसा चक्र चल रहा है नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों का, कि मुनिवरों! देखो, उसको कोई भी वैज्ञानिक मापने वाला नहीं हुआ। हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो उसके विज्ञान को मापने वाला हो। कोई भी मानव ऐसा नहीं हुआ जो उसके मन्तव्य को जानने वाला हो। परन्तु देखो,! जो जान लेता है, वह उसी को प्राप्त हो जाता है। हमने ये वाक्य बेटा! बहुत पुरातन काल में प्रकट करते हुए तुम्हें कहा था।

रहा संसार में यह कि परम्परा से वैज्ञानिक होते आए हैं। परम्परा से विज्ञान की धाराएं मानव के मस्तिष्कों में सदैव से जैसे नदी के जल का प्रवाह होता है, ऐसे मानव के

जीवन में विज्ञान गति करता रहता है। तो विज्ञान मानव का एक मौलिक गुण कहलाया जाता है। तो इसीलिए विज्ञान में जाना कोई आश्चर्य का वाक्य नहीं है और विज्ञान को जानना विज्ञान में जाना ये भी कोई आश्चर्य नहीं है परन्तु देखो, उस विज्ञान को विस्तार और सात्विकता से जानना, यह आश्चर्यजनक है।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि परमपिता परमात्मा वैज्ञानिक हैं। जिसने विज्ञानमयीशाला का निर्माण किया है, जिससे मानव के मस्तिष्क की रचना की है, जिस मेरे देव ने इस परमाणु शक्ति को निर्मित किया है जो गति कर रहा है। मैंने बहुत पुरातन काल में ये उच्चारण करते हुए तुम्हें कहा था कि संसार आभ्याम् गतम् ब्रह्मेः देवाः। मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय देवर्षि नारद और महात्मा ध्रुव दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान थे और दोनों अपनी स्थली पर विद्यमान हो करके यह विचार विनिमय कर रहे थे कि महाराज! यह जो देखो, राहुणः गृहिः वृणाताम् केतु हिरणाताबृहे वृतान् यशतोः, महात्मा ध्रुव ने यह प्रश्न किया देवर्षि नारद से कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ कि राहवा केतुः वृणातम् बृहिः मानो यह जो राहू और केतु जो दो नक्षत्र हैं इनका मानव के जीवन से क्या सम्बन्ध है। ?

तो मेरे पुत्रो! देखो,! उस समय देवर्षि नारद मुनि ने यह कहा था कि राहू और केतु का जीवन में क्या सम्बन्ध है? उन्होंने एक वाक्य कहा कि यदि दोनों की भिन्न भिन्न तरंगें आती हैं तो वह राहम बृहिः कृताम् देवाः उसकी जो कांति है यदि चन्द्रमा की आभा में परणित होती हैं, दोनों का मिलान हो जाता है, तो कुछ वायु मण्डल में एक विष (जहर) की उत्पत्ति हो जाती है। वही राहू और केतु दोनों की किरणें यदि चन्द्रमा को न हो करके वे पृथिवी की आभा पर हो जाती हैं तो वहाँ प्राणवर्द्धक वायु का सञ्चार होने लगता है। यदि वही किरणें सूर्य की ओत प्रोत करती हुई और चन्द्रमा की दोनों के मध्य में यदि चन्द्रमा की तरंगें आ जाती हैं अथवा चन्द्रमा आ जाता है तो उस समय प्राण वायुवर्द्धक जो है उसकी सूक्ष्मता हो जाती है।

इसीलिए संसार में माता के गर्भ स्थल में हम जैसे जो प्यारे पुत्र हैं, जो गर्भस्थल में विद्यमान रहते हैं, उनकी एक रुवेण केतुक नाम की नाड़ी होती है जो माता के रसना

के और ब्रह्मरन्ध्र से वह नाड़ी चलती है और बालक का जो ब्रह्मरन्ध्र होता है उस नाड़ी से उसका समन्वय होता है। समन्वय होता हुआ जब यदि माता जागरूक रहती है तो उस नाड़ी में रस आता है। प्राण वर्द्धक जो किरणें आ रही हैं उनमें सूक्ष्मता हो जाती है। तो इसलिए माता को उस काल में प्रायः जागरूक रहना चाहिए और माता को गायत्री और मां कृतियों का और प्रभु का चिन्तन करना चाहिए।

आज मैं तुम्हें ऐसा वाक्य प्रकट करने लगा हूँ, जो आभा से सम्बन्धित रहता है। मुनिवरों! देखो, वही राहू और केतु का प्रसंग चल रहा है, तो देवर्षि नारद मुनि ने यह कहा है कि पृथिव्याम देवः प्रमाणस्व हेः यदि सूर्य की किरण और चन्द्रमा की त्रातकेतु और राहू और केतु दोनों की धाराएं मिलकर यदि पृथ्वी में आवेश करती है। तो पृथ्वी विष बनने लगती है। यह जो पृथ्वी विष बनने लगती है, तो उसकी शक्ति के लिए प्रत्येक ग्रह में याग होते हैं। यागों का अभिप्राय यह है कि सुगन्ध होना, विचारों की सुगन्धि देना और देखो,! उस समय पदार्थों की सुगन्धि देना बहुत अनिवार्य हो जाता है। उस समय दिवस की रात्रि बन जाती है और उस दिवस की रात्रि बन जाने से दोनों की आभा में अन्तर्द्वन्द्व आ जाता है। तो इसीलिए पृथ्वी को सुगन्धित करना यह मानव का कर्त्तव्य कहलाया गया है। इसीलिए आज मैं तुम्हें बेटा! देवर्षि नारद ने जो कहा है उसे वर्णन कर रहा हूँ।

नारद जी ने यह कहा है, पुत्र! हे ध्रुव! वह जो राहू और केतू का जो जीवन से सम्बन्ध है। यह बाल्यकाल में होता है। परन्तु बाल्यकाल में माता के गर्भ स्थल में और रहा यह कि जब दिवस की रात्रि बन जाती है तो नेत्रों को, क्योंकि नेत्रों का सम्बन्ध सूर्य से होता है। सूर्य से नेत्रों का सम्बन्ध है, प्रकाश देता है। आत्मा से तो विशेष समन्वय होता ही है, परन्तु देखो,! सूर्य की किरणों से विशेष होता है। जहाँ तक पदार्थवाद का सम्बन्ध है वह सब नेत्रों में जो प्रकाश आता है, दृष्टिपात कर रहा है, व्यापार कर रहा है, यह सर्वत्र नेत्रों का सम्बन्ध सूर्य से होता है और सूर्य से जो नाना प्रकार की किरणें जाएं वे अप्रोत हो जाएं, राहू और केतु की किरणों के द्वारा ऐसा प्रायः होता है कि नेत्रों में कुछ कृति की सूक्ष्मता हो करके ज्योति का सन्देह बना रहता है। तो इसीलिए हमें उससे

सावधान अथवा सतर्क रहना चाहिए, विचारशील रहना चाहिए।
आज का हमारा वाक्य क्या कि देवर्षि नारद मुनि ने जो कहा, नारद मुनि कहते हैं कि मानव के नेत्रों का सम्बन्ध सूर्य से होता है और सूर्य से जब क्योंकि वहीं तक होता है जहाँ तक सूर्य की सीमा होती है, वास्तव में तो नेत्रों का सम्बन्ध आत्मा से रहता है, परन्तु आत्मा से समन्वय होने के कारण तो मुनिवरों! देखो, उसकी धाराएं पृथ्वी पर प्रदीप्त रहती हैं, और उसका आत्मा से समन्वय होता है।
तो मेरे पुत्रो! विचार आता है कि हमें आत्मा को जानना है और आत्म चिन्तन करना है प्रत्येक मानव के द्वारा। हम तो परम्परा से यही कहा करते हैं कि मानव के जीवन का जितना भी समन्वय है, वह आत्म चिन्तन लगा रहता है। कितना भी मानव प्रयत्न करता रहे, कितना भी संसार में मानव विलासिता में चला जाए, ममता में चला जाए, किसी भी क्षेत्र में चला जाए। परन्तु जब आत्म चिन्तन का समय आता है, आत्म चिन्तन की वार्त्ता आती है तो आत्मा उसके लिए समय समय पर प्रेरणा देता रहता है अथवा उसे बाध्य करता रहता है। इसीलिए आत्मा से मानव के जीवन का समन्वय होता है। जितना भी भौतिक पिण्ड है इन महान् धाराओं से इसकी रचना है तो इसीलिए इसका उन धाराओं से समन्वय रहता है।
आओ मेरे पुत्रो! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? विचार यह कह रहा है कि देवर्षि नारद मुनि ने यह कहा कि हे बालक ध्रुव! मानव के जीवन का सम्बन्ध देखो, राहू और केतु दो मण्डल हैं उनकी विवेचना तो जब मन्त्र आयेगा तो मैं पुनः ही प्रगट कर सकूंगा, आज तो मैं केवल भूमिका बनाना चाहता हूँ और भूमिका बनाने के लिए आया हूँ और वह भूमिका क्या है? कि राहू और केतु का जो सम्बन्ध है वह मानव के जीवन से, और प्रायः माता की नस नाड़ियों से भी होता है। तो इसीलिए देखो, हमें विचार करना चाहिए, चिन्तन करना चाहिए। रहा यह कि सूर्य की आभा में कहीं चन्द्रमा आ गया है, कहीं चन्द्रमा की में सूर्य आ गया है, यह कोई ऐसा वाक्य नहीं है। यह तो सदैव बना ही रहता है, क्योंकि मानव के इस वायुमण्डल का जितना समन्वय मानव के विचारों से रहता है, इतना ग्रह की गतियों से नहीं होता क्योंकि ग्रह की गति प्रायः

होती रहती है। वे तो अपनी गतियों से रमण करते रहते हैं। वह प्रभु का विधान है, वह प्रभु का नियम है। वे अपने नियम के आधार पर प्रायः गति करते रहते हैं।
जब समय आता है एक दूसरा मण्डल, मण्डल से समन्वय करता है वह प्रलय काल हो जाता है। परन्तु रहा यह कि संसार आभा में रमण करता रहता है। रहा विज्ञान का वाक्य। प्रत्येक मानव विज्ञान के युग में रमण करता रहता है। परन्तु विज्ञान को जानने वाला मानव यह जानता ही नहीं। यह जानना बहुत अनिवार्य है कि ये जो मण्डल है ये कितनी गति से गतिमान् हैंत्र कितनी गति इन्हें प्राप्त हो रहीह ै? कितनी अग्नि इन्हें प्राप्त होती है? कितनी वायु प्राप्त होती है? कितना पार्थिव तत्व इसमें विद्यमान है और जब विज्ञान सफलता को प्राप्त होता है जबकि विज्ञान उसके द्वारा दोनों प्रकार का होता है।
दोनों प्रकार के विज्ञान में रमण करने वाला सर्वत्र विज्ञान में तो नहीं, परन्तु देखो, अंत में मौन हो जाता है विचार विनिमय करने वाला। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि एक एक वेदमन्त्र में त्रि वाद कहलाया जाता है। एक वेदमन्त्र है उसमें रूढ़ियां विद्यमान हैं, जिन रूढ़ियों को मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय कराया। मैंने तुम्हें वर्णन कराया कि मानव कैसे विचारवान् बने? कैसे व्यवहार में कुशल बन सकता है? कैसे मानव वायुमण्डल को वातावरण को पवित्र बना सकते हैं? मुनिवरों! एक दूसरा मानव जब विवेक से रहता है। माता हो, पितर हो अथवा पुत्र हो कोई भी हो जब उसका व्यवहार महान् बन जाता है, पवित्र बन जाता है, उसके पश्चात् वह विज्ञान के मार्ग की प्राप्ति करता है। अब विज्ञान में जाता है। जैसे एक मानव सन्ध्या करने लगता है और वह सन्ध्या के कुछ मन्त्रों का उच्चारण करता है। उच्चारण करते हुए वह सबसे प्रथम अपने को बनाना ही चाहता है।
सबसे प्रथम संध्या में वह प्रत्येक इन्द्रिय को पवित्र बनाना चाहता है। उसके पश्श्चात् वह देखो, प्रभु की महिमा को जानने के लिए आया है। प्रभु की महिमा को जानना चाहता है, परमाणुओं में रमण करना चाहता है। परमाणुओं में रमण करने के पश्चात् यन्त्रों का निर्माण करता है। यन्त्रों का निर्माण करने के पश्चात् उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती। उसके

पश्चात् एक मानव दूसरे मानव को नष्ट करने के लिए आभा में यन्त्रों का निर्माण करता रहता है। परन्तु आगे चल करके वही मानव आगे चलता है जो अग्रणीय बनता है। अग्रणीय बन करके वह आध्यात्मिकवाद में, यौगिकवाद में प्रवेश करता है। आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता हुआ वह प्राणों में अपने को समाहित करने का प्रयास करता है। यह प्राण गति कर रहा है, प्राणों में यह सर्व ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। प्राणों में ही लोक लोकान्तर अपनी अपनी आभाओं में गति कर रहे हैं। प्राण ही हैं जो दूषित हो करके मानवप आप्रत बना करके देखो, मानव को अपंग बना देता है। प्राणों में सर्वत्र ब्रह्माण्ड क्या? मुनिवरों! देखो, एक एक परमाणु पिरोया हुआ है और पिरोया हुआ एक एक परमाणु गति कर रहा है, जैसे लोक गति कर रहे है।

लोक लोकातरों की तरह ही मानवप के चित्र गति कर रहे हैं जैसे चित्र गति कर रहे हैं ऐसे दृष्टि भी गति कर रही है। ऐसा विज्ञान जब मानव के समीप आता हे, तो आध्यात्मिकवाद में वही मानव प्रवेश करता है। आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं? जहाँ प्राणम् बृहेः वृणाति असतोः। मेरे प्यारे! देखो, जहाँ प्राण और मन दोनों को एक सूत्र में लाया जाता है। एक सूत्र में जो गतिमान है, जिससे प्रकाश आते ही चंचल हो जाता है। और एक गति आते ही विभाजन हो जाते हैं, इन दोनों का समन्वय करना योगी के लिए बहुत अनिवार्य है।

मुनिवरों! देखो, एक वैज्ञानिक विभक्त कर रहा है। और विभक्त करता हुआ, प्रत्येक वस्तु का विभाजन करता हुआ दृष्टिपात करता हुआ उसको एकाग्र लाने का वह भौतिकवाद में प्रयास कर रहा है, वह यन्त्रों का निर्माण कर रहा है। परन्तु एक आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता जो एक वेदमन्त्र को ले करके एक वेदमन्त्र की आभा को ले करके वह यौगिकवाद में प्रवेश करत रहा है। वह जो विभक्तम् ब्रह्मेः कृताम् प्रकृति का जो सूक्ष्म तंतु है और जो प्राण स्वरूप है जो इन दोनों को एक सूत्र में ला करके जो अन्तर्हृदय गुफा में विराजमान होने वाली आत्मा है, उसका विज्ञान से भी कोई समन्वय नहीं रहता, विज्ञान भी उसके अन्तर्गत आता है और चेतना उसके अन्तर्गत आ करके अपने

में ब्रह्म को और ब्रह्म में अपे को दृष्टिपात करने वाला मृत्यु पर विजय हो जाता है। मेरे प्यारे! हम संसार में आए हैं, तो मृत्यु पर हमें विजयी होना है। मृत्यु पर विजयी कैसे बनेंगे जब तक हम अपनी जिस प्राण क्रिया के कारण यह संसार गति कर रहा है उसको नहीं जान पायेंगे। अम्दणिः कृताम् देवः मेरे प्यारे! महानन्द जी यह उच्चारण कर रहे हैं कि वैज्ञानिकों ने आधुनिक काल में ऐसा कहा है कि अमृतम् सम्भवतिः देवाः कि सूर्य की आभा में चन्द्रमा के राहू और केतू के आने से यह संसार नेत्र हीन बन जाएगा।

मेरे पुत्रो! मैंने तुम्हें पुरातन काल में कहा है। अब मैंने नारद जी के शब्दों को, नारद जी की विवेचना प्रगट की है, नारद जी ने यह कहा कि यह सब मानव के लिए अपवाद है। क्योंकि अपवाद इसीलिए है क्योंकि नेत्रों का सम्बन्ध जैसा सूर्य से है ऐसा ही मानव की आत्मा से है। आत्मा तो स्तः एक चेतना है उसको कोई चेतनाहीन बना नहीं सकता। रहा यह कि चन्द्रमा की, सूर्य की किरणों में दूषितपना प्रायः आ सकता है। परन्तु ये प्रभु ने इसीलिए प्राणी बनायें हैं। वे इसीलिए बनाएं हैं कि प्राण वर्द्धक वायु को त्यागते हैं और विनाश को अपने में धारण कर लेते हैं।

वाह रे! मेरे देव! तू कितना विचित्र है! ऐसे ही सूर्यमण्डल के आँगन में रहने वाले कुछ मण्डल भी हैं जो किरणों की आभा कृतियों में ले लेते हैं। आज मैं तुम्हें इस युग में ले जाने नहीं आया हूँ कि कौन कौन सा मण्डल किस किस मण्डल की दूषित वायुमण्डल को अपने में शोषण कर लेता है।

आज मैं पुत्रो! तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ, मेरे पुत्र महानन्द जी ने मुझे ये वर्णन कराया कि आधुनिक जगत् के वैज्ञानिकों, आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने ऐसा उन्होंने स्वीकार किया। परन्तु देखो, हमने यह उत्तर दिया कि यह अपवाद है। अपवाद का वाक्य अप्रवरित रहता है क्योंकि उनके अनुमान का वाक्य है। अनुमान सदैव सत्य नहीं हुआ करता है, अनुमान सत्य और असत्य दोनों का मिश्रण होता है अथवा दोनों का समन्वय होता है। तो इसीलिए उसमें अपवाद रहता है।

रहा यह अकृतो दृष्टानि गतानि जैसा वेद की आख्याकिया कहती है कि संसार में प्रत्येक

वस्तु ज्ञान और विज्ञान से गुंथी हुई रहती है। हमें उसको जानना बहुत अनिवार्य रहता है। जब तक हम विज्ञान में अपने को पूर्ण स्वीकार नहीं करते जब तक हमें आत्म तत्व का ज्ञान न हो, विज्ञान में अधूरापन रहता है। अणुपरमाणुओं को जानना, उन्हें एकत्रित कर लेना यह पुत्रो! कोई आश्चर्य का वाक्य नहीं हैं परन्तु देखो, आश्चर्य वह है जो मानव मृत्यु को विजय करता है।

जो मृत्यु को जानता है और जान करके उस पर विजय करता है, वह भय से रहित हो जाता है। उसे किसी प्रकार की ग्लानि नहीं रहती अपने जीवन से भी ग्लानि नहीं रहती। वह मानव संसार में आकर सफलता को प्राप्त होता है।

आओ! मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैंने अपने विचारों की तुम्हें एक भूमिका बनाई है और भूमिका का विस्तार तो मैं कल ही प्रगट करूंगा क्योंकि कल कुछ वेदमन्त्र इस प्रकार के आएंगे। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी आज नहीं तो इससे पूर्व वैज्ञानिकों के विचार प्रकट करेंगे आधुनिक काल का विज्ञान क्या कहता है।

परन्तु आज का हमारा विचार यह है हम एक वेदमन्त्र को तीन रूपों में जब तक विभक्त नहीं करेंगे, तब तक हम वेदमन्त्र को ही नहीं जान सकेंगे। क्योंकि व्यवहार में वेद को जान लिया और विज्ञान में नहीं जाना और विज्ञान में जान लिया तो योग में नहीं जाना तो तब तक हम प्रकाश को नहीं जान सकते। वेद नाम प्रकाश का है।

प्रकाश त्रिविधाः सुतुम् त्रिपदार्थों और त्रि वाक्यों से हम जान सकते हैं। इसलिए त्रि होना बहुत अनिवार्य है। जैसा बेटा! देखो, वर्णन किया, व्यवहार, विज्ञान और इसके पश्चात् यौगिकवाद हम इसके बिना वेद की मीमांसा नहीं कर सकते और वेद रूपी प्रकाश को हम जान नहीं सकते। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा के ऋषियों की वार्त्ताएं आती रहती हैं। मुझे समय मिलेगा, कल तुम्हें देवर्षि नारद और महात्मा ध्रुव दोनों का जो आपस में शास्त्रार्थ होता था इस सम्बन्ध में उसकी विवेचना प्रगट कर सकूँगा।

आज का वाक् केवल क्या? मुनिवरों! देखो, आज का विचार हमारा यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और हम उस चेतन आत्म तत्व को जाने

हुए संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

संसार सागर से पार हम उसी काल में हो सकते हैं जब बेटा! हम उसे जपना वरुण बना लेते हैं। उसे वर लेते हैं। उसे वरे बबिना हम परमपिता परमात्मा को प्राप्त नहीं हो सकते, अप्रतम् देवा हम पार अबृहिःवृणो.... हम पार नहीं हो सकते, इस संसार से। पर है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान लाक्षागृह बरनावा! समय दिन के 3 बजे!

१५ 18 02 1980 पुष्प 36 सूर्य विज्ञान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वदे मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाया जाता है, उस देव की महिमा का प्रायः उस आभामय जो प्रकाशमय माने जाते हैं।

हमने बहुत पुरातन काल में वाक्य प्रकट करते हुए कहा था कि प्रत्येक वेदमन्त्र में उस देव की आभा का वर्णन होता रहता है। जिस भी वेदमन्त्र को विचारने लगोगे उसी वेदमन्त्र में तुम्हें संसार का विज्ञान दृष्टिपात आने लगेगा। परन्तु केवल विज्ञान ही नहीं, उस में संसार की जितनी भी आत्मीयता की वार्त्ता है, वे भी तुम्हें दृष्टिपात आने लगेगी। जितना भी संसार का यह अनुपम प्रकाश है, चाहे वह प्रकाश सूर्य का प्राप्त हो रहा है, चाहे वह प्रकाश चन्द्रमा को प्राप्त हो रहा है। चाहे वह किसी भी मण्डल को प्राप्त हो रहा है, उस प्रकाश की वार्त्ता तुम्हें उसी में दृष्टिपात आने लगेगी।

क्योंकि प्रत्येक जो शब्द है, जितना भी शब्दों का आकार है उस शब्दों के आकार में कोई न कोई रहस्य होता है और वह रहस्य एक दूसरे से कटिबद्ध रहता है क्योंकि वही जो शब्दों की रचना है एक दूसरे से उसका समन्वय होता है।

इसी प्रकार जितना भी लोक लोकान्तरवाद है तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, जितना भी यह मण्डल वाद है, यह एक दूसरे से कटिबद्ध होता हुआ दृष्टिपात हो रहा है। इसी प्रकार

जितना भी प्राणी मात्र है चाहे मानव! हो, या वह किसी भी योनि में रहने वाला हो सबका एक दूसरे की योनि से मानव का समन्वय हो रहा है। यह तो तुम्हें दृष्टिपात आ रहा होगा।

जैसे नाना प्रकार के खनिज हैं, वे खनिज भी एक दूसरे से कटिबद्ध हैं, एक दूसरे को तपा रहे हैं। एक दूसरे का एक दूसरे से मिश्रण हो करके और भी धातुवाद का एक विकास होता है, उसमें पौष्टिकता आती है, उसमें अग्नेयता आती है। इसी प्रकार यह जो प्रभु का अमूल्य जगत है, यह कैसा अनुपम है, इसके ऊपर जब हम विचार विनिमय करते हैं ये प्राणी कैसे एक दूसरे से कटिबद्ध हो रहे हैं, एक दूसरे परमाणु से परमाणु का मिलान हो रहा है।

आज मैं तुम्हें बेटा! एक ऐसी आश्चर्यमयी वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ। इस अन्तरिक्ष में अब तुम पहुंचोगे और गम्भीरता में चले जाओ! पृथ्वी के गर्भ में जाओगे, तो और ही कुछ तुम्हें प्रतीत होने लगेगा। जब तुम अन्तरिक्ष में जाओगे, तो शब्दों के तुम्हें, चित्रों के चित्रण तुम्हें दृष्टिपात होने लगेगा। वहाँ तुम्हें कोई मार्ग भी प्राप्त नहीं हो सकता।

इसीलिए मेरे पुत्रो! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है? वेदमन्त्र यह कह रहा है कि इस मेरे प्यारे! प्रभु का अमूल्य यह संसार महत्ता में परिणत हो रहा है? वाह रे देव! तू कितना अमूल्य रचनाकार है! तू कैसा रचनामय है? इसकी रचना कण कण में जब तुम चिन्तन करोगे तो एक एक कण तुम्हें उसके अस्तित्व में दृष्टिपात होगा।

आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा था? आज मैं तुम्हें ये वर्णन करने आया हूँ कि यह संसार कैसे एक दूसरे से कटिबद्ध हो रहा है? एक दूसरे से कैसे व्यापार में कैसे ईश्वरता से मुनिवरों! कटिबद्ध हो रहा है? मेरे प्यारे! यह नाना प्रकार का जो लोक लोकान्तर वाद है। एक वेदमन्त्र में तुम्हें एक दूसरे शब्द की प्रतिक्रिया में एक वेदमन्त्र का निर्माण हो जाता है। एक वेदमन्त्र मय बनता है। शब्द की रचना होती है। नाना शब्दों के आकार का बन करके शब्द को उसके रचना में ला करके अपने जीवन के व्यापार में ला रहा है, उच्चारण करने लगता है।

मेरे प्यारे! इसी प्रकार जैसे वेदमन्त्र की एक कड़ी हूँ, वेदमन्त्र है, वह नाना प्रकार के

शब्दों से कटिबद्ध हो करके उसे हम वेदमन्त्र उच्चारण करते हैं। वह वेदमन्त्र कहलाता है। वह वेदमन्त्र क्यों कहलाया जाता है। ? वेदमन्त्र इसीलिए कहलाया जाता है। क्योंकि वह वेदाम बृह्मः प्रकाशः रेवक्कताम् दधिः वृणास्ते उसे वेदमन्त्र इसीलिए कहते हैं कि वह अन्धकार से प्रकाश में ले जाता है। अन्धकार से जो प्रकाश में ले जाता है, उसमें मानवीय रचना है, मानवीय व्यापार है, विज्ञान मयी धरा है। तो इसीलिए मुनिवरों! वह शब्दों की जो कड़ी बन गई है, इसीलिए हमारे यहाँ उसे वेदमन्त्र कहा जाता है। जो मानव को प्रकाश में ले जाता है तो प्रकाश में हम जाना चाहते हैं। संसार का कोई ऐसा प्राणी नहीं है जो प्रकाश को नहीं चाहता है।

मेरे प्यारे! देखो,! प्रकाश को ही जानना चाहता है। प्रकाश प्रकाश को जानना चाहता है यह कैसी अद्भुदता है? यह कैसी महत्ता है। मानव जो चेतनामय है, एक परमाणु है, एक जीवाणु है, वह प्रकाश है, उसमें चेतना है। परन्तु वह चेतना का पिपासु बना हुआ है मुनिवरों! एक मानव है और वह मानव चेतना बद्ध है, वह भी चेतना का पिपासु बना हुआ है। यह संसासर कैसा चेतना का पिपासु बना हुआ है? यह कैसा आश्चर्यमय जगत आज हमें दृष्टिपात आ रहा है।

मैं बेटा! इसको आज केवल एक भूमिका उच्चारण करूं या यह क्या वस्तु तत्त्व है? इसके ऊपर मानव को चिन्तन करना है। एक मानव कहता है मनः वृतानि देवाः मैं आज वेदमन्त्र को वाणी से उच्चारण करना चाहता हूँ। वाणी को सजातीय बनाना चाहता हूँ।

मेरे प्यारे! यह वाणी कैसे सजातीय बनती है? जब इसमें ज्ञान होगा, इसमें प्रकाश होगा। वह केवल कण्ट चक्र तक ही सीमा नहीं होती। उसका हृदय रूपी गुफ से उसकी कड़ी लगी हुई है। उससे उसका समन्वय हो रहा है। तालू रचना से ही उसकी रचना नहीं है उसकी रचना चित्त के मण्डल से है। चित्त के मण्डल के भी दोनों प्रकार के स्वरूप माने जाते हैं एक बाह्य जगत् है, एक आंतरिक जगत है।

उस बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय होता है और दोनों का समन्वय हो करके शब्दों की रचना में उसकी कड़ी बनती है, शब्द की रचना बन जाती है। वह

ही शब्द बन करके नाना प्रकार के रूपों में हमें दृष्टिपात होने लगता है। यह केसा अद्भुत उस मेरे प्यारे! प्रभु का विज्ञान मय है। उसको ज्ञान और विज्ञान मय माना जाता है।

आज मैं पुत्रो! तुम्हें कोई विशेष चर्चा प्रगट नहीं करूंगा, न मैं तुम्हें विशेषता में ले जाना चाहता हूँ। यह बहुत गम्ीीरतम् रहस्य माने जाते हैं। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र जो कह रहा है, आज तुम्हें वहाँ ले जाना चाहता हूँ। देवर्षि नारद अबृहेः वृणाम् स्तुति और महात्मा ध्रुवों विनमय होता रहता है। ध्रुव प्रश्न करते थे और देवर्षि नारद उनका उत्तर देते थे।

एक समय बेटा! महात्मा ध्रुव भयंकर बन में तपस्या करते चले गए। वह तपस्या क्या थी? वे यह जानना चाहते थे कि मैं अपनी इन्द्रियों पर संयम करता हुआ, मैं अपने को मौन बना करके, मैं नाना लोकों का यात्री बनना चाहता हूँ। यात्री बनने के लिए वह मौन हो करके तपस्या करने चले गए।

आज जब वह तप करने लगे, तो वह अन्न इत्यादि का पान करते वे स्वयं तप करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है पुत्रो! कि वे जप तप करते थे तो तप करते करते उन्हें बारह वर्ष हो गए। 12 वर्ष के पश्चात् वे जब अपनी तपस्या से नारद मुनि के चरणों में ओत प्रोत हुए।

नारद मुनि ने कहा, कहो बाल्य! तुम्हारा तप पूर्ण हुआ? उन्होंने कहा कि महाराज! मुझे बारह वर्ष हो गए और 12 वर्ष की अनुभूति में मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है कि यह कि यह जो परमाणुवाद है, अणुवाद है, इससे आगे भी कोई न कोई वाद अवश्य है। उस वाद के लिए मैं इन्द्रियों पर संयम करता रहा और इन्द्रियों के विषयों पर अनुसन्धान करता रहा। परन्तु अनुसन्धान में एक ही वाक्य विचार में आया है कि हम बृहिः वृणाम् दधुः आस्तिः कि हम अपने को लोकों में ले जाना चाहते हैं। परन्तु लोक लोकान्तररों का हमें यह प्रतीत नहीं होता कि हम अपनी उड़ान में कितनी सफलता को प्राप्त हो सकते हैं? यह हम आप से जानना चाहते हैं।

देवर्षि नारद बोले, हे बाल्य! तुमने अब तक तप में कुछ नहीं जाना! उन्होंने कहा, तपं

हिरणास्तामि अकृतामन् देवत्याम् देवाः तप में तो वही वाक्य आते रहते हैं, जिन तपों में ही हमें जाना है। तपस्यम् बृहेः कृताः अवस्तम् देवाः मैं यह जानना चाहता हूँ भगवन्! कि सूर्य की जो नाना प्रकार की किरणें हैं, एक वेदमन्त्र ऐसा आया है कि अस्वताम् चन्द्रमाः छायस्ताम् देवाः, पृथ्वी अस्वताम् छायाः वृताम् देवाः। सूर्याणि गच्छताम् स्वतः प्रकाशाम् बृहिः वृताम् देवाः अस्वताम् मनुवंचतम् अर्भतम् अक्रोति आभ्याम् देवत्याम् लोकाः कि हे प्रभु! यह वेदमन्त्र यह कहता है कि सूर्य के आँगन में आ करके यह चन्द्रमा की छाया आ जाती है और कहीं पृथ्वी की छाया आ जाती है और कहीं वे जो कृतिः असतोः देवाः देखो, उनकी भी छाया आ जाती है, चन्द्रमा बिना छाया के रहता है। क्या यह वेदमन्त्र यथार्थ है।

नारद मुनि ने अपने विचारों का विश्लेषण किया और उन्होंने कहा, हे बालक! यह छाया का जो स्वरूप तुमने वर्णित किया है कि छाया एक दूसरे पर आती रहती ह। ै तुम्हें यह प्रतीत है कि एक प्राणी दूसरे की छाया में कटिबद्ध रहता है। जैसे वृक्ष है, वृक्ष अपनी ही छाया में आच्छादित होता रहता है। इसी प्रकार प्राणी है वह अपने ही शरीर की छाया में आच्छादित छायावान् हो रहा है। इसी प्रकार एक मानव देखो, एक दूसरे के आँगन में आ करके स्वतः छायावान् हो रहा है।

परन्तु रहा यह वाक्य सम्भवतिः दृश्यणो वे वाहः यह सूर्य अपने में छायावान नहीं है, यह कैसे? हम यही जानना चाहते हैं। जैसे चन्द्रमा है और राहू और केतू है इन सबकी छाया आती रहती है। सबका एक दूसरे से सम्बन्ध होता रहता है। इसी प्रकार सूर्य का भी होता रहता है। परन्तु सूर्य की छाया इसीलिए बनती रहती है, जो मण्डल एक दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश से पृथ्वी प्रकाशित हो रही है, इसी प्रकार जैसे मानव के नेत्र वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं, जो संसार को, भौतिक जगत् को दृष्टिपात कर रहे हैं।

इसी प्रकार चन्द्रमा छायावान् बना रहा है। वह अपने में अरुचा कहलाता है। परन्तु सूर्य को ऐसा क्यों कहा है? सूर्य इसीलिए इसे कहा है कि यह जो सूर्य मण्डल है यह प्रकाशमय कहलाता है। इस पर विशेष नाना प्रकार की अग्नि की जो तरंगें हैं वे इसे

तरंगित करती रहती हैं और वे इसे तरंगित करके, अग्नि अपना इसको अधिपति बना करके यह मण्डलों को प्रकाशित बनाती रहती है। चाहे इससे पृथ्वियां प्रकाशित हो रही हों और चाहे इसी सूर्य से शनिमण्डल प्रकाशित किया जा रहा हो।

एक समय, मुझे स्मरण है, देवर्षि नारद ने एक यन्त्र का निर्माण किया था, और उस यन्त्र में वे दोनों ये दृष्टिपात करने लगे थे। हमारे यहाँ कुछ ऐसा आता है, वैदिक साहित्य को विचारने से ऐसा प्रतीत है कि यह जो शनिमण्डल है इस शनिमण्डल को, एक ही शनिमण्डल को पांच सूर्य प्रकाशित करते हैं। जो पांच सूर्य एक ही मण्डल को प्रकाशित करते हैं, परन्तु वह कितना बड़ा मण्डल है? कितना विशाल है? परन्तु अपना उसे स्वतः प्रकाश न होने के कारण वह स्वतः सूर्यों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है।

परन्तु यह जो सूर्य है, यह सूर्य, चाहे नाना सूर्य हों, परन्तु ये अग्नि के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसीलिए ये दूसरों की छाया नहीं बन पाते हैं। यदि ये दूसरे की छाया बन जाएं तो, इसकी छाया तो नाना मण्डल बन सकते हैं। ऐसा मुझे स्मरण आया है। मुझे मेरे पुत्र, महानन्द जी ने वर्णन कराया। आधुनिक काल के जगत् की भी उन्होंने चर्चाएं की हैं और यह कहा है कि आधुनिक काल जगत् का जो वैज्ञानिक है, उन्होंने ऐसा स्वीकार किया है। देखो, जब तक चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य और राहू और केतु के मध्य जब छाया या प्रतिनिधित्व होता है,

तो यह पृथ्वी में एक ऐसी उष्ण शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसके उत्पन्न होने से जितना प्राणी मात्र विषैला है वह बाह्य वायुमण्डल में आ जाता है।

ऐसा कुछ मेरे पुत्र ने मुझे वर्णन कराया है। मुझे इसकी प्रेरणा प्राप्त हुई है। हमने यह बहुत पुरातन काल में कहा कि ऐसा कदापि नहीं हुआ करता है। मुझे स्मरण है कि एक समय सतोयुग के काल में देवर्षि नारद जी ने, क्योंकि वे हमारे यहाँ विज्ञान में बड़े पारायण रहे हैं, उनके यहाँ ऐसे यन्त्र थे, ऐसी पादुका उन्होंने निर्मित की थीं, कि जिस भी लोक में जाना होता था आपकी पादुका में, अपने यन्त्र में विद्यमान हुए और वे किसी भी लोक में अपना यातायात बनाना उनका बहुत ही स्वाभाविक गुण था। वे विज्ञान में पारायण थे। क्योंकि ऐसे परमाणुओं को एकत्रित कर सकता है प्राणी, तो

उन्होंने यन्त्रों का निर्माण किया।

उन्होंने एक ऐसे यन्त्र का भ्ी निर्माण किया था पुरातन काल में पुत्रो! जिस यन्त्र में यह विशेषता थी, जब एक समय शनि मण्डल के और सूर्य के मध्य में अरुणधती मण्डल आ गया था और अरुणधती मण्डल के आ जाने से सूर्य की सर्वत्र जो किरणें थीं वे सब अरुणधतीमण्डल में अपने में आच्छादित कर गई थीं। और आच्छादित करने से उस शनिमण्डल के पांचवें भाग पर अन्धकार छा गया था, अन्धकार के छाने पर देखो, वहाँ यम का प्रभाव समाप्त हुआ, तो दूषितपना भी तो आ जाता है।

परन्तु प्रायः ऐसा नहीं होता कि सर्वत्र प्राणी बाह्य आ जाएं, क्योंकि उसमें कोई ऐसी विशेषता आवृत नहीं मानी जाती। परन्तु देखो, एक ऐसा मण्डल मुझे स्मरण है कि जिस समय सूर्य के और पृथ्वी के मध्य में जिस काल में कहीं बुद्ध मण्डल आ जाए इनके मध्य में, तो हो सकता है कि बहुत सा पृथ्वियों का भाग खण्डित हो जाते हैं, पृथ्वी के एक दूसरे भाग को नष्ट भी कर सकते हैं।

ऐसा तो प्रायः आया हैं परन्तु देखो, एक समय वह आपत काल उस काल में आया था जिस समय महाभारत का काल हुआ था। परन्तु देखो, अप्रताम् दिष्टम् अस्तेः किरणाम् महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया था। उस काल में एक ऐसा काल आया था, जबकि यह बुधमण्डल सूर्य और पृथ्वी के मध्य में आ गया, तो एक पृथ्वी जो गति करती है उस पृथ्वी के देखो, एक सौंवा भाग खण्डित हो करके वहाँ का प्राणी नष्ट हो गया था। परन्तु ऐसा तो प्रायः द्वापर के काल में दृष्टिपात आया। ऐसा पुनः उसके पश्चात् अभी नहीं हुआ। हो सकता है 101 वर्ष पश्चात् ऐसा कोई काल आ जाए। यह मैं उच्चारण नहीं कर सकता। उसको प्रभु ही जानता है। परन्तु रहा यह कि आज का जो अबृतम् दृष्टोः देवं ब्राह्मणः परन्तु देखो,! आज मैं तुम्हें ये उच्चारण करने आया हूँ, मैं तुम्हें आज यह विशेषता देने नहीं आया हूँ केवल परिचय देने आया हूँ। परन्तु उच्चारण कर रहे थे कि देवर्षि नारद मुनि महाराज ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। जैसे सूर्य और पृथ्वी के मध्य में चन्द्रमा की छाया आ जाती है अथवा चन्द्रमा और सूर्य के मध्य में छाया आ जाती है। परन्तु यह तो प्रायः लोक लोकान्तरों में होता रहता है। यह कोई नवीन

वाक्य नहीं होता, यह कोई नवीनता नहीं है।
परन्तु रहा वैज्ञानिकों का वाक्य। आज मैं भी वैज्ञानिकों की चर्चा करने आया हूँ। परन्तु देखो, बहुत पुरातन काल में अश्वपति के काल में मुझे भी कुछ विज्ञान के अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा और वर्षों तक अनुसन्धान करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। आज मैं इस विज्ञान में, विज्ञान के युग में तो तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु केवल महात्मा ध्रुव और नारद मुनि दोनों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था, जिस यन्त्र में दूसरे मण्डलों की दूसरे जैसे शनि मण्डल हैं उसकी प्रायः छाया आती रहती थी और इस छाया के आने के पश्चात् छाया का परिणाम यह हुआ था कि उनके यन्त्र में जब छाया की कृतिका आई, उसमें एक आभायित होता रहा। परन्तु देखो,! उन्होंने ये विचारा कि सूर्य किसी की छाया बन करके इसीलिए नहीं रहता, क्योंकि वह अग्नि का प्रतिनिधि है। वह द्यु लोक से तरंगें लेता रहता है, तरंगित होता रहता है, और जो मण्डल हैं उनमें पार्थिवता है, किसी में जलवत् है, किसी में अग्नेयवत् है। परन्तु देखो,! सूर्य एक ऐसा मण्डल है जो सुअप्रताम् प्रकाश देता रहता है, वह तपाता रहता है। नाना पृथ्वियों को प्रकाश देता है, नाना चन्द्रमाओं को प्रकाश देता है और नाना कृतियों को प्रकाश देता है। इसी प्रकार और भी हैं क्योंकि सूर्य एक नहीं असंख्य हैं। जब असंख्य सूर्य हैं परन्तु सूर्याणिः वृन्नाम् सूर्य शब्द जो है यह एक वचन नहीं कहा जाता, यह बहु वचन में प्रयोग आता रहता है। नाना सूर्य कहलाए जाते हैं, उन सूर्यों के आ जाने के पश्चात् अग्रताम् क्योंकि गणना करोगे तो तुम्हें दृष्टिपात आएगा।
इसीलिए मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें केवल परिचय देने के लिए आया हूँ कि हमें अपने जीवन को बहुत ऊर्ध्व में ले जाने के लिए हमें स्वतः अपने जीवन को प्रकाश में ले जाना है, सूर्यवत् बनाना है। क्योंकि हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि जैसे यह सूर्य है, यह प्रकाश देता है और नाना पृथ्वियों को प्रकाश में लाता है। एक नहीं अनेक पृथ्वियों को लाता है, नाना शनियों को लाता है। एक शनि ही नहीं परन्तु चाहे प्रभु! की आभा रहने वाला जो अमूल्य जगत् है, चाहे वह एक एक मण्डल के लिए सहस्रों सूर्य निर्मित करता है। परन्तु उस े प्रकाश केवल सूर्य से ही

मिलता है। उस प्रकाश को सूर्य कहा जाता है। वह प्रकाश अग्नि का द्यू का प्रतिनिधि कहलाता है। उन तरंगों में ज्ञान होता है, उन तरंगों में विज्ञान होता ह। ै उन तरंगों में परमाणु होते हैं, उन तरंगों में आभा होती है और उन आभाओं को जो जानने वाला होता है, वह सूर्य आभा को जान लेता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि हमारे यहाँ महाराजा हनुमान हुए। महाराजा हनुमान ने एक पोथी का निर्माण किया था। वे सूर्य विद्या पर बहुत अनुसन्धान करते थे। सूर्य विद्या पर अनुसन्धान करने वाला कोई कोई वैज्ञानिक होता है, जो गम्भीरता से अध्ययन करता है। महाराजा हनुमान एक समय अपनी एकांत स्थली में विद्यमान हुए और अनुसन्धान करने लगे। अनुसन्धान जब सूर्य की किरणों पर करने लगे, तो मुनिवरों! देखो, वैज्ञानिक वह सफल होता है जो अपनी किरणों को जिस विज्ञान में जाना चाहता है उस विज्ञान की सम्पूर्णता को तो वह गम्भीरता से ही जानता है। परन्तु जितना वह जानता है उसका, उसके जीवन पर अनुभूति होनी चाहिए। अनुभूति हो करके वे किरणों के द्वारा अपने जीवन को तपाते, धातु को तपाते, उससे यन्त्रों का निर्माण करते। उन यन्त्रों में विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की यात्रा करते थे। ऐसा भी एक यन्त्र बन सकता है, किसी धातु से, वह गति करने वाला न हो, वह सूर्य की किरणों के साथ और सूर्य की किरणें उस यन्त्र को अपने में ले जा सकती हैं। परन्तु किरणों के साथ में भी यन्त्र गति कर सकता है।

परन्तु देखो,! यह ज्ञान, यह विज्ञान तुम्हें कहाँ प्राप्त होगा यह विज्ञान! वैदिक साहित्य में तुम्हें प्राप्त होगा, जब वेद का अध्ययन करोगे। वेद कहता है सूर्यः प्रणाम् बृहेः वृताम् देवाः सूर्य देव है, वह देता रहता है। नाना प्रकार की तरंगें देता रहता है और केसी तरंगें देता है? मेरे प्यारे! मानव के जीवन में तपोवन बनाता है।

आज मैं तुम्हें कोई विशेष वाक्य प्रगट करने नहीं आया हूँ, विचार देने के लिए, परिचय देने के लिए आया हूँ। मुनिवरों! देखो, महाराजा हनुमान की चर्चा आ रही थी। परन्तु देखो, यहाँ महाराजा हनुमान और देवर्षि नारद की जब मैं तुलना करने लगता हूँ विज्ञान में दोनों समकालीन कहलाते थे। एक वैज्ञानिक चर्चाएं मुझे स्मरण है। महाराजा देखो,

अबृतम् महाराजा शिव और पार्वती दोनों वैज्ञानिक थे। जब महाराजा शिव विज्ञान के द्वारा, यह चिन्तन करने लगे कि माता के गर्भस्थल में जो नाभि है और वह जो सूर्य किरण जाती है वह नाभि के द्वारा जाती है। वह कैसे जाती है?

उन्होंने एक समय मुनिवरों! एक चाक्राति सूर्यणाम् त्राकटाक नाम का एक यन्त्र निर्मित किया था। जो मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय दिया। परन्तु देखो,! जब यन्त्र का निर्माण किया तो उस यन्त्र में सूर्य की एक त्रट् नाभ्याम् नामक एक किरण होती है और उस नाभ्याम् किरण के जानने के लिए उन्होंने तप किया और तप करने के पश्चात् चिन्तन किया, क्योंकि वेद में एक मन्त्र आया सूर्यम् ब्राह्मणः नाभ्यताम् प्रहेः वृतानि, अघ्रणाम् देवाः प्रहवेः वृषणानि। कच्यतम् द्रविताणि यच्छतोः देवाः।

वेदमन्त्र की आख्याकियाएं जब शिव के द्वारा स्मरण होने लगीं तो महाराजा शिव ने इसके ऊपर चिन्तन किया। एक वर्ष तक चिन्तन मनन करने के पश्चात् उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया और यन्त्र का निर्माण करके, उससे सूर्य की किरणों को लेने लगे। जब सूर्य की किरणों को लेने लगे तो सूर्य की वे किरण एकत्रित हो गईं। जो मानव को जीवन शक्ति देती थीं। और मानव को जीवन शक्ति क्या? मानों कृतिः देवाः एक राशि होती है मानव की। जैसे नामाहन होता है और नामाहन के साथ एक राशि होती है। परन्तु उस राशि के आधार पर उस मानव की नाभि से तरंगें चलती हैं और नाभि में सूर्य की क्रान्ति आती है। उसी के आधार पर उन किरणों को जो वैज्ञानिक राशि के आधार पर उन किरणों को जानने लगता है, उन परमाणुओं को जानने लगता है, उन परमाणुओं को एकत्रित करके उसमें जब पृथ्वी के कुछ परमाणुओं की पुट लगा करके, मिलान करके कुछ वायु के परमाणुओं का उसमें पुट लगा करके कृतिकास्तान नाभि एक कृतिका यन्त्र का निर्माण हो जाता है। तो वह यन्त्र कहीं भी है, और मानव कहीं भी शत्रु से संग्राम कर रहा है वह मानव, वह वैज्ञानिक किसी भी शत्रु से वह जो संग्राम कर रहा है परन्तु उसकी मृत्यु नहीं आ सकती, उसको शत्रु विजयी नहीं कर सकता है, क्योंकि वह यन्त्र उसकी नाभि के द्वारा सूर्य की किरण उसे शक्ति प्रदान करता रहता

है।

तुम्हें स्मरण होगा राजा रावण को महाराजा शिव ने वह यन्त्र प्रदान किया था। मेरे प्यारे! इससे उसकी नाभि में अमृत की कुण्डली परणित की जाती थी। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। आज मैं तुम्हें विशेषता देने नहीं आया हूँ केवल बिखरे हुए विचारां को प्रगट करने के लिए आया हूँ। क्या? जिनका तुम्हें परिचय हो जाए कि यह विज्ञान क्या वस्तु है? विज्ञान में मानव कहाँ तक जा सकता है।

मेरे प्यारे! देखो, अज्ञम् मंगलिः वृताम् देवाः यन्त्र को समुद्रों परणित किया जाता है और तब उसकी मृत्यु हो सकती है। ऐसी भी मृत्यु विजय इस प्रकार भी यन्त्रों के द्वारा भी किया जाता है किन्तु मृत्यु वृजन्नगृणि देवाः वे संग्राम के लिए होता है, यह नाभि का स्थान कहलाया जाता है।

अब हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें वैज्ञानिक बनना है। प्रभु के इन मण्डलों का ज्ञान प्राप्त करना है और भौतिक विज्ञान के द्वारा हमें आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करना है। यह है आज का हमारा वाक्य। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस सागर से पार हो जाएं। आज का हमारा वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्त्ता समाप्त।

१६ 19 02 1980 पुष्प 36 मानव चिन्तन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा, जो सर्वत्र इस संसार में अथवा इस ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत है, की महिमा का गुणगान गाया जाता है।

संसार में एक मानव दूसरे मानव की गाथा में परणित रहता है। परन्तु जब हम अपने

देव की महिमा का गुणगान गाने लगते हैं, तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात होने लगता है कि उसकी जो गाथा है अथवा उसका जो विज्ञान है वह इतना महान् और पवित्र माना गया है मुनिवरों! कि उस ज्ञान और विज्ञान की संतुलना हम किसी भी काल में नहीं कर पाते, क्योंकि हमें बहुत पुरातन काल की वार्त्ताएं प्रायः स्मरण आती रहती है।
हमारे यहाँ नाना ऋषि अथवा नाना विचारक अपनी अपनी आभा में रमण करने के लिए और उसके ज्ञान और विज्ञान को जानने के लिए अपनी अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते रहे हैं और उनका गम्भीरता से चिन्तन औश्र मनन चलता रहा है।
हमने बहुत पुरातन काल में कहा कि यह जो मनन और चिन्तन है यह क्या है? प्रत्येक मानव यह जानना चाहता है कि मनन और चिन्तन में लगा हुआ प्राणी कैसा है? एकान्त पर विद्यमान है, मनन चल रहा है और चिन्तन में वह संलग्न है। मन का स्वभाव है वह प्रायः मनन करता रहता है, वह किसी न किसी वस्तु को विचारता रहता है चाहे उसे भौतिक जगत का कार्य हो अथवा न हो परन्तु उसका जो मनन है, वह चलता रहता है। वह तमोगुण का मनन करने लगे, रजोगुण का करने लगे या सतोगुण का करने लगे, यह उसकी विचारधारा है। इसका नाम मनन कहा जाता है।
परन्तु चिन्तन क्या है? चिन्तन उसे कहते हैं जो गम्भीर अध्ययन है, जिसके ऊपर मानव अध्ययन कर रहा है, प्रत्येक वस्तु के मूल में परणित होना चाहता है। जैसा मैंने बहुत पुरातनकाल में यह निर्णय देते हुए कहा था कि एक मानव एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके तारा मण्डलों की माला बना रहा है, उसी माला में परणित हो रहा है। वह चिन्तन कर रहा है उनका गम्भीरता से और केसी गम्भीरता से?
देखो, यह ब्रह्माण्ड रात्रि के काल में जब नाना तारा मण्डल दृष्टिपात आते हैं तो वे जब गतिशील दृष्टिपात आने लगते हैं, तो चिन्तन करने वाला चिन्तन कर रहा है। वाह रे! देव! आपने केसी मालाओं का निर्माण किया है? मण्डल गति कर रहा है, एक मण्डल इसके ऊर्ध्व में गति कर रहा है, एक मण्डल इसके अपने आँगन में गति कर रहा है। नाना मण्डल अपनी अपनी आभा में गति कर रहे हैं। परन्तु केसा वह नियामक है, निर्माण करने वाला है। मुनिवरों! एक मण्डल दूसरे मण्डल से मिलान नहीं कर पाता।

केसी विचित्र है उसकी रचना? तो वह मनन कर रहा है। उसके अन्तिम छोर पर जाना चहाता है।
मुनिवरों! देखो, मुझे स्मरण है देवर्षि नारद और महात्मा ध्रुव जब एकान्त स्थली पर विद्यमान थे तो वे यह विचार रहे थे कि महाराज! यह जो संसार है, यह मृत्यु की आभा में रमण कर रहा है। यह सदैव मृत्यु में रहता है और विचारता रहता है क्या? कि मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए। तो उस समय देवर्षि नारद मुनि कहते हैं, हां! मृत्यु को तो विजय कर ही लेना चाहिए क्योंकि मृत्यु को विजय करने वाला चिन्तन करने वाला पुरुष कहलाता है, वह चिन्तन करने वाला पुरुष होता है।
महात्मा ध्रुव ने कहा कि महाराज! शमम् बृहिः वृणाम् देवाम् दधि यच्छतोः यह वेद की आख्याकिया यह कहती है महाराज के यह जो लोक लोकान्तरों की आभा है, यह जो तारा मण्डलों की तरंगें हैं जैसे राहू और केतू दोनों की आभा आती रहती हैं, और राहू और केतू की आभा आने पर चन्द्रमा पृथ्वी और इनके मध्य में आकर के रात्रि हो जाती है कुछ भाग में और इनकी शोधक किरणों को, ये अपने में, कांतियों को रमण कर लेता है चन्द्रमा। तो हे प्रभु! यह क्या है? क्या यह मानव की मृत्यु का कारण नहीं है। देवर्षि नारद कहते हैं, हे ध्रुव! यह मृत्यु का कारण नहीं हो सकता क्योंकि छाया ही तो आती है। मृत्यु तो उस काल में आती है जब उनका दोनों का समन्वय हो जाता है। दोनों का जहाँ समन्वय हुआ और मृत्यु का मूल एक क्षेत्र बन जाता है। मानव जब अपने विचारों में विकृत हो जाता है, तब समाज में भी विकृतता आ जाती है उस काल में प्रकृति के जो प्रकोप हैं, वे आने प्रारम्भ हो जाते हैं।
मुनिवरों! देखो, नारद जी कहते हैं, जैसे अग्नि है, अग्नि इनमें रमण करने वाला है। यह अग्नि जब समुद्रां में प्रदीप्त हो जाती है तो यह प्राणी मात्र के मूल मृत्यु के कारण बन जाते हैं। इसीलिए अग्नि जब जल में प्रवेश करके अग्नि इस पृथ्वी आभाम् जलं बृहेः जलन को अस्वस्थ बना देती है। जैसे बन में अग्नि काष्ठ में प्रवेश कर जाती है, ऐसे ही जल में भी अग्नि प्रवेश कर जाती है। उसको बडवानल नामक अग्नि कहते हैं। जो अग्नि समुद्रों को प्राप्त होती है और मानव के प्राकृतिक रूप बन करके मानव के मृत्यु का

मूल बनाती है वह अग्नि, वह सूर्याणि ब्रह्मणाः वृताः अग्नि जैसे सूर्य को तपाती है वह ही बड़वानल नाम की अग्नि समुद्रों को अग्नि में प्रवेश करके जब पृथ्वी को अपने गर्भ में धारण कर लेती है और मानव मात्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

परन्तु इससे हम कैसे उत्तीर्ण हों? कैसे इसे हम जान पायें तो नारद जी कहते हैं, हे बाल्य! ब्रह्मे! हे ब्रह्मचारी! इसको जानने के लिए अनुभूति होती रहती है, अग्नाम् ब्रह्मणाः वृत् देवाः क्योंकि जब इस पृथ्वी के आँगन में प्राणी सुगन्धि नहीं करते सुगन्धि होनी समाप्त हो जाती है, तो उस काल में अग्नम् ब्रह्मः इस पृथ्वी से विष बनने लगता है और वह विष कहाँ जाता है? उसको समुद्र अपने में शोषण करने लगता है और वही जो विष है वही बड़वानल नाम की अग्नि बन करके, भयंकर अग्नि बन करके वह अग्नि जलों को ऊर्ध्व में गति करके वह वृष्टि के रूप में अनावृष्टि के रूप में सत्माए पापाचम बृह्मेः कोई भी रूप समाज का बन करके समाज के द्वार पर आती रहती है।

आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करना नहीं चाहता हू। यह चिन्तन का एक कृत्य बन गया। रहा यह कि राहू और केतु की आभा में इसमें भी विष बनने लगता है। जब पृथ्वी को सूर्य की किरण नहीं प्राप्त होती है, तो पृथ्वी में भी विष हो जाता है और विष कहाँ कहा तक वह प्रभावित होती है। माता के गर्भस्थल में भी वह विष प्रवेश कर जाता ह। ै वह पशुओं के गर्भस्थल में भी प्रवेश कर जाता है। वही जिसे हम छाया रूप कहते हैं जिसको जब हम चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में जब सूर्य की किरणों को चन्द्रमा अपने में राहू और केतू के रूप में वे विष ब्रिहेः अपने में धारण कर लिया जाता है। क्योंकि राहू और केतू दो मण्डल हैं जो अरुणधती मण्डल के ऊर्ध्व भाग में रहते हैं एक स्वाति नक्षत्र के ऊर्ध्व भाग में रहता है। उन दोनों मण्डलों को राहू और केतू कहा जाता है।

राहू और केतू की छाया जिस समय स्वाति नक्षत्र पर, मूल नक्षत्र पर आ जाती है उस समय भी प्राकृतिक प्रकोप हो सकते हैं। इसी प्रकार जब दोनों की राहू और केतू की छाया चन्द्रमा के आँगन में आ करके और सूर्य की किरणां को अपने में शोषण करने लगता है, उस समय सूर्य की किरण मन्द रूप बन करके इस पृथ्वी में विष की आभा

प्रवेश कर जाती है। वह भी विष समाज में परणित हो जाता है।

आज मैं तुम्हें इस वाक्य को इसलिए प्रगट कर रहा हूँ, एक हमारा जो विषय है वह ऐसा हमने प्रारम्भ किया है जो मेरे पुत्र की एक वेदना रहती है, इनकी इच्छाएं रहती हैं। परन्तु आगे रहा यह कि वैज्ञानिकों का यह विषय है, वैज्ञानिकों को इसके ऊपर चिन्तन और मनन करना चाहिए। आगे मैं कहा जाना चाहता हूँ आओ! अब मैं द्वितीय रूप में तुम्हें हनुमान जी की विज्ञान शाखा में ले जाना चाहता हूँ। जहाँ महाराजा हनुमान अपनी विज्ञान शाला में विद्यमान हो करके सूर्य की किरणों के ऊपर अनुसन्धान करते थे।

12. मुझे स्मरण आता है महाराजा हनुमान जी के गुरु थे, उनका नाम था स्वातिकेतुक ऋषि महाराज। स्वातिकेतुक ऋषि महाराज इस प्रकार के ऋषि थे कि वे अपने प्राण और मन दोनों की आभा को जान करके मनन और चिन्तन करते थे। एक समय वह मनन करने लगे। जब मनन करने लगे, मन को प्राणों पर अर्पित कर दिया। प्राणां पर अर्पित करने के पश्चात् वे चिन्तन करने लगे।

अब चिन्तन चला कि सूर्य की किरण आती हैं और सूर्य की किरण आ करके मानव के नेत्रों का प्रकाश बन जाती हैं और मानव अपने समाज में परणित हो जाता है, गमन करने लगता है क्योंकि रात्रि में अन्धकार में संसार का कार्य नहीं कर सकता, आत्मिक कार्य तो मानव कर सकता है। तो उस समय स्वातिकेतुक ऋषि महाराज यह चिन्तन करने लगे कि सूर्य की जो किरण आई है, वह कौन कौन सी आभा को लेकर के पृथ्वी पर आई और नेत्रों को प्रकाशित कर दिया है। तो उन्होंने विचार कर उसका ना ऊषा है उसका नाम कांती है, उसका नाम स्वेकाली मां है।

वे स्वे काली मां इत्यादियों के ऊपर मनन करने लगे और मनन चिन्तन करते हुए इतने गम्भीर चले गए चिन्तन में कि जहाँ वे किरणों आभा में अपने गुणां का वर्णन करने लगीं। जब वर्णन करने लगीं तो एक समय देखो,! वे ऋषि अपने आसन पर विद्यमान हो करके और प्राण और मन दोनों का सन्निधान मात्र जब उन्होंने किया तो वे सूर्य की किरण के साथ साथ सूर्य मण्डल को जाते हुए देवर्षि अप्रताम् देववृहाः प्रतीत हुए।

हनुमान जी उस दृश्य को दृष्टिपात कर रहे थे।
जब वह दृश्य दृष्टिपात हो रहा था तो मुनिवरों! महाराजा हनुमान प्रातःकाल में उनके चरणों में ओत प्रोत हो गए। उन्होंने उसको चिन्तन और मनन करने की युक्तियां प्रगट कीं। युक्तियां प्रगट करते क्योंकि हनुमान के जो गुरु थे वे स्वाति वृणाक्ष ऋषि (द्वितीय) थे। वृणाक्ष ऋषि उनको शिक्षा देते थे और वे उनका अध्ययन कर रहे थे और उनका जो विषय था वह विज्ञान था। वह सूर्य विज्ञान के ऊपर अध्ययन कर रहे थे। वेदों में नाना सूक्त आते हैं जो सूर्य विज्ञान के ऊपर मानव घटित कर लेता है।
वे विज्ञान में परणित होने लगे और वे वेद का अध्ययन करते थे। चित्रण रथाः वेद के अध्ययन में यह आया कि चित्त का हम रथ कैसे बना सकते हैं? उन्होंने पृथ्वी के कणों को एकत्रित किया और वायु की आभा को ले करके और अग्नि की तरंगों को ले करके उसमें अग्नितत्व प्रदान किया और प्रदान करके वे सूर्य की आभा में, सूर्य की एक किरण होती है, जिसको हम स्वांप्राणी किरण कहते हैं स्वांप्राणी जो किरण है उसी के आधार पर वह जो यन्त्र ऋषि का, यन्त्र में विद्यमान होकर के सूर्य की किरणों से वह यन्त्र अन्तरिक्ष में गति कर रहा था।
तो परिणाम क्या? इस विज्ञान को मैं इसीलिए उच्चारण करने आया हूँ, मेरे पुत्र ने यह कहा कि विज्ञान एक कृत्य का विषय बन गया है। मैंने बहुत पुरातनकाल में कहा, हे पुत्रो! संसार में जो विज्ञान है यह मानव के मस्तिष्क की आभा है। प्रकृति के तत्त्वों को जानना और उनमें रमण होना सूक्ष्म रूपों को जानना, मूल में प्रवेश करना, यह मानव को कर्तव्य कहलाया जाता है।
मेरे प्यारे! विज्ञान तो मानव का मौलिक गुण है। विज्ञान में जाना बहुत अनिवार्य है। मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय जब माता मल्दालसा यह अनुसन्धान करने लगी कि मेरे गर्भस्थल में जीवात्मा कैसे प्रवेश करता है और बिन्दु से रचना कौन करता है और बिन्दु से रचना कैसे होती हैत्र? तो माता मल्दालसा ने प्रत्येक माह में, जैसे सूर्य की किरण है और वह चन्द्रमा को प्रभावित करती है, प्रतिपदा, द्वितीया तृतीया, चर्तुा आदि 15 कलाओं वाला यह चन्द्रमा कहलाता है। ये 15 कला एक माह में दो बार

आती हैं। 15 शुक्ल पक्ष के होते हैं और 15 ही कृष्ण पक्ष के होते हैं। इन दोनों आभाओं में रमण करने वाली माता मल्दालसा यह जानती थी कि कौन कौन से नक्षत्रों की छाया बालक के मस्तिष्क पर आती है।

मुनिवरों! देखो,! यह विद्या माता मल्दालसा ने वेद से प्राप्त की थी। यह विद्या वेद में प्राप्त होती है। कौन सा नक्षत्र हो? कौन सी घड़ी में कौनसा नक्षत्र हमारे जीवन को प्रभावित करता है। उसकी आभा में हमें कौन सा चिन्तन करना है। कौन सा देवता हमारे समीप होना चाहिए। इस प्रकार का अध्ययन माता मल्दालसा ने किया।

माता मल्दालसा ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहती थी। पुत्र को। माता मल्दालसा का 5 वर्ष का बालक ही मुनिवरों! देखो, ब्रह्मवेत्ता बन करके भयंकर वन में तप करने चला गया था। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! मैं आज इसे विस्तार से इसीलिए प्रकट करा रहा हूँ कि विज्ञान प्रत्येक प्राणी का विषय बन जाता है। माता मल्दालसा ने प्रत्येक माह, प्रत्येक दिवस, प्रत्येक क्षण में अध्ययन किया। यह उनका एक विषय रहा। आज माताएं अगर यह चाहती हैं कि हम सदैव माता बनी रहें तो मल्दालसा जैसा अध्ययन करना संसार में बहुत ही अनिवार्य है।

माता कौशल्या जैसा अध्ययन करना अपने जीवन का स्वतः अध्ययन करना, सन्तान को जन्म देना, सन्तान का अध्ययन करना, सन्तान को अपने हृदय से आलिंगन करना यह माताओं का कर्तव्य है। यह विज्ञान कहलाता है। इसमें मां का व्यवहार है। उस विज्ञान को जानना विज्ञान कहलाया गया है।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा नहीं देना चाहता। मैं हनुमान जी की उस विज्ञानशाला में तुम्हें ले जा रहा था, जहाँ उनके गुरु विज्ञान में इतने पारायण थे कि सूर्य की आभा में रमण कर रहे थे। सूर्य की किरणां के साथ में प्रवेश कर रहा है। इसी प्रकार सूर्य विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा में ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में और हनुमान जैसे ब्रह्मचारियों के मस्तिष्कों में यह विद्या रही है।

जिस बालक ने अबृणाम् बृहेः वृणाऽसस्तिः हनुमान जी ने एक सन्तान को ही जन्म

दिया, एक सन्तान को जन्म देने वाला पुत्र यागी भी बन रहा है, विज्ञान में भी रमण कर रहा है और उसकी योगेश्वर बनने की इच्छा है। इसमें बुद्धि की एक महत्ता होती है।

विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह वर्णन करा रहा हूँ कि विज्ञान संसार में राष्ट्र की मृत्यु का हेतु कदापि नहीं हुआ करता है। जब भी विज्ञान राष्ट्र के अभिमान का मूल कारण बना है, उसी काल में अग्नि प्रदीप्त हो गई है संसार में। जैसा मैंने इससे पूर्व वाक्य में भी प्रकट कराया था तुम्हारे समीप। देखो,! अणु विज्ञान को जानना बहुत अनिवार्य है, परमाणुओं को जानना बहुत अनिवार्य है क्योंकि परमाणुओं को जाने बिना इस मार्ग से होता हुआ ही योगेश्वर मृत्यु को प्राप्त करता हैं यदि यह विज्ञान वेद में नहीं होगा तो मानव यौगिकता को प्राप्त नहीं कर सकता। यौगिकता को वही प्राणी प्राप्त कर सकता है, जो प्राणी इस भौतिकवाद, के इस परमाणुवाद के मार्ग से हो करके अग्रणी बनता रहता है।

मुझे स्मरण आता रहता है जितने भी ऋषि मुनि हुए, प्रत्येक ऋषि मुनियों का यही मन्तव्य रहा है और उनका यह साध्य बन करके रहा है। उन्होंने ये विचारा है एकानत स्थलियों में कि हमारा व्यवहार कितना कुशलता वाला हो और व्यवहार बिना विज्ञान कदापि सफलता को प्राप्त नहीं होता।

व्यवहार हमारा केसा हो? मेरे प्यारे! देखो, माता को माता की दृष्टि से दृष्टिपात करने वाले हों क्योंकि माता जो शब्द है, विज्ञान से गुथा हुआ है पितर जो शब्द है, वह भी विज्ञान से गुंथा हुआ है। दूसरे मानव से हम कैसे वार्त्ता प्रकट करें एक मित्र मित्र का मिलान होता है और वह मित्र जब मित्र से वार्त्ता प्रकट करता है तो दोनों मित्रों के हृदयों की वार्त्ता होनी चाहिए। परन्तु कपट और छल की नहीं होनी चाहिए। छली वार्त्ता होती है, वह छली वार्त्ता मानव के मित्रों का नहीं, वह एक शिक्षा का हेतु बन जाती है। इसी प्रकार मित्र बन करके छलों से घृणा से वार्त्ता प्रकट करते हैं और मित्र बने रहते हैं उनके हृदयों में धीमी धीमी तमोगुण की अग्नि जागरूक रहती है। वह वायुमण्डल में, जो प्रभु का विज्ञान है उसको वह दूषित कर रहा है और अपनी आत्मीयता को हनन

कर रहा है। उसका परिणाम यह होता है कि वह मित्र मित्र नहीं रह करके उन मित्रों की आत्मिक मृत्यु हो जाती है। मेरे प्यारे! वह आत्मिक मृत्यु नहीं होनी चाहिए।

आत्मिक मृत्यु किस काल में होती है? जब एक मानव दूसरे से छली होकर के वार्त्ता प्रकट करता है और मित्र बना रहता है और यह जानता है कि इसका जो वैभव है, वह मेरे समीप आ जाए और यह कैसे समाप्त हो? तो यह कोई मित्रता नहीं होती। ऐसे मित्र समाज में घातक बनते हैं और राष्ट्र के लिए विनाश का एक मूल कारण बनते हैं। इसीलिए मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय दिया कि हमारा व्यवहार मित्र की दृष्टि से होना चाहिए। देखो, मित्रों में आभा होनी चाहिए। जब मित्रों में एक दूसरे में आभा होती है, समाज में पवित्रता होती है। एक मानव मानव को मृत्यु के मुखारबिन्दु में न ले जाए उसके जीवन की इच्छा प्रगट करे वह व्यवहार में वाणी से, कर्म से और वचन से एक हो क्योंकि उसके कर्म वचन का जो सम्बन्ध है वह विज्ञान से है।

मेरे प्यारे! प्रभु ने मानव के द्वारा कैसे कैसे यन्त्रों का निर्माण किया है? कैसे यन्त्र हैं कि वाणी चल रही है, वाणी गति कर रही है, उच्चारण कर रही है, वायु मण्डल में प्रवेश कर रही है और वह वाणी कदापि समाप्त नहीं होती। चित्त मण्डल में प्रवेश कर रही है, बाह्य और आन्तरिक चित्त दोनों का समन्वय हो करके उस वाणी का जो असली रूप है वह अन्तरिक्ष में प्रवेश कर जाता है।

यह कैसा मेरे प्यारे! प्रभु का निर्माण किया हुआ संसार है? कैसा वैज्ञानिक है? हम उस विज्ञान को जानें, उस वैज्ञानिक को जानें। इस विज्ञान से इस शरीर की रचना हुई। इस रचना को जानने वाले बनें। प्रत्येक प्राणी अपने अपने विज्ञान से गुथा हुआ रहता है। विज्ञान उसका मौलिक तत्त्व कहलाया गया है। इससे पूर्व व्यवहार ऐसा पवित्र, सुचरित्रता में होना चाहिए। पेज नं. 46 नहीं है।

स्थिर नहीं रहता है और जहाँ अग्नि में वायु न हो, वायु न प्राप्त हो तो अग्नि का अस्तित्व नहीं रहता और यदि अन्तरिक्ष न हो तो वायु कहाँ गति कर सके? यह पञ्च महाभूत भी एक दूसरे की माला बन करके रहते हैं, एक दूसरे तत्त्व को तपाते रहते हैं, एक दूसरे के अस्तित्व को निर्मित करते हैं। जैसे पुत्र माता के अस्तित्व का निर्माण करता है इसी

प्रकार प्रजा राजा के अस्तित्व का निर्माण करती है। परन्तु उनका व्यवहार भी इतना ही सहायक होना चाहिए जितना पञ्च महाभूतों का। एक दूसरे का एक दूसरा सहायक बन करके उन सबकी प्रतिष्ठा हो रही है।

वे अपने में प्रतिष्ठित हो रहे हैं। बेटा! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट नहीं करूंगा। मैं तुम्हें ऐसे युग में ले जाना चाहता हूँ जहाँ वास्तव में विष्णु राष्ट्र की स्थापना होती है, एक दूसरा सहायक बना हुआ है। यह राजा को सर्वत्र ज्ञान होना चाहिए जिससे मानव और समाज पवित्र बन जाता है। उसके पश्चात् अब विज्ञान एक परमाणु है, एक अणु है एक असरेणु है इन परमाणुओं का मिलान किया जाता है।

शादत नाम की एक किरण होती है उस किरण में त्रिवाद होता है तीन परमाणु। जब उसकी वैज्ञानिक अग्नि को यन्त्रों में प्रवेश करने लगे, तो उन्हें त्रिकोण वाली अग्नि प्राप्त हुई। तो एक अग्नि ऐसी है, एक अग्नि का परमराणु ऐसा उत्पन्न हुआ जिससे वायु मण्डल और सूर्य लोक वाले यन्त्रों का निर्माण हो सकता है। वही (परमाणु) अग्नि में, आग में तपता है। उसी अणु, परमाणु उसी किरण के साथ त्रिकोण वाले का द्वितीय रूप ऐसा हुआ जो शीतल जल वाले लोकों को क्योंकि इससे समाज और राष्ट्र बनता है। राष्ट्र केसा हो? यह राष्ट्र की चर्चायें तो मैंने तुम्हें कई काल में प्रकट की हैं। परन्तु राष्ट्र वही होता है जो समाज में चरित्र की स्थापना करने वाला हो, मानवता की रक्षा करने वाला हो और मानव को उसके कर्त्तव्य में परणित कराने वाला हो। ऐसा जो राष्ट्र है, ऐसा जो समाज है, वह व्यवहार में कितना कुशल और महत्ता में परणित रहेगा और वह संसार में पनपने वाला समाज बनता है।

उसके पश्चात् मुझे स्मरण है मैं स्मरण की हुई वातायें तुम्हें प्रकट कराता हूँ। परन्तु व्यवहार में जब मुनिवरों! देखो, बाल्य पुत्र को पुत्र दृष्टिपात करके अग्रणीय बनाया जाता है, तो उसमें महत्ता आती रहती है क्योंकि यह जितना व्यवहार है वैज्ञानिक व्यवहार है, यह विज्ञान से गुंथा हुआ है और मानव विज्ञान में प्रवेश करता है। सूर्य की किरण केसी व्यावहारिक है? एक दूसरी किरण एक दूसरे की सहायक बन करके निर्माण कर रही है। खनिजों का निर्माण हो रहा है। निर्माण में एक दूसरी किरण सहायक बन

रही है। ऐसे ही प्राणी को हे मानव! प! तू भी सहायक बनाने वाला बन! अग्नि मानव के शरीर को तपाती रहती है। अग्नि जब अग्नि बन करके रहती है और जब वह अग्नि भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नि बन करके प्राण स्वरूप बन करके, एक दूसरे की सहायक बन करके गतिशील हो रही है।

यह केसा व्यवहार है, जैसे अग्नि है ब्रह्मणाकृतिः है! जैसे पृथ्वी के परमाणु हैं, जल के परमाणु हैं, अग्नि है। जहाँ जल नहीं होता वहाँ पृथ्वी के कण विकृत होने लगते हैं और जहाँ अग्नि नहीं होती जल में तो जल अपने स्वरूप में तुम्हें प्राप्त करा सकता है। एक वही परमाणु ऐसा है जो अन्तरिक्ष में गति कर रहा है, लोक लोकान्तरों में यात्रा कर सकता है।

तो मेरे प्यारे! इन अग्नि की तरंगों को जानना जो त्रिकोण वाली हैं, ये विज्ञान से कटिबद्ध रहती हैं। वही त्रिकोण वाला मानव के शरीर में रजोगुण, तमोगुण बन करके रहता है। रजोगुण, तमोगुण क्या? यह रजोगुण तमोगुण बन करके मानव के जीवन को संचालित कर रहा है। यही त्रिकोण अग्नि बन करके अणु परमाणुओं को एकत्रित करके वैज्ञानिक जब उनको विभाजन में लाते हैं तो वे यन्त्रों का निर्माण करने लगते हैं। यंत्रों का निर्माण करके अपनी अपनी दिशा में गति करने वाले बन जाते हैं।

यह एक दूसरे से कैसे कटिबद्ध हैं? केसा निर्मित किया है मेरे देव ने? आज जब मैं अपने देव की महिमा का गुण गान गाने लगता हूँ। वह प्रभु वही विज्ञान को व्यवहार में, स्थूल में सूक्ष्मता में ले जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है महाराजा हनुमान इसी अग्नि विद्या को लेकर के सूर्य विद्या को ले करके अपने गुरु के चरणों में प्रवेश करके आभा में प्रवेश करा रहा है, आभा में आभा को मिलान करा रहा है।

मुनिवरों! देखो, महाराजा हनुमान के द्वारा एक यन्त्र ऐसा था जो उनके गुरु ने निर्मित किया था जो पादुक के रूप में था और सूर्य विद्या को जानने के पश्चात् उन्होंने इसे निर्मित किया था। सागर में गति कर रहा है। परन्तु देखो,! समुद्राणि अग्रणाम् ब्रह्मेः जल नहीं स्पर्श कर रहा है। वायु में गति कर रहा है यन्त्रों में गति अस्तांग देवाः उसके द्वारा एक यन्त्र ऐसा था, जो अपने पिछले भाग में यन्त्र को प्रवेश करके शत्रु के द्वारा

जाता था, वह शत्रु मोहिनी बन जाता था। मेरे प्यारे! देखो,! उनकी तरंगें इस प्रकार थीं।
इस प्रकार का विज्ञान है। यह मानव का मौलिकगुण रहा है। परन्तु जिस समय यह विज्ञान राष्ट्र की सम्पदा बन जाता है, राष्ट्र की सम्पदा बन करके राष्ट्र में अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है क्योंकि मन का ऐसा स्वभाव है प्रकृति के विज्ञान को जान करके इन तत्त्वों को जान करके स्थूल रूप में अग्नि के यन्त्रों को एकत्रित करने वाला है, मन इसीलिए अभिमान होना स्वाभाविक है।
जब राष्ट्र में विज्ञान होता है, ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में होता है आभा में रहता है परन्तु वह व्यवहार में लगा रहता है। व्यवहार में जितनी कुशलता होती है राष्ट्र और समाज उतने ही ऊँचा बना करते हैं और जब विज्ञान इसका अंग बन जाता है, राजा जब वैज्ञानिकों का आश्रित हो जाता है और विज्ञान में यौगिकता नहीं रहने पाती तो राष्ट्र को समय समय पर भयभीत करते रहते हैं अपने स्वार्थ के कारण। क्योंकि वे विज्ञान को इतना पूर्ण रूपेण न जानते हुए वह भयभीत करता हुआ राष्ट्र को त्रास दे करके और राष्ट्र को समय समय पर भयभीत करते रहते हैं अपने स्वार्थ के कारण। क्योंकि वे विज्ञान को इतना पूर्ण रूपेण न जानते हुए वह भय भीत करता हुआ राष्ट्र को त्रास दे करके और राष्ट्र को उससे भीत करता हुआ राष्ट्र को त्रास दे करके और राष्ट्र को उससे भयभीत वन्दनीय हो जाता है उससे वह विज्ञान का अपमान कराने वाला बन जाता है। विज्ञान का अपमान नहीं होना चाहिए। ये वैज्ञानिक अपमान कराते हैं तो उनकी मृत्यु हो जाती है। विज्ञान में जब वृद्धि होती है, वैज्ञानिकों को वर्तमान में अपने विज्ञान में संलग्न रहना चाहिए क्योंकि वे भविष्य को नहीं जानते। विज्ञान भविष्य को नहीं जानता। वह विज्ञान केवल यह जानता है कि इस प्रकार की गति से यह हो सकता है। यह विज्ञान है यह मस्तिष्कों में रहना चाहिए।
आओ! आज हम तुम्हें और वार्त्ता विशेष प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल उच्चारण हमारा यह है कि हम सर्वत्र में विज्ञान को दृष्टिपात करते रहें। यह जितना भी जगत् यह सब विज्ञान भवन है इसमें वैज्ञानिक अपने विज्ञान भवन में विज्ञानशाला में वह वैज्ञानिक

अप्रआत्मनः हुआ चिन्तन में लगा हुआ है वह चिन्तन कर रहा है।

मनन और चिन्तन क्या है? जितना व्यवहार है वह सब मनन कहलाता है और जितना विज्ञान है वह चिन्तन कहलाया गया है। चिन्तन करने मानव को उसके मौलिक रूप में प्रवेश करना चाहिए और उसको क्रिया में लाने का प्रयास होना चाहिए। जैसे गो नाम के पशु के रीढ़ के भाग में एक सूर्यकेतु नाम की नाड़ी होती है।

मुनिवरों! देखो, वैज्ञानिक विचारता है कि गो नाम के पशु के रीढ़ के विभाग में जो नाड़ी है उसको सूर्य किरण को कैसे वह नाड़ी में अपने ग्रहण करती है जैसे इस माता के गर्भ स्थल में जब सौभाग्यवती जो माताएं होती हैं, सोलहवीं रात्रि में इस माता के गर्भ की स्थापना हो जाती है उसके रीढ़ के विभाग में लिपटी हुई स्वातकेतु नाम की नाडत्री होती है वह स्वातकेतु नाम की नाड़ी का सम्बन्ध माता के ब्रह्मरन्ध्र से होता हुआ और नाभि में त्रिवेणी से होता हुआ वह माता की लोरियों में रमण करता हुआ बालक की नाभि से उस नाडत्री का सम्बन्ध होता है, समन्वय होता है। यह स्वतः हो जाता है। उसमें विशेषता है कि सूर्य से उस नाड़ी का सम्बन्ध होता है। सूर्य में से उन किरणों को वह नाड़ी अपने में ग्रहण करती है जिन किरणों से बालक तेजस्वी बन करके, ओजस्वी बन करके हृदय गामिनी बन करके वह किरण आती रहती है और बालक को तेजस्वी बनाती रहती है।

परन्तु देखो, अचिन्नम्ब्राम् केतुः अस्तुः वह नाड़ी केवल तेहरवीं रात्रि और षोडस (सोलहवीं) रात्रि में ही जागरूक होती है। यह विज्ञान हमें कहाँ से प्राप्त होता है? बेटा! वेदों से प्राप्त होता है। जब वेद का अध्ययन करते हैं, जब मातायें मनन करने लगती हैं। यह विज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है? यह मस्तिष्कों से प्राप्त होता है। जब मानव मनन चिन्तन करता है, मातायें जब चिन्तन करती हैं, विशेष चिन्तन होता है, तब यह विद्या प्राप्त होती रहती है।

देवकी और वासुदेव दोनों महाराज कंस के कारागार में रहते थे। जब उनके सातवें गर्भाशय की स्थापना हुई और द्वितीय माह हुआ, तो माता की अस्ताम् ब्रह्मणाः सीधे नेत्र के ऊर्ध्व भाग में एक लालिमा धारी उत्पन्न हो गई। तो विचार करने लगी, अपने

देव से बोली, हे प्रभु! ये लालिमा की धारी कैसे निर्मित हुई है? इसको मैं जान नहीं पाई हूँ। द्वितीय में हरितिमा हो गई। हरितिमा हो करके इसके ऊपर चिन्तन होने लगा। तो वासुदेव वैज्ञानिक भी थे, और वह गायत्री का चिन्तन करते थे, मनन करते थे। क्योंकि वहाँ कार्य क्या था दोनों मनन करते रहते थे। तो मुनिवरों! उन्होंने कहा, हे देवी! सम्भवतिः नित्याम् देवाः अब्रतम् ब्रह्मवरणीः कृतोः अस्तोः उन्होंने कहा, देवी! कुछ ऐसा मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारे गर्भ स्थल से ऐसे सन्तान का जन्म होने वाला है जिससे इस कारागार के बन्ध से हम मुक्त हो जाएं। उन्होंने यह निश्चित कर लिया कि यही वाक्य है।

मेरे प्यारे! यह विज्ञान है जो लालिमा माता के रहन सहन की प्रतिक्रिया का परिवर्तन हो जाता है। यह विद्या कहाँ है? मुनिवरों! यह दर्शनों में तुम्हें प्राप्त होगी। जब मानव अपने दर्शन करने लगता है तो द्वितीयों का वर्णन नहीं क्योंकि अपना ही दर्शन करना है। आज बेटा! मैं तुम्हें विशेष चर्चा नहीं करता। यह तो भयंकर बन है। मैं कहा तक उच्चारण करता रहूँगा, ये वार्त्तायें? विचार विनिमय केवल यह है कि यह सूर्य विद्या, ये में अग्नि विद्यायें नाना प्रकार के वैज्ञानिक इस प्रकार के हुए हैं, वर्तमान में भी हो सकते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं कर रहे हैं। परन्तु देखो, विज्ञान मानव का मस्तिष्क है विज्ञान में प्रवेश होना बहुत अनिवार्य है। विज्ञान में जाएं बिना संसार में अपने जीवन को ऊँचा नहीं बना सकता है और विज्ञान में जाएं बिना मानव योगी भी नहीं बन सकता।

मैं बेटा! कल तुम्हें उच्चारण करूंगा कि मानव विज्ञान से कैसे योगी बनता है, और मैं कल यह उच्चारण करूंगा कि विज्ञान का योग से क्या समन्वय (सम्बन्ध) है? आज मैंने विज्ञान से व्यवहार की विशेषतायें प्रगट की हैं। मैंने कुछ मूल रूपों में की हैं कोई विशेषता तो कर ही नहीं पाए।

परन्तु देखो, उच्चारण करना केवल यह है कि इस विज्ञान से राष्ट्रों को भी विजय किया जाता है और विज्ञान से व्यवहार को भी महान् बनाया जाता है। इस विज्ञान में मानव दर्शन विद्यमान रहता है और मानवीय दर्शन को करना बहुत अनिवार्य है। मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? आज का हमारा वाक्य क्या है? कि हम परमपिता परमात्मा की

आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। हम सूर्य विद्या पर अनुसन्धान करने वाले हों। सूर्य की नाना किरणों से जो संसार का निर्माण करनरे वाली है, जो पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करके नाना धातुओं का पिपाद बना करके अनेक रूपों में ला देती हैं, उससे समाज का जीवन संचालित होता है, राष्ट्रों की प्रवृत्तियां ऊँची बना करती हैं। इन किरणों से महाराजा हनुमान प्रायः प्रवेश किया करते थे। महात्मा ध्रुव, देवर्षि नारद इस विद्या के पारायण कहलाते थे, जो सदैव चिन्तन करते रहते थे।

चिन्तन और मनन करना क्या? प्रत्येक वस्तु का मनन करना है, चिन्तन करना है। मनन करके उनके गुणों के स्वरूपां का वर्णित करना वह चिन्तन कहलाता है। बेटा! हम सूर्य को दृष्टिपात कर रहे हैं। सूर्य की किरणों को जब हम मनन करने लगते हैं तो मननशील बन करके किरणां के ऊपर अधिपथ्य हो जाता है।

आओ! मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैंने कुछ वैज्ञानिक, कुछ व्यावहारिक बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित किया है। आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। आज के विचार विनिमय करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। मेरे प्यारे! हमारा मन्तव्य यही है कि हम सागर से पार हो जाएं। मनन और चिन्तन करने की हमारी प्रतिक्रिया बनी रहे और सात्विकता से बनी रहे, महत्ता से बनी रहे। प्रभु का चिन्तन करते हुए संसार सागर से पार हो जाएं।

कल का विषम क्या? कल मैं यह उच्चारण करूंगा कि विज्ञान से कैसे आध्यात्मिकवाद का समन्वय है? क्या दोनों का मिलान है? कैसे वैज्ञानिक योग में प्रवेश करता है? विशेष चर्चायें कल प्रगट करूंगा। आज का वाक् समाप्त! अब वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान : लाक्षागृह बरनावा समय : 3 बजे।

१७   20 02 1980 पुष्प 36 प्राणो का विज्ञान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद

मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह मेरा देव प्रतिभाशाली कहलाता है।

जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चेतन जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है। उस महान् मेरे प्यारे! प्रभु की एक महत्ता और उसी की यह प्रतिभा दृष्टिपात आ रही है। आज हम तुम्हें उस मनोहर क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं। जहाँ प्रत्येक वेद मन्त्रों का विश्लेषण होता रहता है और उन वेद मन्त्रों के ऊपर विचार विनिमय होता रहा है, जिन वेदमन्त्रों के ऊपर परंपरा से ही ऋषि मुनि! अनुसन्धान करते रहे हैं। अथवा विचार विनिमय करते रहे हैं।

आज का हमारा वेदमन्त्र हमें क्या कह रहा है? क्योंकि हमारे यहाँ जब प्रत्येक वेदमन्त्र का विचार विनिमय किया जाता है। तो उस वेदमन्त्र में विचार के लिए अद्वितीयता हमें दृष्टिपात होने लगती हैं और वह तृतीयता आभा में जो हमने पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था। परन्तु बहुत पुरातन काल की वार्त्ता है पुत्रो! जब यहाँ नाना ऋषिवर विद्यमान हो करके अपना विचार विनिमय करते रहे।

मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय देवर्षि नारद और महात्मा ध्रुव, महात्मा श्वेत्ताश्वेतर और महात्मा स्वभोगकेतु ऋषि, बेटा! वे चारों विराजमान हो करके, परमपिता परमात्मा को अपना साक्षी बना करके विचार विनिमय करने लगे। देवर्षि नारद मुनि से महात्मा ध्रुव ने यह प्रश्न किया कि महाराज! आध्यात्मिकवाद और विज्ञान किसे कहते हैं? यह विज्ञान आध्यात्मिकवाद का पूर्व प्रेरक है? क्या आध्यात्मिकवाद और विज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं? विज्ञान जो भौतिक वाद है, परमाणुवाद है अथवा जो सूक्ष्मत्व है उसका आध्यात्मिकवाद से क्या समन्वय है।

मेरे प्यारे! जब यह प्रश्न आया तो इसके ऊपर विचार विनिमय होने लगा। अनुसन्धानवेत्ता अनुसन्धान करने लगे। देवर्षि नारद मुनि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि जैसे

एक मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है कि जैसे एक मानव आध्यात्मिकवाद में जाने को तत्पर है। विचार आता है कि आध्यात्मिकवाद में जाने को तत्पर है। विचार आता है कि आध्यात्मिकवाद का विज्ञान से क्या सम्बन्ध हैत्र? मेरे प्यारे! यही प्रश्न ब्रह्मचारिणी शबरी ने महर्षि भारद्वाज से किया था। तो भारद्वाज मुनि ने सुन्दर उत्तर दिया कि हे पुत्री! कोई भी मानव जब योग में प्रवेश करना चाहता है, तो सबसे प्रथम जिस यन्त्र से वह योग में जाना चाहता है, उस यन्त्र को जानना बहुत अनिवार्य है।

मेरे प्यारे! देखो,! भारद्वाज मुनि ने कितना सुन्दर उत्तर दिया। परन्तु उन्होंने कहा, महाराज! वह यन्त्र क्या है? तो वेद के ऋषि ने कहा, शरीर बृव्हीः वृत्ताम् देवाः यन्त्रण गृतिः। उन्होंने कहा कि यह जो शरीर है यह यन्त्र है, और इस यन्त्र में जीवात्मा विद्यमान है, और वह चेतना अपने सखा के द्वार पर जाना चाहती है। तो यन्त्र में विद्यमान हो करके ही उसमें जाना चाहती है।

मेरे प्यारे! देखो,! उसका जो रूप है, वह जो यन्त्र है उसको जानना बहुत अनिवार्य है। और जैसे यह यन्त्र है ऐसे यह हमें जो संसार दृष्टिपात आ रहा है, जितना भी लोक लोकान्तरों वाला जगत् है, जितना एक दूसरे की छाया में रहने वाला यह जो मण्डलवाद है यह बाह्य जगत् भी बेटा! एक यन्त्र है।

तो मेरे प्यारे! देखो,! बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का जब समन्वय होता है, तो उस समय मुनिवरों! देखो,! दोनों का समन्वय होते ही इस विज्ञान में हम सफलता को प्राप्त होने लगते हैं। आओ! मेरे प्यारे! बहुत पुरातन काल में हमने तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था। जैसे नेत्रों का विषय है, जैसे घ्राण का विषय है और जैसे श्रोत्र हैं, अन्नवती रसना है बेटा! देखो,! प्रत्येक इन्द्रियों का यह जो विषय बना हुआ है इन विषयों को जानना अनिवार्य है। और इन विषयों की जो गति है इन गतियों को भी जानना बहुत अनिवार्य है और इस मानव शरीररूपी यन्त्र में मुनिवरों! दस प्राण कहलाते हैं 1. प्राण, 2. अपान, 3. उदान, 4. समान, 5. व्यान, 6. नाग, 7. देवदत्ता, 8. धनंजय, 9. कूर्म और 10. ककृल। ये दस प्राण कहलाते हैं। इन प्राणों की क्या क्या गतियां हैं और ये मानव शरीर के अन्तर में और बाह्याजगत् में क्या गति कर रहे हैं?

इन दसों प्राणों के अन्तर्गत संसार का विज्ञान आ जाता है। और इन्हीं की आभा में रमण करता है।

मुनिवरों! देखो,! इसी प्रकार यह विज्ञान कहलाता है और ये जो ज्ञानेन्द्रियां हैं इनसे ज्ञान होता है। जितना ज्ञान है संसार का वह इन्द्रियों का स्वरूप कहलाया गया है। इन्द्रियां उसी स्वरूप में रमण करती रहती हैं। उनका जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है।

तो विचार विनिमय क्या? मेरे प्यारे! देखो,! शरीर रूपी यन्त्र को जानना यह सूक्ष्मता में रमण कराना है। एक मानव विचारता है कि मैं वाणी के स्वरूप को जानना चाहता हूँ। अब बेटा! जब वाणी के स्वरूप को वह जानता है तो वाणी के स्वरूप को जानने के लिए अपनी वाणी को वह दीर्घता से उच्चारण करता है और दीर्घता से उच्चारण करने के पश्चात् उसके कुछ यन्त्रों का निर्माण करता है। जब वह यन्त्रों का निर्माण करता है, तो यन्त्र भी निर्मित हो जाते हैं। अब जब यन्त्र निर्मित हो गए तो उन्हीं यन्त्रों पर विजरामान करा करके इस वाणी को, इस शब्द को अन्तरिक्ष में प्रवेश करा देता है।

जब अन्तरिक्ष क्षेत्र में जाता है, जब अन्तरिक्ष क्षेत्रों में रमण करने लगता है तो अनतरिक्ष में जो शब्द है वह पृथ्वी की परिक्रमा जैसे कर रहा है हम उनको साकार रूप देना प्रारम्भ करते हैं। और उसको अग्नि की तरंगों पर विद्यमान करके उसमें अपने चित्र भी अन्तरिक्ष में प्रवेश करा देते हैं। जब अन्तरिक्ष में चित्रों का दिग्दर्शन होने लगता है, तो अमुक प्राणी कहता है, जो चित्त के मण्डल को जानता है, कि मैं तो पितरों का दिग्दर्शन कर रहा हूँ, मैं पितरों के दर्शन करने जा रहा हूँ।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि उद्दालक गोत्र में नाना ऋषि हुए इस प्रकार के, जिन ऋषियों ने बेटा! अनुसन्धान किए अथवा याग किए, याग के पश्चात् उन्होंने याग को अपना माध्यम बना करके साकल्य परणित करके शब्दों के साथ में स्वाहा उच्चारण करके साकल्य परणित करके शब्दों के साथ में स्वाहा उच्चारण करके पुरोहितों के द्वारा, अपने द्वारा वेद मन्त्रों का गान गा गा करने लगे। उन ऋषियों ने बेटा! जब परीक्षण किया तो कैसा अद्भुत परीक्षण

थात्र मुझे स्मरण है बेटा! कि स्वाहा उच्चारण करते रहते और अग्नि की तरंगों को जानते रहते थे। अग्नि की तरंगों को जानने के पश्चात् उन्होंने यन्त्रों का निर्माण किया और यन्त्रों का निर्माण करके उन यन्त्रों में जैसे वे विद्यमान रहते ऋषि और ऋषि पत्नी तो मुनिवरों! देखो,! उनके चित्र यन्त्र में दृष्टिपात आने लगे।

जब चित्र दृष्टिपात आने लगे तो विचारा गया कि शब्दों में तो कोई शक्ति है। शब्दों में तो चित्र विद्यमान हैं, उन चित्रों को दृष्टिपात करने लगे। वही चित्र देखो,! अन्तरिक्ष में रहते हैं। यन्त्र में उन्होंने और विकास किया। यन्त्रों का निर्माण किया। निर्माण करते करते वे अपने महापुरुषां के दर्शन करने लगे। जब महापुरुषों के दर्शन करने लगे, उनके पूर्व वंश में जितने पिता, महापिता, पड़पिता 50वें महापिता के शब्द अन्तरिक्ष में गति कर रहे थे और वे शब्द उस चित्र में चित्रण हो रहे थे और उन चित्रों के चित्र आ आ करके और वे पितरों के रूप में उन्हें दर्शन दे रहे थे।

मेरे प्यारे! वे जो चित्र आ रहे थे, जो शब्द विद्यमान हैं अन्तरिक्ष में, वे 50वें महापिता के चित्र उन्हें दृष्टिपात आ रहे थे। अनुसन्धान किया गया कि अन्तरिक्ष तो मुनिवरों! एक शब्द का भण्डार है, चित्रों का भण्डार है। इसमें तो चित्र भी और शब्द भी विद्यमान हैं। उन्हें अपने यन्त्रों में दृष्टिपात करने लगे। मुझे स्मरण आता रहता है पुत्रो! कि उद्दालक गोत्र में एक श्वेतम् भानुक ऋषि हुए हैं। उनकी पत्नी सुकन्त केतु जब वे दोनों याग करते थे, तो पितरों के दर्शन यन्त्रों के द्वारा उनको होते थे। जहाँ यज्ञशाला थी वहाँ सूक्ष्म सी विज्ञानशाला भी विद्यमान थी। विज्ञानशाला में नाना यन्त्र नाना रूपों में यन्त्रों में चित्र चित्रण हो रहे थे उन्हें वे दृष्टिपात कर रहे थे।

यह विज्ञान तो मानव के मस्तिष्कों में रहता है। आगे विचारा गया कि हम नेत्रों से दृष्टिपात करते हैं। नाना रूपों को दृष्टिपात करते हैं और वे अग्नि की तरंगों पर वे धाराएं, नेत्रों की धारा विद्यमान हो करके वह अन्तरिक्ष में गति करने लगी। जब अन्तरिक्ष में गति करने लगी, तो उन दोनों गतियों का जो समन्वय था वह मानव के नेत्रों से है। अब मानव को क्रोध की मात्रा आई, मधुपन की, मोह की मात्रा उत्पन्न हुई परन्तु प्रत्येक रसों में तरंगें चल रही हैं। और वे तरंगें अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो रही हैं। वे तरंगें बन

करके और तरंगित हो करके प्राणी को प्राप्त होने लगती हैं। जिस प्राणी की वे तरंगें होती हैं वे उसी को प्राप्त होती रहती है वे समाप्त नहीं हो जातीं।

परन्तु जब वैज्ञानिकों ने यह विचारा कि वेद का मन्त्र यह कहता है कि रूपं वृहेः रूपणाम् ब्रह्मणाऽप्राम् चक्षुः मेरे पुत्रों! देखो,! नाना मण्डलों का धारण करने वाले उनके रूपों में दृष्टिपात करने वाले ये नेत्र कहलाते हैं। तो विचारने वाला दार्शनिक विचारने लगा। वह विचारता रहा कि नेत्रों में क्रोध की तरंगें क्रोध को परणित हो जाती हैं। और तमोगुण की तमोगुण को प्राप्त, सतोगुणी सतोमयी को प्राप्त होती रहती हैं। मेरे पुत्रों! देखो,! प्रत्येक इन्द्रिय में तरंगें चल रही हैं। अग्नि की तरंगें आ रही हैं। उन अग्नि की तरंगों से यह तरंगित होती हुई आत्मीयता के भाव को लेकर के वह अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो रही हैं। मेरे प्यारे! वेद के ऋषि और वैज्ञानिक जब यह विचारने लगे कि यह तो बड़ा ही अद्भुत ब्रह्माण्ड है। एक अद्भुतता में हमें दृष्टिपात हो रहा है। तो मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है उददालक गोत्र भली भांति मुझे दृष्टिपात है। उनके यहाँ नाना चित्रावलियों के निर्माण होने लगे। निर्माण होते हुए बेटा! कई चक्षुओं के रूपों को दृष्टिपात होने लगे। एक समय मनस्तत्व को नेत्रों से दृष्टिपात करके उनके चित्त में विद्यमान जो चित्त अग्रणीय बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहे थे। उन गति वाली नेत्रों की ज्योति वाली तरंगों को भी उन ऋषियों ने जानने का प्रयास किया।

हमारे यहाँ बेटा! क्या प्रयत्न नहीं हुआ। मुझे स्मरण है उद्दालक गोत्र के ऋषियों ने मेरे पुत्रो! देखो, अपनी अनुसन्धानशाला का निर्माण किया और यह महर्षि भराद्वाज मुनि के यहाँ भी होता रहा है। मुनिवरों! देखो, जब मानव को क्रोध आने लगा। क्रोध की उतनी मात्रा बलवती हो जाती है। जितना मानव अपने को संकुचित्त बना लेता है, उतने ही क्रोध की मात्रा सूक्ष्म बन जाती है। अब जब क्रोध आने लगा, क्रोध की मात्रा उत्पन्न होने लगी तो मेरे प्यारे! वही क्रोध चित्र बन करके अन्तरिक्ष में रमण करने लगा।

उसको वैज्ञानिकों ने क्या, चिकित्सकों ने विचारा। मुझे स्मरण है राजा रावण के यहाँ सुधन्वा वैद्यराज रहते थे। एक समय सुधन्वा और अश्वनीकुमार महात्मा भुंजु के पुत्र दोनों विद्यमान होकर यह विचारने लगे, 1. यदि मानव को सतोगुण में क्रोध आता है

तो उसकी शरीर में क्या प्रतिक्रिया होती है? 2. उसके रजोगुण में आता है, उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है? और 3. जब यह क्रोध तमोगुण में आता है तब क्या प्रतिक्रिया होती है? और उनमें भ्ी नाना प्रकार के भेदन हैं। मुनिवरों! देखो,! महाराजा सुधन्वा, अश्वनीकुमार ये सब आयुर्वेद के मर्म को जानते थे। आयु के मर्म को जानते थे। 1. महाराज वैद्यराज सुधन्वा ने यह कहा कि जब मानव को सतोगुण में क्रोध आता है उसको क्रोध नहीं कहते उसको मन्यु कहते हैं।

वह सतोगुण में दूसरे के उपकार के दूसरे के गुणों की चर्चा कर रहा है। उनमें यदि अति हो जाती है अति में क्रोध भी बन जाता है और वह क्रोध मानव के मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भागम् ब्रह्मोः। जिसे लघु मस्तिष्क कहते हैं जिसमें सूक्ष्म सूक्ष्म तरंगें आती रहती हैं और वह तरंगें नृत्य करती रहती हैं। तो मुनिवरों! इस क्रोध से वह सूक्ष्म ब्रह्मरन्ध्र में लघु मस्तिष्क जो होता है उसके ज्ञान तन्तु समाप्त हो जाते हैं।

जब मानव को रजोगुण में क्रोध आता है तो उसकी रजोगुण की जो मर्यादा होती है उसमें जो सतोगुणी ज्ञान है उसका माध्यम समाप्त हो जाता है। 3. और जब तमोगुण में क्रोध आता है तो मानो देखो, नाग प्राण अमृत का विष बना करके मानव को विषैला बना देता है। मानव को विष कर बना देता है और वह जो नाग प्राण है उसका ऊर्ध्व मुख हो करके शरीर में जो अमृत होता है, क्रोध अति के आने से तमोगुण में वह नाग प्राण उस अमृत को निगलता रहता है और उसका विष बना करके त्यागता रहता है। मानव का शरीर रुग्ण हो जाता है। मानव विषधर बन जाता है। क्रोध में परणित हो जाता है। मानव की अर्द्ध मृत्यु हो जाता है। यह महाराजा सुधन्वा ने वर्णन किया है। 4. और जब मुनिवरों! इस मानव को रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण मिश्रित हो करके क्रोध की मात्रा आती है तो उस मानव का बेटा! ब्रह्मचर्य के सहित ब्रह्मरन्ध्र के तन्तु समाप्त हो जाते हैं। तो प्यारे मेरे! इस अग्नि में रमण नहीं करना चाहिए।

अग्नि क्या है! इसको वैज्ञानिकों ने विचारा। मुझे स्मरण है बेटा! महाराजा सुधन्वा ने और अश्वनी कुमार ने और आयुर्वेद के मर्म को जानने वाले कुछ कुछ राजा रावण के विधाता कुम्भकरण जी थे। वे कुम्भकर्ण भी जानते थे। बेटा! आयुर्वेद में इतना जानते

थे वहाँ विज्ञान में तो वह पारायण थे। उनका विज्ञान नितान्त कहलाया गया था। परन्तु जब वे अनुसन्धान करने लगे तो महाराजा कुम्भकर्ण रेवणी ने यह कहा हे सुधन्वा! हे वैद्यराजो! अश्वनीकुमारो! आओ कुछ विचार करेंगे। वह विचार करने लगे। उन्होंने एक विज्ञानशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया और निर्माण करके एक समय सुधन्वा के विधाता थे रेणकेतुका। एक समय उन्हें क्रोध आ रहा था और वह तमोगुण से सना हुआ क्रोध था। तब राजा कुम्भकर्ण ने अपने यन्त्र में स्थिर कर लिया और जब यन्त्रों में उसको दृष्टिपात करने लगे। उन्होंने इन परमाणुओं को लेकर के यन्त्रों में स्थिर किया और मुनिवरों! देखो, केवल एक क्षण का ही क्रोध था और क्षणों क्षणों के परमाणु ले करके उन्होंने यन्त्रों में स्थिर किए और जिस मानव को वह परमाणु जल में प्रवेश करके परणित कर दिए वही मानव साधारण मृत्यु को प्राप्त होता रहा।

तो मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या? हमें क्रोध नहीं करना चाहिए। यह मृत्यु का हेतु बन जाता है। इसमें मानव की जो अमृतमयी शक्ति है वह अमृतमयी शक्ति मुनिवरों! विषधर बन करके मानव के रोगों का मूल कारण बनता है। इसीलिए आचार्यों ने यह कहा है कि क्रोध नहीं करना चाहिए। तो वैज्ञानिकजनों ने उसको प्रत्यक्ष दृष्टिपात किया। प्रत्येक दशा में मानव को क्रोध आता है। मुनिवरों! देखो, माता को क्रोध आता है। मुझे स्मरण आता रहता है राजा रावण के काल में विज्ञान बहुत प्रियतम में था परन्तु एक समय कुम्भकर्ण अश्वनीकुमार और सुधन्वा एक समय कहीं नगरी में भ्रमण कर रहे थे तो रात्रि समय एक पत्नी अपने पति से क्रोध कर रही थी, और वह अत्यन्त क्रोध कर रही थी। जब क्रोध करते करते वह पृथ्वी पर ओत प्रोत हो गई, तो मुनिवरों! देखो, उस माता के इतना विष बलवती हुआ उन्होंने यन्त्रों में उसके क्रोध को परणित कर लिया। जब परणित कर लिया। तो ऐसा कहा जाता है उस माता के गर्भ स्थल में षष्ठ मास का गर्भ गर्भाशय में विद्यमान था। जब अश्वनीकुमारों ने यन्त्र से विभाजन किए और यन्त्रों में ले करके उन परमाणुओं को विभक्त किया। विभक्त करने से ऐसा उन्होंने निर्णय दिया कि यह जो माता के गर्भ में बाल्य है षष्ठ माह का वह बालक छटे माह में बाह्य जगत्

में आ करके इसकी मृत्यु हो जाएगी।

मुनिवरों! उन वैज्ञानिकों में कौन सा वैज्ञानिक ऐसा था? बेटा! राजा रावण के विधाता कुम्भकरर्ण जो महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ अनुसन्धान करते थे, वे अज्ञातवास में रह करके अनुसन्धान करते रहते थे। उन्होंने, अश्वनीकुमारों ने वैद्यराज की दृष्टि से यह निर्णय दिया। तो वेद के ऋषियों ने यह कहा, हे माता। तेरे गर्भस्थल में जब बालक अथवा शिशु हो, तो क्रोध न कर। तू शान्त होकर के प्रभु का चिन्तन कर उससे तेरा गर्भाशय उज्ज्वल बन जाएगा। तो मेरे पुत्रो! जब उन्होंने ऐसा वर्णन किया, वैज्ञानिकों ने यन्त्रों में दृष्टिपात किया तो मेरे प्यारे! देखो, यन्त्राणि गणाम् ब्रह्मो ऐसा वेद के आचार्यों ने निर्णय देते हुए कहा है। अश्वनीकुमारों ने, वैद्यराज सुधन्वा ने कहा है। वैद्यराज सुधन्वा ऐसे वैद्यराज थे कि औषधि स्वप्न में आ करके उनको अपने गुणों का वर्णन करती थीं। अपने गुणों का गुण वादन कराना ही उनका कर्त्तव्य कहलाया गया है। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है जब मुझे स्मरण आता है। हृदय प्रायः गद् गद् हो जाता है। और मैं यह कहा करता हूँ कि वास्तव में सुधन्वा जैसे वैद्यराज होने चाहिए राष्ट्र में।

मेरे प्यारे! गुण वादन करना। क्योंकि पञ्च महाभूतों से मानव के शरीर का निर्माण हुआ है। और इन्हीं के द्वारा नाना प्रकार की आभाओं का जन्म होता रहता है। तो मेरे प्यारे! अति क्रोध तमोगुण का क्रोध। रजोगुण का क्रोध, सतोगुण के क्रोध का गुण वादन करते हुए आदि ऋषियों ने कहा है कि हे योगश्वरम् ब्रह्मः वैज्ञानिकों ने अपने यन्त्रों में क्रोध को स्थिर कर कराके मृत्यु को अर्पित करा करके उससे प्राणियों की मृत्यु हो जाती है। अपने विष से हम वायु मण्डल को दूषित करते रहते हैं, कहीं क्रोध के द्वारा, कहीं कामना के द्वारा कहीं अति मोह ममता के कारण संसार को हम प्रभु की सृष्टि को हम दूषित करते रहते हैं।

मैं ममता का विरोधी नहीं हूँ। ममता होनी चाहिए। सामान्यता में होनी चाहिए। क्रोध मन्यु रूप में रमण करना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, वही मानव को जीवन देता है, आभा देता है, सतोगुणता प्रदान करता है। आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल परिचय देने आया हूँ। आज का हमारा विचार क्या? कि मुनिवरो,

देखो,? वैज्ञानिकों ने जब यह विचारा कि हमारे महापुरुषां के, हमारे पूर्व वंशधरों के चित्र भी अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हैं और हम जो भी कर्म करते हैं क्रोधाग्नि के नेत्रां की जो तरंगें हैं, वे भी अन्तरिक्ष में रमण कर रही हैं। उसको वैज्ञानिकों ने यन्त्रों में स्थिर किया और स्थिर करके कहा कि राजा के राष्ट्र में विज्ञान तभी महान् बनता है, जब मुनिवरों! विज्ञान को जान करके उसका प्रचार, मानव समाज के समीप किया जाए। समाज उनसे पवित्र बनता रहे। विज्ञान इसीलिए होता है। नष्ट करने के लिए नहीं होता।

उन्होंने विचारा कि हम अग्नि को जानें। यह अग्नि जो मुखारबिन्द से उत्पन्न हो रही है। मुनिवरों! देखो, बहुत से महापुरुषों ने अग्नि को साक्षी करके वाणी के स्वरूप को अग्नि बनाया। अग्नि बना करके मुनिवरों! विचारा। एक समय जब वैज्ञानिकों ने विचारा। क्या विचारा? कि राजाओं में विवाद बना। विवाद बन करके राष्ट्रों में अग्नि प्रदीप्त हो गई। एक दूसरे प्राणी, प्राणी को नष्ट करने लगा तो, ऋषियों ने, वैज्ञानिकों ने यह विचारा कि क्या, अद्भुतता दृष्टिपात कर रहे हैं? आज हम इसको जान नहीं पाए हैं।

मुनिवरों! उन्होंने यह विचारा कि हम इस वाणी को जानना चाहते हैं। उन्होंने वाणी को जानने का प्रयास किया। मेरे प्यारे! वाणी में जो अग्नि का बाह्य दोष था उसको जानने लगे। जानते जानते जैसे काष्ठ में अग्नि होती है जैसे ग्रीष्म ऋतु में वायु में अक्रि की तरंग हो करके अग्नि प्रवेश कर जाती है। मुनिवरों! वही अग्नि मानव के शरीर में प्रविष्ट हो जाती है।

साम गान वेत्ताओं ने सामगान को लिया और गान गाने लगे। जब गान गाने लगे, गान गाता रहा, उद्गार चलते रहे, जब मुनिवरों! प्राण की गति को जानने लगे, जब प्राण उद्गार बन गये, उन प्राणों का अभ्यास करते करते चार चार घड़ी का अभ्यास किया। उस अभ्यास के करने से मेरे प्यारे! वाणी अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे जब अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे मुनिवरों! बाह्य जगत् में समिधा को समिधा के घर्षण से अग्नि उत्पन होने लगी। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, मुझे स्मरण है यह वाणी ही मानो शब्द के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होने लगी। जब यह उत्पन्न होने लगी तो मुनिवरों! यह विचारा

कि यह तो विशाल अग्नि है। अग्नि को जानने का प्रयास किया और इस अग्नि को कहा दीपावली बनने लगी।
मुनिवरों! मुझे स्मरण है जब महात्मा सुकेता और महात्मा सुकेता ही नहीं महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज एक समय यह परीक्षण कर रहे थे कि जो उपनिवेशों में प्रवेश करके मैं जान रहा हूँ। यह वास्तव में यथार्थ है अथवा नहीं। तो महर्षि याज्ञवलक्य मुनि महाराज ने दीपावली अर्थात् बेटा! । दीप मालिका बनाई और उन्होंने गाना गाया। और मुनिवरों! उन्होंने एक एक स्वातिका अभ्यास किया था और उस अभ्यास के कारण जब गान गाने लगे तो मुनिवरों! दीपावली बनने लगी। मानो दीपों में प्रकाश आ गया। जब प्रकाश आ गया तो सामगान सिद्ध होने लगा। जब सामगान सिद्ध होने लगा तो मुनिवरों! देखों मुझे स्मरण आता रहता है जब गान गाने लगे, गानों की प्रतिष्ठा होने लगी तो विचारा गया यह वाणी जैसे दीपावली बनाती है उसी प्रकार ही शब्दों के कारण राष्ट्रों के राष्ट्र अग्नि में चले जाते हैं। गृह के गृह वाणी के कारण नष्ट हो जाते हैं।
इसलिए वेद के ऋषियों ने कहा, हे मानव! तू योग में प्रवेश करना चाहता है तो वाणी के ऊपर तेरा अनुसन्धान होना चाहिए। अनुचर होना चाहिए। तू वाणी को अनुचर बनाएगा उस समय तू योग में प्रवेश कर सकेगा। तो मुनिवरों! उन्होंने वाणी के ऊपर कितना परीक्षण किया और शब्दों को यन्त्रों में लाने का प्रयास किया। जब गान के रूप को, तरंगों को यन्त्रों में लेने लगे, यन्त्रों को विचारा गया तो देखो, भयंकर अग्नि प्रदीप्त होने लगी तो विचारने से प्रतीत हुआ कि यह सर्वत्र जो विज्ञान है, इस शरीर रूपी यन्त्र को जानना है। जिस यन्त्र में विद्यमान रहने वाला हृदय रूपी गुफा में यह आत्मा विद्यमान है, और यह आत्मा अपने सखा के द्वार पर जाना चाहता है। तो बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में विज्ञान का अध्ययन किया था। आज मैं तुम्हें सूक्ष्म परिचय दे रहा हूँ। इसका विश्लेषण नहीं कर रहा हूँ। इसकी सूक्ष्मता अर्थात् परिचय देना हमारा कर्तव्य है।
वह परिचय क्या है? मुनिवरों! परिचय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों को जानना और जान करके उनको बाह्य जगत् में प्रवेश करा देना। बाह्य जगत् में गुणों का लाना, मुनिवरों! और विज्ञान में प्रवेश करना क्योंकि ऋषि मुनियों ने विज्ञान को जाना है।

विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान किया है। यह भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों का समन्वय तो बेटा! मैं कल ही प्रगट करूंगा। मैं एक भूमिका बना रहा हूँ। इन वाक्यों की तुम्हें मैं भूमिका बना करके इन चर्चाओं को कर रहा हूं। कि आध्यात्मिकवाद में कैसे विज्ञान प्रवेश करता है?

परन्तु देखो, आज मैंने तुम्हें विचार प्रकट किया है कि हमें अपने जीवन को जानने के लिए, अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन करना बहुत अनिवार्य हैं और विज्ञानमय यन्त्रों का निर्माण करना हमारा यह कर्त्तव्य कहलाया गया है। मुनिवरों! विज्ञान में प्रवेश करना, विज्ञान में जाना यह हमारा एक महान् कर्त्तव्य कहलाता है। आज मैं तुम्हें बेटा! यह परिचय दे रहा हूँ। मैं किसी समय विश्लेषण करूंगा। आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ कि प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को जानना बेटा! मैं तुम्हें त्वचा के और रसना के सम्बन्ध में कुछ विचार विनिमय देकर के तुम्हें मैं कल आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करा सकूंगा। आज तो केवल तुम्हें मैं विज्ञान के युग में ले गया हूँ।

देखो,! शब्द का आकार अन्तरिक्ष में जाता है। हमारे यहाँ भारद्वाज मुनि महाराज ने, भारद्वाज गोत्र में, उद्दालक गोत्र में नाना ऋषि हुए हैं। जो इस प्रकार के अनुसन्धान करते रहे हैं। अनुसधान करना हमारा कर्त्तव्य है। बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय करना और जब तक मुनिवरों! दोनों का समन्वय नहीं होता और वैज्ञानिक नहीं बनता तो वह आध्यात्मिकवाद में प्रवेश नहीं कर सकता। तो मेरे प्यारे! दोनों प्रकार के भौतिकवाद को, विज्ञान को, परमाणुवाद को जानना बहुत अनिवार्य है। बिना परमाणुवाद के जाने हुए मेरे प्यारे! मानव योग में प्रवेश नहीं कर सकता। न उसे अधिकार रहता है। मुनिवरों! आयुर्वेद भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है। आयुर्वेद भी एक विज्ञान का अंग बना हुआ है। परमाणुवाद भी चित्रावली भी विज्ञान का अंग बना हुआ है। और शब्द आकार के सहित जो अन्तरिक्ष में गति करता है, वह भी विज्ञान का अंग बना हुआ है।

अग्नि और सूर्य में समन्वय करके अग्नि की तरंगों को जानना उन परमाणुओं को खनिजों के द्वारा तपाए हुए हैं। सूर्य से कौन कौन सी किरण तपाती रहती हैं? मुनिवरों! उनको

विभक्त करना, अणुवाद, परमाणुवाद को जानना यह भी मुनिवरों! इस विज्ञान का अंग हैं। मेरे प्यारे! यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक विज्ञान का अंग बना हुआ है और विज्ञान में रमण करने वाला है। तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें यह परिचय देने आया हूँ। कि हमें विज्ञान के अंगों को जान कर के आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना है। बेटा! अब मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज तो केवल इतना वाक्य उच्चारण करने के लिए मैं आया हूँ, केवल परिचय मैंने दिया है। कल मुझे समय मिलेगा मैं इसका कल परिचय विस्तार से प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण गान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान : लाक्षागृह, बरनावा समय 3 बजे

१८ 21 02 1980 पुष्प 36 अन्तरिक्ष विज्ञान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। मानो उसके गुणों का वर्णन कर रहा हो।

जिस भी वेदमन्त्र को तुम विचार विनिमय करने लगोगे उस वेदमन्त्र के गर्भ में सर्वत्र प्रकृति का ज्ञान और विज्ञान तुम्हें दृष्टिपात होने लगता है। परन्तु हमारे यहाँ नाना विचारक हुए हैं। और मुनिवरों! हम भी प्रायः कुछ विचार विनिमय करते रहते हैं। परन्तु चिन्तन और मनन करना भी यह मानव का कर्त्तव्य कहलाया जाता है। क्योंकि प्रत्येक मानव मनन और चिन्तन के लिए आया है। प्रत्येक वस्तु का मनन और चिन्तन प्रायः मानव को करना ही चाहिए। हमने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था।

उच्चारण करते हुए कहा था कि हमारे जीवन का सम्बन्ध विज्ञान से माना जाता है। जितना भी विज्ञान है, वह चाहे प्रत्यक्ष रूप में हो, चाहे परोक्ष में हो। परन्तु ज्ञान और विज्ञान से हमारे जीवन का प्रायः समन्वय रहता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि सर्वत्र जो ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात आ रहा है वे परमपिता परमात्मा की एक विज्ञानशाला के रूप में है। यहाँ प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनने के लिए आया है। अतः विज्ञान को जानना चाहिए। क्योंकि ज्ञान और विज्ञान के जाने बिना मानव अपंग रहता है। मानव के जीवन में सुन्दरता नहीं आती। तो जिस वस्तु को तुम दृष्टिपात करो, उस वस्तु में ज्ञान और विज्ञान होना चाहिए। ज्ञान और विज्ञानमयी धारा होनी चाहिए। मानव की ऊँची उड़ान होनी चाहिए।

प्रत्येक मानव यह कहता है, परम्परा से ब्रह्मः चक्रति देवः। प्रत्येक मानव ब्रह्मचारी बनने की कल्पना करता रहता है। प्रत्येक मेरी पुत्री वीरांगना बनने के लिए तत्पर रहती है। परन्तु जब यह विचारा जाता है कि यह ब्रह्मचारी और वीरांगना कैसे बनते हैं? इसके सम्बन्ध में आज हमारा वेदमन्त्र कुछ कह रहा है। वह वेदमन्त्र यह कह रहा था।

ब्रह्मः चरः प्रवाहः वर्णो तत्त्वः अवृत्ति दिव्याम् देवः। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी बनने के लिए चरि को जानना होगा। चरि में रमण करना होगा। चरि नाम बेटा! यह जो बिखरा हुआ परमाणुवाद है, इसको हमारे यहाँ चरि कहते हैं। जो चरी जाती है। मानो जैसे पशु नाना प्रकार की वनस्पतियों को चर लेता है। इसी प्रकार हे ब्रह्मचारी! तू ब्रह्म को प्राप्त होना चाहता है, तो ब्रह्म का बनाया हुआ यह विज्ञानमय जो ब्रह्माण्ड है, इसे जानना तुम्हारे लिए बहुत अनिवार्य है। मेरे प्यारे! इसको बिना जाने संसार में मानव ऊर्ध्व को प्राप्त नहीं होता। आओ आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? बहुत पुरातनकाल में हमने तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था। विज्ञान मानव का मौलिक गुण है। विज्ञान के बिना बेटा! आध्यात्मिकवाद में मानव प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि प्रथम वह विज्ञान को जानने वाला बने।

विज्ञान को कैसे जानें! मेरे प्यारे! अनुसन्धान के द्वारा क्रियात्मक के द्वारा। एक मानव मुनिवरों! देखो, विचरता है, एकान्तस्थली में विद्यमान है, दर्शनों की पोथी उसके समीप

है, वेद की पोथी है औश्र वेद में उच्चारण कर रहा है रसनत् प्रवाहः चन्द्रणाम् ब्रह्मी कृत्याम् बहु अमृतयामि देवा। हमारे शरीर में जो रसना है उस रसना का सम्बन्ध मुनिवरों! चन्द्रमा से रहता है। और वह जो चन्द्रमा है वह अमृत को बिखेरने वाला है। रसों का वह प्रतिनिधि कहलाता है। चन्द्रमा सर्वत्र रसों का प्रतिनिधित्व करता है। तो मुनिवरों! वह रसों को ले करके वह रसना उन्हें अपने में अनुभव कर रही है। जब रसना अनुभव करती है, एकांत स्थली में विद्यमान होने वाला ऋषि, वैज्ञानिक विचार रहा है। जो चन्द्रमा की कांति आ रही है, चन्द्रमा से जो रस आ रहा है। वह वनस्पतियों को रसमयी बना रहा ह ै। मेरे प्यारे! वह चन्द्रमा अमृतमय कहलाता है। उसको आचार्यों ने बेटा! अमृत माना है। परन्तु उसका सम्बन्ध मानव की रसना से रहता है। आचार्य कहते हैं रसना का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। वह चन्द्रमा जहाँ रसों का प्रतिनिधि वहाँ मेरे प्यारे! देखो, अमृत को बिखेरता रहा है।

वह चन्द्रमा कौन कहलाता है? देखो, चन्द्रमा समुद्रों से जलों को लेता है, अन्तरिक्ष में स्थिर कर देता है। जब प्रतिपदा द्वितीया तृतीया, चतुर्थी जब पूर्णमासी तक इसकी षोडश कला नहीं हो जाती हैं, तो मुनिवरों! ज्यों ज्यों यह चन्द्रमा कलाधारी होता रहता है, त्यों त्यों यह चन्द्रमा समुद्रों में से रस को लेकर के अन्तरिक्ष में परणित हो जाते हैं। इसी से धीमी वृष्टि होने लगती है। तो मुनिवरों! देखो, वह जो चन्द्रमा है, वह कैसा सौम्य है? केसा अमृतमय कहलाता है, षोडश कलाओं वाला है? बेटा! शुक्ल पक्ष में यह प्रतिपदा से प्रारम्भ अपनी कलाओं से सम्पन्न होता रहता है। ये कलाएं क्या हैं? मेरे प्यारे! षोषश कलाएं हैं। इन्हीं षोडश कलाओं में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। तो मुनिवरों! देखो, यह चन्द्रमा का सम्बन्ध, षोडश कलाओं वाले चन्द्रमा का सम्बन्ध मानव की रसना से होता है। और रसना में रस आता रहता है। नाना प्रकार के रसों को अपने में धारण करता रहता है वह रसी बना रहता है।

तो मुनिवरों! देखो, इस रसना को हमें जानना चाहिए। यह रसना बाह्य जगत् के आनन्द को अपने में गृहण करती रहती है और रसों का समन्वय किन किन पदार्थों से है? मानो इनका अणुओं से भी समन्वय है। यह सोम आदि बनकर के अग्नि के प्रतिनिधित्व

को प्राप्त होने लगते हैं। तो मेरे प्यारे! यह परमाणु जो चन्द्रमा में आभायित कर रहे हैं। उस को सोम बना रहे हैं। उसको हमें पान करना और उसे धारण करना बहुत अनिवार्य है। मेरे पुत्रो! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने आया हूँ। परिचय देने के लिए आया हूँ। मेरे प्यारे! वह क्या परिचय है? हम चन्द्रमा को अपना देवतव स्वीकार करते हैं। चन्द्रमा के द्वारा सन्तानों का जन्म होता है। यही रस बन करके वीर्यत्व के रूप में रजस्व के रूप में बेटा! बालक का निर्माण करता है, मुनिवरों! देखो, कलाओं के सहित निर्माण होता है। नौ माह में निर्माण होता है माता के गर्भ स्थल में है। निर्माण होता है। इसी जगत् को तुम नेत्रां के समान मानो रसना स्वादन से तुम बाह्य जगत् में नाना प्रकार के रसों का स्वादन कर रहे हो।

यही रस योगेश्वर अपनी आन्तरिकता में धारण कर लेता है और अन्तर्हृदय में इसका जब अनुभव करता है। मेरे प्यारे! ब्रह्मरन्ध्र से ले करके यह मूलाधार से ले करके ब्रह्मरन्ध्र तक चला जाता है। इन स्वादों का स्वादन करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में वह अमृत को अपने में धारण करता है। इस अमृत को बेटा! योगीजन अन्तर्हृदय में, अन्तर्मुखी हो करके देवता इसको पान करते हैं। मेरे प्यारे! इसको पान करना, बाह्य जगत् में रसों का स्वादन प्राणी कर रहा है। हे मानव! तू आन्तरिक हृदय में इसके पात को इसके रस को अमृत को तू आन्तरिक जगत् में ग्रहण कर लेगा, तो तेरी महत्ता और पवित्रता बनी रहेगी। आओ मेरे प्यारे! वह योगेश्वर बनने में मानो योगी बनने में सहायक बन जाता है अथवा योगेश्वर ही बन जाता है।

परिणाम मेरे प्यारे! देखो, यह विज्ञान है। प्रत्येक मानव विज्ञान में प्रवेश होना चाहता है। प्रत्येक मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है। मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा था मानव को स्पर्श होता है, उस स्पर्श क्रिया को जान लेना यह वायु का गुण माना गया है। जब स्पर्श करता है तो वह भिन्न भिन्न प्रकार का स्पर्श होता है। क्रोध का भी स्पर्श होता है, ममता का भी होता है और ममता में भी नाना प्रकार के और भेदन हैं। विचार विनिमय क्या? इस त्वचा का सम्बन्ध वायु से रहता है और वायु का समन्वय मानो प्राण से रहता है। और मेरे प्यारे! देखो,! वही स्वतः अप्राम्।

वायु रमण कर रहा है। वेद में गति कर रहा है। अपने में स्पर्श कर रहा है। स्पर्श करता हुआ मुनिवरों! देखो, आभा में परणित कर रहा है। विचारना क्या? मेरे प्यारे! देखो, वह उसी त्वचा के स्वरूप को जान करके वायु जो वेग में आन्तरिक जगत् में क्रीड़ा कर रही है। उस क्रीड़ा को जानना बहुत अनिवार्य है।

तो मेरे प्यारे! देखो, उसका स्थूल बनाना, स्पर्श करते ही मानव को अनुभव हो जाए क्रियात्मक वाक्यों में नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया और नाना यन्त्रों का निर्माण करते हुए उन्होंने कहा मेरे प्यारे! वह यन्त्र कैसे निर्मित करता है? स्पर्श वाले चित्रों को। क्योंकि वायु की आभा में प्राण गति करता है, प्राणों पर शब्द विद्यमान हो करके इस संसार को आभायित कर रहा है। तो मुनिवरों! वह स्पर्शवावी जो वैज्ञानिक होते हैं वह इसके ऊपर अनुसंन्धान करके परमाणुओं का निर्माण करते रहते हैं। नाना प्रकार के निर्माणवेत्ताओं मेरे प्यारे! जब निर्माण करने लगते हैं तो यन्त्रों का निर्माण होने लगता है। प्रकृति के वाङ्मय स्वरूप को जानने वाले वैज्ञानिक द्वारा वायु के वेग में रमण करके नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया जाता है।

आओ मेरे प्यारे! आज तुम्हें मैं उद्दालक गोत्र वाले ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ। उद्दालक गोत्र में ऋषि हुए हैं महाराजा विश्वेकृतिभानु ऋषि। मानो कृतिभानु भारद्वाज ऋषि मेरे प्यारे! विज्ञान में सदैव रमण करते रहते थे। एक समय वह भयंकर वन में विद्यमान हो करके यन्त्रों का निर्माण करने लगे। और विचारने लगे। मानो देखो, विज्ञान में रमण करने वाला ऋषि यह विचार रहा है। आभा में रमण कर रहा है। सम्भूति में मानो गति करता हुआ वह कह रहा है कि मैं वायु स्पर्श वाले यन्त्रों का निर्माण करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! उन्होंने कुछ यन्त्रों का निर्माण किया और उन यन्त्रों में इस परिक्रमा में, वायु के वेग में रमण करने वाला जो शब्द है, बेटा! उसको उन्होंने जाना। जान करके मेरे प्यारे! वह स्पर्श हो रहा था। इस स्पर्श में वह चित्रावलियों में दृष्टिपात आने लगा। मेरे प्यारे! यह जो स्पर्श भावना होती है उनके साथ साथ उसको मनोनीतता विद्यमान होती है। तो मुनिवरों! वह जो विज्ञानमय स्वरूप है, वह महान् कहलाया जाता

है।

आज हमें विज्ञान के क्षेत्र में जाना है। यदि हम आन्तरिक जगत् में प्रवेश करते हैं, तो बेटा! प्राणों का आदान प्रदान हो रहा है। परमराणुओं का आदान प्रदान हो रहा है और परमाणुओं का आदान प्रदान होकर विज्ञान के स्वरूप में हम रमण करते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए तुम्हें कहा था कि यदि क्रोध के यन्त्रों का निर्माण किया जाए। एक मानव क्रोधित हो रहा है, रजोगुण छा रहा है रजोगुण के छाने पर वायु मण्डल में वे तरंगें विद्यमान होती हैं। वैज्ञानिक जन उन क्रोधमयी तरंगों को एकत्रित करते हैं, तो मुनिवरों! देखो, उससे अणुवाद की उत्पत्ति होती है। अणु शक्ति की उत्पत्ति हो जाती है और मुनिवरों! देखो, उन परमाणुओं के। अणुओं को एकत्रित करके एक दूसरे से मिलान करते हैं। एक दूसरे का समन्वय करते हैं और एक दूसरे का समन्वय करने के पश्चात् मेरे प्यारे! उसमें एक महान् धारा उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो जाती है। मुनिवरों! देखो, उसमें भयंकर अग्नि के परमाणु होते हैं और अग्नि भी भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा था बेटा! मुझे एक समय स्मरण आता रहता है। कुछ ऋषि गण विद्यमान थे, उन ऋषियों के मध्य में देखो, विज्ञानवेत्ता भी विद्यमान थे, उन ऋषियों के मध्य में देखो, विज्ञानवेत्ता भी विद्यमान थे। वहाँ विज्ञानवेत्ताओं में, दार्शनिकों में विचार विनिमय हो रहा था। रात्रि का काल था। मुनिवरों! देखो, आन्तरिक जगत् से बेटा! यह जो जगत् है इस जगत् में से एक पूंछ वाला जो एक तारा मण्डल की आभा में पुच्छाकृति कहलाता है। वह एक तेजोमयी स्वरूप उन्हें दृष्टिपात आने लगा तो मुनिवरों! देखो, ऋषियां ने वैज्ञानिकां ने यह कहा कि महाराज! यह क्या है? तो उन्होंने यन्त्रों में उसकी छाया ली और यह कहा कि यह जो शनि मण्डल है, और शनि मण्डल में जो सूर्य शनि को प्रकाशित कर रहे हैं, उस सूर्य और शनि के मध्य में बृहस्पति आ गया है। और बृहस्पति के अभ्रूदय होने से अग्नि की, सूर्य की जो तेजोमयी किरण थी त्रुटकेतु जो किरण कहलाती हैं वह उसके भाग से जब मिलान किया उन्होंने, तो मानो उस भाग से वह छिन्न होकर के वह बृहस्पति की आभा में कुछ विभाग में छिन्न होकर के वह हमें दृष्टिपात हो रही है। तो मेरे प्यारे! कहीं कहीं

ऐसा होता है जैसा मेरे पुत्र ने मुझे वर्णन कराया कि सूर्य और पृथ्वी के मध्य में चन्द्रमा आ जाता है मानो वह छाया ग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार यह प्रायः संसार में होता रहता है। और संसार की धाराओं में इसी प्रकार का मानो एक दूसरे से एक दूसरा वृत होता है।

मैंने बहुत पुरातनकाल में कहा था एक समय बेटा! बृहस्पति के कुछ वैज्ञानिकों ने और मंगल के कुछ वैज्ञानिकों में जिन्में एक वैज्ञानिक का नाम सुनीतिकेतु था, सुनीतकेतु ने एक समय बेटा! मंगल में अपने यन्त्र का परीक्षण किया। परीक्षण करने से मंगल में कुछ गदेले हो गए। जब गढेले हो गए और विष राष्ट्र में, मानो मण्डल में प्रवाहित होने लगा तो उस समय मेरे प्यारे! ऐसा कहा जाता है वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष में एक यान का प्रादुर्भाव किया और वह जब यान गति करने लगा मंगल का यान पृथ्वी से मिलान करता हुआ मानो वह बुद्ध से मिलान करता हुआ और वह शुक्र के द्वार पर होता हुआ मुनिवरों! उनका वह यन्त्र विभक्त हो गया। तो शुक्र में भी गढेले हो गए। जब गढेले हो गए उसमें से तीक्ष्ण तरंगें उत्पन्न होने लगीं। तो मुनिवरों! देखो, जब वह गोलाकार वाले मण्डल में गति करने लगे सूर्य की किरणों उन गदेलों की पूर्ति कर देती हैं। मुनिवरों! वह पूर्ति हो गई। परिणाम क्या? मेरे प्यारे! देखो, यह विज्ञान है और इस विज्ञान का समन्वय मानव के भौतिक विज्ञान में रहता है।

मैं आज तुम्हें पुनः से यह वाक्य प्रकट कर रहा हूँ। प्रत्येक मानव यज्ञशाला में विद्यमान होता है। यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में याग कर रहा है। और अपनी आभा में अपनी पत्नी से कहता है कि हमें याग करना चाहिए तो वह याग कर रहा है। सुगन्धि कर रहा है। परन्तु उस सुगन्धि का समन्वय हमारे मानवीय जीवन से रहता है। और मानव का जीवन क्या है बेटा! वह एक प्रकार की यज्ञशाला है। यज्ञशाला में वेद के ऋषियों ने कुछ ऐसा कहा, याज्ञिक पुरुषों ने कहा है। हे होताओ! तुम यज्ञमान की वाणी को पवित्र बना दो। वेद के कुछ मन्त्र ऐसा कहते हैं कि हे होताओ! यज्ञमान की वाणी को पवित्र बना दो। मुनिवरों! देखो, ऋषि विचारते हैं कि मन्त्र ऐसा कहता है तो विचारने से प्रतीत हुआ और अनुसन्धान करने से प्रतीत होता है। कि यज्ञमान की वाणी जितनी पवित्र

होगी उतनी कल्याणकारी होगी।

यज्ञमान के नाना स्वरूप माने गए हैं। एक यज्ञमान वह है जो याग कर रहा है, एक यज्ञमान वह है जो मेरे प्यारे! यह जो संसार रूपी यज्ञशाला है इस यज्ञशाला का जो यज्ञमान है वह आत्मा है। और यह जो पञ्च महाभूत हैं ये यज्ञशाला के होता कहलाते हैं। बेटा! यह जो पञ्चमहाभूत हैं, 1. जल, 2. अग्नि, 3. तेज, 4. वायु और 5. अन्तरिक्ष। इनके द्वारा ही यह मानव की वाणी पवित्र होती है। और आत्मा की वाणी क्या है? बेटा! आत्मा की वाणी ज्ञान है, आत्मा की वाणी क्या है?? मेरे प्यारे! आत्मा की वाणी विवेक है। आत्मा की वाणी है? आत्मा की वाणी तीन आचन हैं। मेरे प्यारे! देखो, यह एक विशेष विशाल स्रोत हमारे समीप आता है कि यज्ञमान की वाणी क्या है? ज्ञान मेरे प्यारे! देखो, यह वाणी ज्ञान से सजातीय होना चाहिए। आत्मिकता का ज्ञान क्या है मानो देखो, मेरे प्यारे! विवेक है। विवेक होगा तो यह जो संसार रूपी समुद्र है यह मानव को मान और अपमान में ले जाता है। मेरे प्यारे! जिससे यह मानव अप्रात हो जाता है। मानव के तीन आचमन क्या हैं! बेटा! 1. ज्ञान 2. कर्म और 3. उपासना के द्वारा बेटा! वह इस संसार में रमण कर सकता ह। ै

विचारना क्या है पुत्रो! विचार क्या है? हे मानव! तेरी वाणी कौन पवित्र बनाता है? होता बनाता है। होता कौन है? जो आहुति दे रहा है। होता कौन है? जो याग कर रहा है इसलिए हे होताओ! तुम यज्ञमान की वाणी को पवित्र बना दो। वाणी क्या है? जो शब्दों से उच्चारण कर रहा है। यह भी वाणसा कहलाती है, और मुनिवरों! देखो, मानव की जो प्रवृत्तियां हैं वे भी वाणी कहलाती हैं। मुनिवरों! यज्ञमान के अन्तर्रूपी हृदय में जो गुफा विद्यमान है, उसमें जो ज्ञान और विज्ञान का भण्डार है, मानो वह भी एक वाणी के रूप में प्रकट हो जाती है। परिणाम क्या? हे यज्ञमान! तेरी वाणी क्या है? हे उद्गाताओ! आओ तुम यज्ञमान को वाणी को पवित्र बनाओ। मेरे प्यारे! देखो, उद्गान गाने वाला गा रहा है, यज्ञमान उसे श्रवण कर रहा है। मेरे पुत्रो! उसकी वाणी पवित्र हो रही है। उसकी वाणी में तेज आ रहा है। वह स्वाहा उच्चारण कर रहा है। स्वाहा कह करके साकल्य दे रहा है। मानो सूर्य के सदृश बेटा! वह तेजोमय बनता है। परिणाम क्या?

मेरे प्यारे! वह याग है। याज्ञिक बन करके आगे चल करके वह पितर के दर्शन करता है। वही याज्ञिक पुरुष है जो मेरे प्यारे! पितर के दर्शन करता है।

एक समय मुझे स्मरण है उद्दालक के गोत्र के एक ऋषि थे बेटा! जिनका नाम सुकेता था। वह ब्रह्मचारी सुकेता प्रातःकालीन याग कर रहा था तो बेटा! उसमें एक वेदमन्त्र प्रातःकालीन याग कर रहा था तो बेटा! उसमें एक वेदमन्त्र आया पितरश्चम् पित्रो देवस्यताम् देवः पितरो अन्तरिक्षम् लोक, कि पितर लोकों का मुझे दर्शन करना है। मैं कैसे करूं? मेरे प्यारे! पितर के दर्शन करने के लिए वह ब्रह्मचारी अध्ययन करने लगा। अध्ययन करते करते विज्ञान में प्रवेश हो गया। याग करने लगा। यज्ञशाला का निर्माण किया, विज्ञानशाला का निर्माण किया। विज्ञानशाला और यागों का दोनों का समन्वय करने लगा। समन्वय करता हुआ परमाणुवाद को एकत्रित करने लगा। तो मुनिवरों! अन्तरिक्ष में जो उनके पिता, महापिता रमण कर रहे थे, उनके चित्र मुनिवरों! उनके यन्त्रों में दृष्टिपात आने लगे। बेटा! जब उनके चित्र आने लगे तो वह दृष्टिपात करने लगा। तो पितर में एक पितर के दर्शन हुए तो वे याग कर रहे थे। और याग में कैसे आहुति दे रहे थे? वैसा ही चित्र ऋषि के उद्दालक गोत्र के सोलहवें वंश के ऋषि कहलाते थे। और सोलहवें प्रपौत्र अपने महापिता के दर्शन कर रहा है वह आहुति दे रहा है। वाणी पवित्र बन करके द्युलोक को जा रही है।

तो मेरे प्यारे! वह जो विज्ञान है, इसे कौन जानता है? बेटा! यह विज्ञान मानव के समीप रहता है। यह मानव के यन्त्रों में जाना चाहिए। इन यन्त्रों का निर्माण करना चाहिए और यन्त्रों का निर्माण करते हुए मानो देखो, उसको यन्त्रों में नियन्त्रण करके साक्षात्कार कराने वाला बनाए। विचार विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करने आया हूँ कि प्रत्येक मानव को यह विचार विनिमय करना है कि हमें अपने जीवन को महान् और पवित्र बनाना है। हम विज्ञान में प्रवेश करना चाहते हैं। मानव के जीवन से कितना समन्वय है इस विज्ञान का बेटा! एक मानव उड़ान उड़ रहा है। यन्त्रों में विद्यमान हो करके। वह मुनिवरों! देखो, यन्त्र चल रहा है। गति कर रहा है और यज्ञमान का रथ भी गति कर रहा है, यज्ञमान का रथ जा रहा है, परन्तु वैज्ञानिक जब चित्रों का चित्रण

कर लेता है, मानो आध्यात्मिकवादी द्यु लोक में प्रवेश करके प्रभु के दिग्दर्शन करता है। आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विज्ञान की विचारधाराएं प्रकट कर रहा हूँ।

मैंने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि इस संसार में मानव के जीवन का जो समन्वय है, वह विज्ञान में माना गया है। और विज्ञान का आध्यात्मिकवाद से समन्वय है। क्योंकि जितना भी इन इन्द्रियों को जानना है, इन्द्रियों के विषय का जानना है, पञ्च महाभूतों का जानना है तो विज्ञान यन्त्रों के सहित जाना है। परन्तु जब जानता रहता है जानकर के उसको समेट लेता है और समेट करके आन्तरिक जगत् में उन्हें प्रवेश कराता है। यहाँ मेरे प्यारे! मृत्यु को विजय करके प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जान लेना ही मानो विज्ञान है और उसको आन्तरिक जगत् में जान करके प्रवेश कराना ही आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कराना है। यहाँ से आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ हुआ। तो विचारना क्या? मेरे पुत्रो! आज हमें यह चिन्तन और मनन करना है। हमें अपने जीवन को महान् बनाने के लिए, उज्ज्वल बनाने के लिए।

मुनिवरों! मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण आ रही है। स्मरण क्या? मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मरन्ध्र है। हमारे यहाँ देखो, उद्दालक गोत्र में एक महर्षि शंभुति ऋषि हुए हैं और शंभुति ऋषि महाराज एक समय अपनी एकान्तस्थली में विद्यमान थे। रात्रि के काल में उन्हें एक स्वप्न आया और वह स्वप्न क्या आया? कि जो पितामह नहीं थे और पितामह दूर थे वह उनके द्वारा याग कर रहे थे। स्वाहा उच्चारण कर रहे थे। परन्तु उसे जब जागरूकता हुई तो उन्होंने विचारा यह स्वप्न केसा हुआ? मेरे चित्त में संस्कार प्रायः विद्यमान थे। चित्त में जो संस्कार होते हैं, उन्हें मानव स्वप्न में दृष्टिपात करता है। परन्तु वह विचारने लगा, चिन्तन करने लगा। चिन्तन करते हुए मेरे प्यारे! वे विज्ञान के गर्भ में चले गए। चित्त के ऊपर मनन करने लगे। मनन करते हुए उन परमाणुओं को एकत्रित करने लगे। तो बेटा! देखो, ऋषि ने बहुत समय के पश्चात् यन्त्र का निर्माण किया और यन्त्रों का निर्माण करके मानो वह यान अन्तरिक्ष में गति करने लगा।

अपने यान में विद्यमान हो करके मेरे प्यारे! उन्होंने सूर्य की किरण को जाना। सूर्य की किरण का नाम था सोमभानि किरण। मानो उस किरण के ऊपर उन्होंने अनुसन्धान

किया। उस किरण को लेकर के उसका विभाजन किया और विभाजन करके उसमें तीन प्रकार की अग्नि उत्पन्न हुई। बेटा! 1. एक इन्द्र नाम की अग्नि, 2. एक स्वेत्ता स्वेतन नाम की अग्नि, 3. एक बड़बानल नाम की अग्नि। तीन प्रकार की अग्नियों का प्रादुर्भाव हुआ। अब ऋषि ने विचारा कि यह जो बडवानल नाम की अग्नि है यह तो समुद्र में प्रवेश रहती है। यह जो इन्द्र नाम की अग्नि है यह वायु में रहती है। और यह जो स्वेत्ता नामक अग्नि है यह पृथ्वी के गर्भ में रहती है। तो मुनिवरों! देखो, एक अग्नि तो खनिजों को तपा रही है और वही अग्नि विभाजन करने से प्रतीत हुआ यह जो स्वेत्ता न ाम की अग्नि है वह यन्त्रों का निर्माण करके उस अग्नि को मेरे प्यारे! समुद्रों में दृष्टिपात करने लगे। मुनिवरों! देखो, तृतीय अग्नि जो पृथ्वी में खनिजों को तपा रही थी, वही अग्नि जो वायुमण्डल में नाना प्रकार की आभा में रमण करने वाली अग्नि बेटा! वायु मण्डल में प्रवेश करके वह लोकों को चक्रों में गति करा रही है। परिणाम क्या बेटा! एक अग्नि के विभाजन करने से वैज्ञानिकों ने बेटा! भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नियों को जाना है।

यह जो बड़वानल नाम की अग्नि कहलाती है मुनिवरों! वह समुद्रों में रहती है। समुद्रों का निर्माण करती रहती है। और मुनिवरों! वह अग्नि आभा में रहती है। इस अग्नि के गर्भ में जाने वाला वैज्ञानिक मेरे प्यारे! समुद्र तत्त्व वाले जो लोक लोकान्तर हैं उनमें गति कर जाता है। जल तत्त्व वाले मण्डल भी कहलाते हैं। बेटा! जैसी सृष्टि पृथ्वी पर रहती है, इसी प्रकार सृष्टि समुद्रों में रहती है इसी प्रकार की सृष्टि बेटा! पृथ्वी के गर्भ में रहती है।

इसी प्रकार की सृष्टि वायुमण्डल में रहती है। मेरे प्यारे! नाना प्रकार के प्राणी गति करते रहते हैं। परमाणु गति करते रहते हैं। उनकी गतियों में एक समान आभा विराजमान रहती है। मानो जब हम उसका अनुभव करने लगते हैं तो विचार आता है बेटा! वैज्ञानिकां के तथ्य में रमण करने के लिए प्रवेश करते हैं।

वही अग्नि बेटा! जो समुद्रों में रमण करती है वही अग्नि माता के गर्भस्थल में प्रवेश कर जाती है और मुनिवरों! माता के गर्भ में यही बड़वानल नाम की अग्नि एक एक परमाणु

को छिन्न भिन्न करके उनका नाम पादामृति अग्नि, होता है उसका मिलान होते ही परमाणुओं का मिलान हो जाता है। परमारणुओं का मिलान हुआ बालक का निर्माण हो गया। वही अग्नि मेरे प्यारे! माता के गर्भस्थल में जब पञ्च माह का गर्भाशय होता है, उस काल में वही अग्नि बालक के शरीर में प्रवेश कर जाती है और अग्नि प्रवेश करके मेरे प्यारे! जैसे पृथ्वी के गर्भ में धातुओं का निर्माण होता है। ऐसे ही धातुओं का खनिज के द्वारा इस बालक के शरीर में निर्माण होता है।

मुनिवरों! जैसे इन्द्र नाम की अग्नि वायु में रहती है। वह वायु परम ऐश्वर्यवान बन करके माता के गर्भस्थल में बालक के शरीर में प्रवेश करती है और प्रवेश करके जितनी भी अग्नि वायु में विद्यमान रहती है। चन्द्रमा में अग्नि तत्त्व में विद्यमान रहती है। वह सर्वत्र उसमें प्रवेश करती है मेरे प्यारे! इसीलिए तो बाह्य जगत् में आ करके वही प्राणी बेटा! अनुसन्धान करने लगता है, विज्ञानवेत्ता बनता है। ाह्य जगत् में आ करके कहीं चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है, कहीं मंगल की यात्रा कर रहा है। कहीं पृथ्वी के गर्भ को जान रहा है। कहीं वायु के तत्त्वों को जान रहाह ै। मेरे प्यारे! यह कैसे जानता है? मानव के सूक्ष्म शरीर में, पिण्ड में सर्वत्र ब्रह्माण्ड विद्यमान है। परन्तु उस ब्रह्माण्ड को जानने की, तप करने की आवश्यकता है। बेटा! जब मानव तप करता है। तप करने से वह जो अंकुर हैं वह स्वाभाविक रूप से जागरूक हो करके वैज्ञानिक बनते हैं।

मुनिवरों! देखो, प्राणाम् ब्रह्मेः मनः, यह जो मन और प्राण है एक सूत्र में आ करके वही मेरे प्यारे! इन्द्रियों के द्वारा विभक्त हो करके इसीलिए उसे योग की इच्छा होती है क्योंकि योग के तत्त्व भी इसमें विद्यमान रहते हैं। तो परिणाम क्या? वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? मुनिवरों! हमें बेटा! इस मानवीय दर्पण को विचारना चाहिए। मानव दर्पण को, मानव विज्ञान को और बाह्य जगत् वाले विज्ञान को समन्वय करना नहीं जानता। वह योगेश्वर नहीं बन सकता।

विचार विनिमय क्या? मैंने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, जो अग्नि समुद्रों को उत्थान में ला सकती है वही अग्नि माता के गर्भ स्थल में उत्थान उत्पन्न कर देती है। बहुत पुरातन काल से मेरी प्यारी माता जो यह विचारती है हमारे गर्भस्थल से

महान् सन्तानों का जन्म होना चाहिए। उन्हें वेदों का अध्ययन करना चाहिए। आयुर्वेद विद्या का अध्ययन करना चाहिए। और यदि अध्ययन नहीं किया जाता तो ब्रह्मवेत्ता सन्तानों को जन्म नहीं दिया जाता। ब्रह्मवेत्ता सन्तानों को जन्म देना माता का स्वभाव कहलाया जाता है। मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि अपने अपने स्वरूप में जागरूक स्वाभाविक रूप से हो जाते हैं। जैसे चेतना के सन्निधान मात्र से मानो प्रकृति के परमाणु जागरूक हो करके सृष्टि का निर्माण हो जाता है।
इसी प्रकार कल मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने विचार प्रकट करेंगे। आज का विचार विनिमय क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, उस देव की महिमा का गुण गाते हुए, इस भव सागर से पार हो जाएं। आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पाठन होगा। स्थान : बरनावा

१९ 22 02 1980

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस, मेरे देव परमपिता की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह मेरा देव सर्वत्र इस प्रकृति के कण कण में विद्यमान है। जितना भी ज्ञान और विज्ञान हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान उस मेरे देव की महिमा अथवा उसकी प्रतिभा है। जिसके ऊपर परम्परा से ही ऋषि मुनि अनुसन्धान करते चले आ रहे हैं।
आज मैं कुछ नवीन वाक्य तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय यह देने के लिए आए हैं कि हमारा जीवन और हमारे मानवीय जीवन के ज्ञान और विज्ञान दोनों का समन्वय क्या है? मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था, हमारे यहाँ एक एक ऋषि ऐसा हुआ जिन्होंने बहुत अनुसन्धान किया, अहिंसा के सम्बन्ध में, हिंसा के सम्बन्ध में और मुनिवरों! नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाने के सम्बन्ध में। हमारे यहाँ परम्परा से ही अनुसन्धान होता रहा है। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी अपना कुछ विचार

प्रकट करेंगे। उससे पूर्व हम अपने विचारों में यह प्रकट कर जाएं कि हमारा जीवन याजिक होना चाहिए क्योंकि जीवन में याग होना चाहिए याग का अभिप्राय क्या है?

सुगन्धि कर्म

मेरे पुत्रो! बहुत पुरातन काल में हमने प्रकट किया जितना भी मानवीय दर्शन कर्म है, आत्मीय कर्म है, उस सर्वत्र कर्म का नाम याग कहा जाता है। मानव अपने हृदयरूपी गुफा में अन्तर्मुखी हो करके अपने अन्तर्हृदय से जो तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं और उन तरंगों के आधार पर अपने जीवन का निर्माण करता है अथवा अपने जीवन को बनाता है, इन सब कर्मों का नाम एक याज्ञिक कहा जाता है।
मुझे स्मरण आता रहता है, यहाँ नाना यज्ञमान हुए, याज्ञिक पुरुष हुए हैं। परन्तु इन सब श्रेष्ठ कर्मों में जो एक याग कर्म है, सुगन्धि को देना है। यह सुगन्धि हमारे जीवन में उत्पन्न होती है। यही सुगन्धि बाह्य जगत् में होनी चाहिए। वही सुगन्धि राष्ट्र में होनी चाहिए और वही सुगन्धि कर्म और वचन में होनी चाहिए। यह सुगन्धि के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गए हैं। परन्तु सुगन्धि क्या है? एक यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है और वह कैसा यज्ञमान है? वह देवताओं को प्रसन्न करना चाहता है। वह देवताओं को आहुति देना चाहता है। वह देवताओं के समीप विद्यमान हो करके देव बनाना चाहता है। वह देवताओं के समीप यजनं ब्रह्मेः कृतं लोकाः वह ब्रह्म लोक में जाना चाहता है याग के द्वारा। आज मेरे पुत्रो! हमें इतना समय नहीं है केवल विचार क्या? कि हमारा याग पवित्रतम होना चाहिए जिस याग के द्वारा यज्ञमान अपनी पत्नी से कहता है, आओ हम याग करें और देवताओं के समीप विद्यमान हो करके अपने हृदय में हमारा जो मानवीय जीवन है यह देवताओं के सम्पर्क से पवित्र बन रहा है। हम भी अपने जीवन को देवताओं के समीप ले जाते हुए हम अपने जीवन को याग में ले जाएं। स्वामित्व पत्नीत्व अपने में विद्यमान हो करके याग कर रहे हैं सुगन्धि कर रहे हैं, वाणी को पवित्र बना रहे हैं, वाणी के रथ को द्यौलोक में ले जा रहे हैं। यज्ञमान का रथ द्यौलोक में जा रहा है। कैसे जा रहा है? वेद की आख्याकिया कहती है यज्ञमान

का रथ द्युलोक को जा रहा है, द्युलोक में प्रवेश कर रहा है। जितना भी यज्ञमान का भाव आत्मीयता कर्म है, वह सब द्यौलोक को जा रहा है, अन्तरिक्ष लोकों में रमण करता है।

विज्ञान के युग में जब हम प्रवेश करते हैं, तो विज्ञान से यह वार्त्ता प्रकट होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि विज्ञान हमें कौन से मार्ग के लिए ले जा रहा है? तो मुनिवरों! यज्ञमान अथर्व होना चाहिए। यज्ञमान को अथर्व कहते हैं। यज्ञमान को याज्ञिक कहते हैं यज्ञमान को अधिपति कहते हैं। और यज्ञमान को देवताओं के समीप विद्यमान हो करके देवताओं का प्रसन्नतायुक्त सूचक कहा जाता है। मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध की विवेचना आज नहीं प्रकट करूंगा। केवल विचार क्या? हमारे जीवन की यह सब वैज्ञानिक वार्त्ताएं हैं। यज्ञो घृताम् देवः क्योंकि यह जो ब्रह्माण्ड है यह सर्व यज्ञशाला के आकार का बना हुआ है। इसका जो निर्माण है यज्ञशाला के आकार का है। सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्टि के पिता ने जब इस संसार रूपी याग का निर्माण किया तो आत्मा स्वयं यज्ञमान बना है इस संसार में, और मुनिवरों! परमात्मा ब्रह्मा बन करके और देवता उद्गान गाते हैं उपकार का। उद्गान गाने वाला उद्गीत गा रहा है, वही इस गीत को देवता जन गा रहे हैं। मैं आज तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। अब मेरे पुत्र अपने कुछ विचार प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषिमण्डल और भद्र समाज! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव याग के सम्बन्ध में अपनी कुछ विवेचना प्रकट कर रहे थे क्योंकि मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ अपनी प्रेरणाएं दीं। उन्हीं प्रेरणाओं के आधार पर मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपना कुछ संकेत दिया। परन्तु संकेत का परिणाम यह हुआ कि जितना ज्ञान और विज्ञान ऋषि मुनियों के मस्तिष्क में नृत्य कर रहा था अथवा वह जो प्रवाह परंपरा से बहता रहा है, उसी प्रवाह को मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट किया। परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ वाक्य प्रकट कराने के लिए आया हूँ अपना विचार देने के लिए आया हूँ।

इस संसार में किस किस प्रकार का वैज्ञानिक किस किस काल में हुआ! मुझे वह

काल स्मरण आता रहता है। महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार की विज्ञानशालाएं थी। उन विज्ञानशालाओं में ऐसे वैज्ञानिक थे, जिन वैज्ञानिकों की उड़ान लोक लोकान्तरों में रहती थी। जहाँ भी छाया प्रवाह होता था आधुनिक काल में उसको ग्रहण के रूप में प्रकट किया जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है, जिस त्रेता के काल में महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणि केतु और कवन्धि थे। अपने पूज्य गुरु की विज्ञानशाला में विद्यमान थे। राजा रावण का जितना वंश था, वह कुम्भकरण हो, रावण हो, मेघनाथ इत्यादि थे, सर्व महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन करते रहे। परन्तु जब भी इस प्रकार का कोई अवसर आता तो विज्ञानशाला में वैज्ञानिकों की सभाएं होतीं और सभाएं होकर के यह निर्णय किया जाता कि ग्रहण क्यों होता है, इस ग्रहण का मूल क्या है, जो इस प्रकार समाज इतना भयभीत, और त्रस्त हो जाता है। परन्तु किसी भी काल में ऐसा वैज्ञानिक नहीं हुआ जो इस प्रकार विडम्बनामयी मृत्यु से भयभीत हो गया हो। क्योंकि परम्परा में वैज्ञानिकों का यह लक्षण रहा है कि परमात्मा ने सृष्टि का निर्माण किया और जितना भी ज्ञान और विज्ञान अथवा परमाणुवाद है उस परमाणुवाद को हम यन्त्रों के रूप में दृष्टिपात करना चाहते हैं। उन्होंने अग्नि के ऊपर, पृथ्वी के ऊपर तथा जल इन तीनों के परमाणुओं के ऊपर विशलेषण करना प्रारम्भ किया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ऐसी आश्चर्यमयी चर्चा प्रकट कर रहे थे और वह यह प्रकट कर रहे थे कि अग्नि की एक धारा का वैज्ञानिक विभाजन कर रहा है और वही धारा समुद्र में अग्निकांड बन जाते हैं और वही अग्नि द्वितीय परमाणु बन कर के माता के गर्भ स्थल में बालक का निर्माण कर रहा है। वही अग्नि विज्ञानयुक्त आभा में रमण करने वाली है।

विचार आता है कि पूज्यपाद गुरुदेव ने कितने विज्ञान का अध्ययन किया? परन्तु आज वेद के अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वैज्ञानिकों के युग में प्रवेश करके वैज्ञानिकों के मध्य में विद्यमान हो करके और वैज्ञानिकों की धाराओं में रमण करना है। एक समय त्रेता के काल में पृथ्वी और सूर्य दोनों के मध्य में चन्द्रमा आ गया और चन्द्रमा आ कर के दिवस की रात्रि बन गई। रात्रि बन गई तो वैज्ञानिकों ने यह विचारा

यह रात्रि क्यों बन गई है? जिस जिस भाग की चन्द्रमा ने सूर्य की किरणों को अपने में धारण कर लिया था, वही रात्रि बन गई। इसी प्रकार आज भी वैज्ञानिकों का यही मन्तव्य था। वैज्ञानिकों को यह त्रस्तता कहाँ से प्राप्त हो गई है? क्योंकि पूर्व के वैज्ञानिक संसार को त्रास नहीं देते थे। मुझे स्मरण है, जब वह समय आया तो राजा महाराज उनके समीप पहुंचे, महाराजा कौशल्य ऋषियों के द्वार पर पहुंचे और कहा कि महाराज! जो छाया आ रही है, राहु, केतु दोनों मण्डलों की धारा आ रही है इसका राष्ट्र पर क्या परिणाम होगा? मेरे पुत्रो! ऋषि कहता है हे पुत्र राजन्! तू कितना अप्रह (भोला) है? तू पुत्रवत् की चर्चा प्रकट कर रहा है। ऐसा कोई भी भय और त्रास की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह वैज्ञानिक आभा में रमण करने वाले थे। वह वैज्ञानिक वायु को आहार करने वाले थे वह वैज्ञानिक अहिंसा परमोधर्मः के ऊपर चिन्तन करने वाले थे।

वैज्ञानिकों द्वारा त्रास

आधुनिक काल का विज्ञान भी मुझे कुछ स्मरण आता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो किसी काल में यह वाक्य प्रकट नहीं करते परन्तु मैं कहने वाला हूँ। आधुनिक काल का जो वैज्ञानिक है, उस में इतनी त्रासता कहाँ से आ गई? आधुनिक वैज्ञानिक कहता है कि हो सकता है यह समाज नेत्रों से हीन हो जाएगा यह समाज मृत्यु को प्राप्त हो जाए। ऐसा हमारा अनुमान है, ऐसा हमारा विज्ञान कहता है। यह विश्वास नहीं प्रकट कर रहे हैं। इन वाक्यों को यन्त्रों में क्या, दिग्दर्शनों में क्या सर्वत्र समाज को ऐसा निष्क्रिय बना दिया, क्या वह अपने कार्यों में असफल होने लगे? आधुनिक काल के वैज्ञानिकों की मैं चर्चा कर रहा हूँ। यह विज्ञानमयी निराशा कहाँ से उत्पन्न हुई है? विज्ञानमयी इतनी विडम्बना कहाँ से उत्पन्न हुई है? वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में प्राकृतिक समूह से इतनी त्रासता क्योंकि उत्पन्न हुई है? इसके मूल को स्वीकार कर लो। आज का वैज्ञानिक, आज का चिकित्सक जो मानव की चिकित्सा कर रहा है, आज का समाज जो परमाणुवाद को वैज्ञानिकों के द्वारा जो अपनी अनुसन्धानशाला में अनुसन्धान करने जा रहा है, इनमें मूल कारण क्या है? यह मृत्यु से इतनी दूर क्यों जाते हैं?

क्योंकि इन में आहार का दोष आ गया है और दूसरे प्राणियों का भक्षण करने के लिए यह अपने को यह जानता है कि मैं वास्तव में अपने शरीर को पौष्टिक बना रहा हूँ। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ पूज्यपाद गुरुदेव ने और मुझे बहुत समय दृष्टिपात हुआ ऐसा जो समाज है, ऐसा जो चिकित्सक है, ऐसा जो वैज्ञानिक है जो दूसरे प्राणियों के रक्त को पान करने वाला, दूसरे के रक्त को अपना भोजन बना रहा है, ऐसा जो प्राणी है, ऐसा जो विज्ञान है, उसकी मृत्यु तो आई रहती है। वह मृत्यु से भयभीत होना ही नहीं मृत्यु तो उनकी जभी आ जाती है क्योंकि मृत्यु के आँगन में आने वाला प्राणी श्वास की वार्त्ता प्रकट नहीं कर सकता। क्योंकि आज का जो समाज है, उसमें नास्तिकवाद का एक मूल कारण यह भी है कि यहाँ जो चिकित्सक हैं, उन्होंने इस समाज को आहार और व्यवहार में इतना निष्क्रिय बना दिया है, ब्रह्मचर्य हीनता के दोषों से मानव भ्रष्ट हो रहा है। विद्यालयों में जब ब्रह्मचारियों के छात्रों के द्वार पर जाते हैं तो दूसरों के रक्त पान करने का उनका मौलिक स्वाभाविक गुण बनता चला जा रहा है। उसका परिणाम, उसका दोषी कौन है? उसके दोषी समाज के चिकित्सक और वैज्ञानिक माने जाते हैं। परन्तु राष्ट्र भी इतना दूषित नहीं है। मुझे स्मरण आता रहता है, आधुनिक काल का वैज्ञानिक किस प्रकार समाज को त्रास देता रहता है और वह जो त्रासता है, वही समाज को निष्क्रिय बनाती जा रही है। आज जब मानव से यह कहा जाता है, हे मानव! तू अपने मानवीय दर्शन को जानने का प्रयास कर। मानव दर्शन को नहीं जानता अग्नि की तरंगों को जानता है। अग्नि की तरंगों का अपने जीवन से जो समन्वय होता है, उसको नहीं जानता। जब अग्नि की तरंगों का अपने मानवीय जीवन से समन्वय होता है उससे आधुनिक काल का वैज्ञानिक दूर जा रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे पूर्व शब्दों में वर्णन करते हुए कहा है, इन्होंने पूर्वकाल में वर्णन करते हुए कहा कि मानव का जीवन का विज्ञान से कितना समन्वय रहता है?

परन्तु जब मैं यह विचारता हूँ कि आधुनिक काल के वैज्ञानिक का मंगल में यान जा रहा है। मंगल में यन्त्र जा रहा है, चन्द्रमा में जा रहा है। आज यन्त्रों पर यन्त्र जा रहे हैं। जब राष्ट्र के और समाज के गर्भ में प्रवेश करते हैं और समाज के उनसे यह कहा

जाता है कि तुम्हारा जीवन कितना पवित्र है। तुम्हारा जीवन कितना सुरक्षित है। मानव, मानव से त्रासता को प्राप्त हो रहा है। मानव, मानव से मिलान करने के लिए तत्पर नहीं है। जहाँ मानव, मानव से मिलान करने में प्रसन्नता होती थी, उल्लास होता है, वहाँ मानव, मानव से भयभीत होता हुआ अपने जीवन को मानवता में प्रकट नहीं कर रहा है। परन्तु जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि इस मानव समाज में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है, तो पूज्यपाद गुरुदेव कहते हैं यह कटु शब्द है।

परमाणुवाद का ज्ञाता

परन्तु देखो,! वैज्ञानिक कैसे होते हैं? वैज्ञानिक उन्होंने कहा जाता है जो आत्मीयता और परमाणुवाद को जानने वाले होते हैं। परमाणुवाद को कौन जानता है? वैज्ञानिक जानता है। परमाणुवाद को कौन जानता है? वैज्ञानिक जानता है। परमाणुवाद को कौन जानता है? आध्यात्मिकवेत्ता जानता है। परमाणुवाद को कौन जानता है? वह जानता है जो मानवीय दर्शन को नहीं जानता। जब मैं विद्यालयों में प्रवेश करता हूँ, विद्यालयों में यह कहा करता हूँ, तुम्हारे शरीर में कितनी इन्द्रियां हैं? इन्द्रियों का भी वर्णन नहीं कर सकते। जब मैं यह कहा करता हूँ तुम्हारे शरीर में कितने प्राण हैं? प्राणों का वर्णन भी नहीं कर सकते। जब मैं यह कहा करता हूँ कि बुद्धि का माध्यम कहाँ है? तो बुद्धि के और मनस्तत्व के माध्यम का निर्णय नहीं कर पाते। क्या मैं इनको विद्यार्थी कहूँ? क्या उच्चारण कर सकता हूँ? वह आचार्यों के समीप पहुंचते हैं, आचार्य भी इसको नहीं जानते। यह दोषारोपण किसका है? आचार्यों का है या यह दोषारोपण ब्रह्मचारियों का है? विद्यार्थियों का है? छात्रों का है? यह दोषा रोपण सब वैज्ञानिकों के द्वार से आ रहा है। क्योंकि वैज्ञानिक जन मूल को नहीं जानते। मूल को न जानकर के केवल वृक्ष की शाखा को जानता है आज का वैज्ञानिक पत्तों को जानता है। आज का वैज्ञानिक यह नहीं जानता कि मानव का मूल क्या है? समाज का मूल क्या है? समाज के मूल को नहीं जानोगे। राष्ट्र के मूल को नहीं जाना जाएगा तो यह समाज कुछ काल में अग्नि

का काण्ड बनकर के रह जाएगा।

अज्ञानता में रूढ़ि

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातनकाल में कहा था। आधुनिक काल में यह ऐसा क्यों हुआ? इसका परिणाम क्या है? इसके मूल में क्या है? आज इसके मूल में रूढ़ि है। एक राष्ट्र का नायक सभा मंच पर विद्यमान हो करके यह कहता है, यह उच्चारण कर रहा है, नाना धर्मों की चर्चा कर रहा है। नाना धर्म कहता है। उससे यह प्राप्त किया जाए कि नाना धर्म तुम क्यों कह रहे हो? अरे, धर्म तो एक ही रहता है। धर्म जब एक है तो नाना धर्म कहाँ से आ गए। उन नाना धर्मों की रूढ़ि नहीं कहा जाता। रूढ़ि कहता है अपने को यह स्वीकार करता है। यह राष्ट्र जो जिस पर तू विद्यमान है, यह इसके पथ से तेरा विच्छेद न हो जाए। इसलिए उच्चारण करने में मानव बहुत भयभीत हो रहा है।

उच्चारण करने में अपने को वह स्वीकार कर रहा है कि वह नहीं रहेगा। परन्तु धर्म तो एक है। जब धर्मों की चर्चाएं आती हैं। अरे, मानव का धर्म क्या है? वह नेत्रों से दृष्टिपात करता है। दृष्टिपात करना उसका धर्म है। सुदृष्टिपात करना उसका धर्म है। कुदृष्टिपात करना उसका विनाश है। अप्रताम् देवः इसी प्रकार वेद का आचार्य कहता है, ऋषि कह रहा है, सम्भूति कह रहा है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया। अरे, घ्राण का धर्म है सुगन्ध को लेना। घ्राण का धर्म है विज्ञान की आभा में रमण करना और श्रोता का धर्म है शब्द को लेना यह इसका धर्म है अरे, धर्म कहाँ रहता है? धर्म मानव की प्रत्येक इन्द्रिय में समाहित रहता है। अरे, धर्म किसी की पोथी में नहीं होता। धर्म किसी की क्रियाओं में नहीं होता। आज देखो, जब राष्ट्र का नायक यह कहता है मैं नाना धर्मों की चर्चा नहीं करता। अरे, नाना धर्म तो हो ही नहीं सकतं। अरे, यह केसा मूर्खों का समाज बन गया है? जो धर्म को नाना धर्म कह रहा है। वह धर्म को जानता नहीं है। यदि वह जानता हुआ होता तो नाना धर्म नहीं उच्चारण कर सकता। इन नाना धर्मों की रूढ़ियों का परिणाम यह हुआ कि यह समाज भ्रष्ट होता चला जा रहा है। वैज्ञानिक

अपनी यथार्थता को उच्चारण नहीं करता। क्योंकि उसे राष्ट्र का त्रास रहता है। वह यह चाहता है कि उसे त्रस्त न किया जाए। क्योंकि वैज्ञानिक भी यथार्थ उच्चारण करने से शान्त हो जाता है, और बुद्धिमान भी इसीलिए कहता है कि अब उच्चारण करने का समय नहीं, कटुता का समय है। यथार्थ शब्दों का आज का समाज कटु उच्चारण करने लगा है। रहा यह वाक्य, जहाँ वह कटुता में परणित है वहाँ उसे एक दूसरे प्राणी का, एक दूसरी रूढ़ि का भय लगा हुआ है। अरे, यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रकट कराता रहता हूँ, हे गुरुदेव! यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा? जब इस प्रकार की त्रासता से आभायित तत्त्व समाज में विद्यमान हैं, वैज्ञानिकों में हैं, राष्ट्र में हैं, विद्यालयों में हैं। विद्यालयों का आचार्य भी यथार्थवाद उच्चारण नहीं कर सकता। तो यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा।

एक वैज्ञानिक यह विचार रहा है कि वाणी यह कृत कहलाती है। एक वैज्ञानिक यह जानता है कि मैं चन्द्रमा में पहुंच गया हूँ। परन्तु देखो, कुछ रूढ़ियां ऐसी हैं वे यह कहती हैं कि चन्द्रमा में जा ही नहीं सकते। क्यों नहीं जा सकते चन्द्रमा में? चन्द्रमा में जाना ऐसा कौन सा आश्चर्य है? क्यों इस प्रकार की वार्त्ता राष्ट्र में प्रकट की जाती है! ये रूढ़ियां हैं और ये राष्ट्र तथा समाज को विनाश करने वाली है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। विचार यह देने के लिए आया हूँ, यह वाक्य गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार कुछ प्रकट करने आया हूँ और वह प्रकट करना क्या है? मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि वैज्ञानिकों में दोष है। वैज्ञानिकों में दोषारोपण हो गया है? और वह दोषारोपण क्यों है। यह अन्न का दोष है। आहार व्यवहार दोनों दूषित हो गए हैं। यह अन्न का दोष है। आहार व्यवहार दोनों दूषित हो गए हैं। इसलिए वैज्ञानिक यथार्थ उच्चारण करता हुआ त्रास स्वीकार करता है और इसी प्रकार राष्ट्र में नाना रूढ़ियां उच्चारण कर रहे हैं। नाना धर्म उच्चारण कर रहे हैं। क्योंकि वह पद से विच्छेद न हो जाएं। पदों की लोलुपता से धर्म का, मानवता का, यथार्थता का, सत्यता का ह्रास किया जाता है। ऐसा कोई राष्ट्र नहीं होता और ऐसा कोई समाज नहीं होता। मुझे एक वार्त्ता स्मरण आ गई है। बहुत पुरातन की वार्त्ता स्मरण है। राजा रावण के

यहाँ इतना विज्ञान आ गया और वैज्ञानिकों में दूषितपना आ गया। वैज्ञानिक स्वर्ण में सुगन्धि लाने में लगे हुए थे। कुम्भकर्ण जैसा वैज्ञानिक और भी नाना वैज्ञानिक इस आभा में परिणित हो रहे थे वे निद्रा को भी नहीं लेते थे और वे एकान्तस्थली में हिमालय की कन्दराओं में विद्यमान हो करके परमाणुवाद के ऊपर अनुसन्धान करते थे। परमाणुवाद चलता रहता था। एक समय कुछ वैज्ञानिक राजा रावण के समीप पहुंचे और राजा रावण के समीप जाकर के उन्होंने यह कहा हे रावण! उनमें से कुम्भकर्ण कहता है जो उनका विधाता था कि तुम यह जानते हो कि मैं वैज्ञानिक हूँ। भारद्वाज मुनि महाराज के चरणों में विद्यमान हो करके मैंने विद्या का अध्ययन किया है। परन्तु आज जो मुझे अनुभूति प्राप्त हो रही है वह ऐसी है कि तुम्हारे राष्ट्र के जो वैज्ञानिक हैं इनमें कुछ अन्न का दोष आ गया है। तुम्हारे राष्ट्र के जो वैज्ञानिक हैं इनके आहार में सूक्ष्मता आ गई है। इसको ऊँचा बनाया जाए। परन्तु इस काल का वैज्ञानिक भी यदि इस वाक्य को उच्चारण करता है तो राष्ट्र कहता है कि उसको पद से दूर कर दो। यह राष्ट्र के अहित की वार्त्ता प्रकट कर रहा है। वह पद से दूर कर दिया जाता है। राजा रावण के यहाँ विधाता कुम्भकरण यह कह रहा है परन्तु कुम्भकरण जी की वार्त्ता को शिरोधार्य करके उन्होंने इस वाक्य को स्वीकार किया। तो वैज्ञानिक वह होता है, जो यथार्थ और परमाणुवाद की वार्त्ता प्रकट करता है।

उसके पश्चात् मुझे स्मरण है, एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और महर्षि समीर मुनि महाराज एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ पहुंचे, तो उनके राष्ट्र कोष में जो द्रव्य आता था, वह कुछ तमोगुणी अन्न आ गया। जब तमोगुणी अन्न आ गया तो उसे भोजनालय में तपाया गया। तपाए जाने के पश्चात् उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उस स्थली पर पहुंचे। राजा ने नमस्कार करके कहा कि भगवन्! आप भोजन कीजिए आप कुछ पान कीजिए आप अतिथि हैं। उन्होंने तथा समीर इत्यादि ऋषियों ने कहा हे राजन! हम तुम्हारा अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। राजा ने कहा कि महाराज! ऐसा क्यों? तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा जो अन्न है, वह राष्ट्रकोष का है, और वह तमोगुणी अन्न होता है और अन्न का दोष जो होता है, राजा के राष्ट्र में वह सर्वत्र बुद्धि को विनाशता की तरफ ले

जाता है। वही अन्न वैज्ञानिकों को दिया जा रहा था। वैज्ञानिक भी उस अन्न को पा करके यथार्थता को उच्चारण न करके मौन रहते थे। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव की वार्त्ता राजा ने अनसुनी प्रकट की। उन्होंने कहा, हे राजन! हम तुम्हारा अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। राजा ने नतमस्तक होकर के कहा महाराज! मेरा जो अन्न है, वह वास्तव में तमोगुणी अन्न है, दूषित है। हो सकता है वह तुम्हारी प्रवृत्तियों को दूषित न कर दे। मैं अभागा बन जाऊँ मैं अभागा बन करके सम्भूति ब्रह्मणाःवते उस अन्न को उन्होंने पान नहीं किया। राजा अपने गृह में ले गए। अपनी पत्नी से बोले, हे देवी! तुम ऋषि को भोजन कराओ। जो कृषि का अन्न होता था, वह पान कराया और पान कराने का परिणाम यह हुआ कि बुद्धि स्वच्छ रही। तो इसी प्रकार पुरातन का जो महापुरुष होता है ऐसा वैज्ञानिक और ब्रह्मवेत्ता बनता है।

आधुनिक काल का वैज्ञानिक आधुनिक काल का जो साधु है, महात्मा है, वह ऋषि बन रहा है और यदि उसे राष्ट्र का अन्न प्राप्त हो जाए तो गौरव स्वीकार करता है। आधुनिक काल ऐसा बन गया है, वह राष्ट्र के गौरव को स्वीकार कर रहा है। वह यथार्थता में अपनी तपस्या को नष्ट कर रहा है। परन्तु अब यह समाज नष्ट होने जा रहा है। किसी भी क्षेत्र में जब मैं प्रवेश करता हहूँ, उसी क्षेत्र में मुझे अग्नि प्रदीप्त होती दृष्टिपात आ रही है। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! इस समाज की आभा मुझे स्मरण नहीं आ रही है। यह समाज कहाँ जाएगा? परन्तु आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ आधुनिक काल में इतना त्रास वैज्ञानिकों ने प्रकट किया कि तुम गृह में प्रवेश हो जाओ अगर तुम दृष्टिपात करोगे, तो नेत्रों से हीन हो जाओगे, हीन बन जाओगे तुम्हारी मृत्यु आ जाएगी। यह मृत्यु का प्रश्न क्यों आ गया है वैज्ञानिकों को? अरे, वैज्ञानिक तो मृत्यु से पार होने की चर्चा कर रहा है। वह परमाणुवाद को इसलिए जान रहा है कि मेरी मृत्यु न हो और तुझे ज्ञान हो जाए कि यह शरीर क्या है। परमाणुवाद क्या है? कौन से परमाणु कौन से तत्त्व को ले करके किस इन्द्रिय का निर्माण होता है? यह तो मुझे प्रतीति होनी चाहिए। तुम्हें यह प्रतीति हो गई है कि तुम गृह से अगृहि बन जाओगे, तुम्हारी मृत्यु आ जाएगी। अरे, तुम्हें कहाँ से इतनी निष्क्रियता आ गई है? तुम्हारा मनोबल इतना

निकृष्ट हो गया है। अरे, जहाँ वैज्ञानिकों में मनोबल होना चाहिए राष्ट्र को भी कहते हैं राष्ट्र ऊँचा बनाना चाहिए लोकों की यात्रा कर रहा है, वहाँ वैज्ञानिक मृत्यु का भय देता है समाज को, यह कैसा आश्चर्य है? यह कैसा दुर्भाग्य है? अरे, वैज्ञानिकों को विज्ञान की चर्चा से मृत्यु को विजय करना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से उच्चारण कर रहे हैं कि विज्ञान से मृत्यु को पार होना है। विज्ञान का सम्बन्ध आध्यात्मिकवाद में कैसे प्रवेश करता है विज्ञान को जान करके मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से उच्चारण कर रहे हैं। वहीं से मैंने प्रेरणा ले करके इन वाक्यों को प्रकट कराया। आज भी मैं अपने विचारों को इसलिए प्रकट कर रहा हूँ। परमाणुवाद को अग्नि की धाराओं को जानने वाला वैज्ञानिक, नाना लोकों में रमण करने वाला वैज्ञानिक आज मृत्यु से मानव समाज को त्रास दे रहा है। यह कैसा दुर्भाग्य है इस समाज का? यह अन्न का दोष है उनका कोई दोष नहीं है।

अरे, जहाँ आधुनिक जगत् में मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट कराया है जब यहाँ प्राणियों का भक्षण किया जाता है और जिस प्राणी को भक्षण किया, वही उस मानव के रक्त का पिपासु बन रहा है। मैंने बहुत पुरातन में अपने वैज्ञानिक को जो इस पथ पर जाने वाले हैं कहा कि हम जिसकी चिकित्सा करते हैं, वही बलवती होती जा रही है। जिस रोगी को चिकित्सा करते हैं वही रोगी ओझल होता जा रहा है। हम प्राणों की रक्षा प्राणियों से करते हैं, वही प्राणी बलवती होते जा रहे हैं। जैसे पुरातन काल में त्रिकाठ जो प्राणी है, आधुनिक काल में उसे मच्छर कहते हैं। परन्तु पुरातनकाल में जिसको मुक्ताअृणी कहते थे आधुनिक काल में उसे महामारी के नाम से परणित किया जाता है। ये क्यों बलवान होते जा रहे हैं? इसलिए कि इनके जो पुरातन जन्म में प्राणी ने प्राणी को भक्षण कर लिया था, वही इन्हें त्रास दे कर अग्निकाण्ड की आभा में प्रकट करा रहा है वही प्राणी द्वितीय रूपों में आ करके। क्योंकि आधुनिक काल के वैज्ञानिक इस तथ्य पर जाने वाले हैं। प्राणियों का आदान प्रदान हो रहा है। जो प्राणी को आहार कर रहा है, वही प्राणी उसका दुःखद बन रहा है। वही दूसरे रूप में उसके दुःख का कारण बन रहा है। उसे रोगी बना रहा है। जो प्राणी रुग्ण हो रहा है और रुग्ण होता

हुआ प्राणी का भक्षण करता है वह और अधिक रुग्ण हो रहा है वह विनाशत को प्राप्त हो रहा है। परिणाम क्या? एक प्राणी को त्रास देने में नष्ट करने में लगा हुआ है। उसका कारण है कि मानव का आहार दूषित हो गया है। मानव का व्यवहार दूषित हो गया है।

आहार की पवित्रता का प्रभाव

आज सन्तानों में जाओ। माता पिता यह चाहते हैं कि सन्तान पवित्र बनें परन्तु पवित्र बन नहीं पा रही हैं क्योंकि व्यवहार पवित्र नहीं है। माता माता नहीं रही पिता पिता नहीं रहा है क्यों नहीं रहा है? इसलिए कि उनका आहार और व्यवहार दोनों दूषित हो चुके हैं और वैज्ञानिकां का व्यवहार भी दूषित हो गया है। मैं इसलिए उच्चारण करने जा रहा हूँ मैं कोई व्यापकता से विनाशता के क्षेत्र में दृष्टिपात नहीं कर रहा हूँ। प्रत्येक मानव धर्म के मर्म को जान रहा है। प्रत्येक मानव धर्म में जा रहा है। कोई मानव देखो, मोहम्मद के मानने वाला, कोई ईसा को मानने वाला, कोई बुद्ध को मानने वाला और नाना प्रकार की रूढ़ियां बनी हुई हैं। परन्तु जो नाना प्रकार की रूढ़ियां हैं, अहा! उनमें धर्म ही धर्म प्रतीत होता है। परन्तु जब उनके गर्भ में पहुचोगे तो कण्ठ तक उच्चारण करने मात्र रह गया है। कण्ठ तक उच्चारण कर रहा है। हृदय से उसको स्वीकार नहीं कर रहा है। हृदय से राष्ट्र के द्रव्य को स्वीकार कर रहा है। मोहम्मद के जानने वाला कहता है, हमें राष्ट्र पर छा जाना चाहिए और ईसा वाले चाहते हैं हम राष्ट्र पर छा जाएं और भी नाना रूढ़ियां कहती हैं, हम राष्ट्र पर छा जाएं। यह पद की लोलुपता है। अरे, धर्म कहाँ रहा? धर्म केवल कण्ठ तक रह गया, केवल पदों तक रहा गया है। यह मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट कराने के लिए आया हूँ। क्या यह धर्म है? चाहे इन्हें नाना धर्म उच्चारण करने पड़े। यह नहीं जानते कि धर्म नमः ब्रह्माः। वेद कहता है कि धर्म केवल एक है और धर्म के मर्म को जानना मानव का कर्त्तव्य है। यह आज का विचार मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट करा रहा हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल में यह कहा था कि धीमी धीमी अग्नि प्रदीप्त

होने जा रही है। आज वह धीमी धीमी अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है। कुछ काल में यह अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी, जो धीमी धीमी अग्नि प्रवाह से गति कर रही थी, वह कुछ काल में प्रदीप्त होने वाली है। वह ऐसी प्रदीप्त होगी कि मानव मानव का पिपासु नहीं, मानवप मानव को यह जानेगा कि तेरा और मानव द्वितीय कहाँ से आएगा ऐसी अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी। परिणाम क्या? कण्ठ तक धर्म रह गया और हृदय में जो हृदय रूपी गुफा हैं वह शान्त हो गईं, और वह दूषित हो गई है दोषो में। इसलिए मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से क्षमा चाहूँगा जो मैंने कटु वाक्य उच्चारण किए हैं। वह क्षमा कर ही देंगे। तो मुनिवरों! आज मैं यह वाक्य प्रकट कर रहा था कि जिस भी क्षेत्र में तुम जाओगे वही क्षेत्र अग्निमय दृष्टिपात आ रहा है। इसलिए मैं यह कहता रहता हूँ कि अग्नि ही अग्नि दृष्टिपात है। द्रव्य राष्ट्र की लोलुपता में आ गया है। धर्म इस समाज में केवल कण्ठ तक रह गया है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से क्षमा चाहूँगा आज्ञा पाऊँगा। कल मुझे समय देंगे तो मैं और वार्त्ता प्रकट करूंगा परन्तु आज मैं अपने वाक्य समाप्त करने जा रहा हूँ पूज्यपाद गुरुदेव!

धर्म से राष्ट्र

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी के कुछ शब्दों में एक विडम्बना दृष्टिपात आ रही है और वह विडम्बना क्या? कुछ राष्ट्रीय, कुछ धर्म, क्योंकि धर्म और राष्ट्र दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। राष्ट्र होता है तो समाज होता है। इसलिए राष्ट्र पवित्र होना चाहिए और राष्ट्र में महत्ता होनी चाहिए। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने विचार और भी प्रकट कर सकेंगे। परन्तु आज का केवल विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए विज्ञान के युग में प्रवेश करते हुए, वैज्ञानिक तत्त्वों को जानते हुए अपने में अपने को महान् बनाते हुए और हम अपने को स्वताम् देवाः पोषम् ब्रह्मणाः चिकित्सम् ब्रह्मे। हमारे यहाँ चिकित्सक महान् होने चाहिए क्योंकि प्रत्येक चिकित्सक अपने ही रोग में अनुसन्धान करना चाहता है। प्रायः ऐसा होता है कहीं कहीं क्या दूसरे प्राणी के रक्त को भी औषध में लिया जाता है। परन्तु वह एक अपवाद में लिया जाता

है, वह कोई ऐसा वाक्य नहीं। रहा यह वाक्य कि राष्ट्र का छात्र का कोई समन्वय विशेष नहीं होता। परन्तु राष्ट्र और समाज दोनों एक महत्ता में प्रकट करते रहते हैं। इनका जीवन, मानवीय दर्शन है, क्योंकि विद्यालयों में उनका निर्माण होता है और यदि विद्यालयों में इनका निर्माण नहीं हो पाता तो इनका कहीं भी निर्माण नहीं होता। इस लिए उनका निर्माण आचार्य और छात्र दोनों की आभा से होता है।

परन्तु यह समाज ऊँचा बनाना, समाज में महत्ता को लाना यह मानव का एक कर्त्तव्य कहलाया जाता है। रहा यह विज्ञान, तो वैज्ञानिकों को आध्यात्मिकवाद को लेकर के विज्ञान में प्रवेश करना चाहिए। यदि आध्यात्मिकवाद वैज्ञानिकों के समीप नहीं है, तो वह विज्ञान में सफलता को प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वह विज्ञान अधूरेपनप में समय को केवल नष्ट्र करने में लगा सकते हैं। परन्तु वे राष्ट्र और समाज को ऊँचा नहीं बना सकते। क्योंकि विज्ञान भी राष्ट्र और समाज को प्रत्यक्षवाद में जिसको हम नहीं जानते परन्तु वैज्ञानिक उनको परमाणुवाद में ला करके हमारे समीप लाता है। जैसे वाणी का विषय है, चित्तों का विषय यह सब विषय विज्ञान के युग में आते रहते हैं। परन्तु विज्ञान के युग में प्रवेश करना, उसको अग्रणीय बनाना यह हमारा बहुत ही ऊँचा कर्त्तव्य कहलाया जाता है। परन्तु जैसे अभी अभी महानन्द जी ने प्रकट किया वैज्ञानिकों में अन्न का दोष आ गया है। यह अन्न का दोष आना नहीं चाहिए। इसलिए नहीं कि वैज्ञानिकों की बुद्धि प्रखर होनी चाहिए। केवल विज्ञान तरंगवाद को ही नहीं जानता, परमाणुवाद को ही नहीं जानता, परन्तु इस अणु के समीप विद्यमान होकर के हम अपनी आत्मीयता को जानते हैं। वह विज्ञान हमारी सफलता को प्राप्त होता है। वह विज्ञान हमारे जीवन का एक मूलक रहता है। एक दूसरे का पूरक बनकर के आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद यह जो हमारे एक मन्त्र की आख्याकिया आती है चित्रम देवः रथा मनो चित्रम् शब्द आते हैं। और नाना प्रकार के मन्त्र हैं। चित्र कहते हैं, जो मुनिवरों! अपनी वाणी से चित्रण किया जाता है जो अपनी इन्द्रियों से चित्रण किया जाता है, उसे चित्र कहते हैं। परन्तु रहा यह वाक्य, विज्ञान के युग में आभा में रमण

करने वाले नाना परमाणु गति करते रहते है। और चित्रों का दर्शन करते रहते हैं। चित्रों का दर्शन करना, यन्त्रों के द्वारा, उसमें भी आध्यात्मिकवाद होना चाहिए। जब राजा के राष्ट्र में वैज्ञानिक यह विचारते हैं कि चित्रों का ऊँचा दर्शन होना चाहिए। उसमें ऋषि मुनिवरों! के चित्र आने चाहिए। ऋषि मुनियों की दूरदर्शिता, आभा आनी चाहिए। तो वह विज्ञान समाज के लिए हितकार होता है और अन्न के दोषों का वर्णन करना चाहिए। विज्ञान इसलिए होता है कि अन्न का दोष नहीं होना चाहिए। स्वच्छ प्रकार का अन्न होना चाहिए। इससे समाज में बुद्धिमान हो करके हम भौतिकवाद, परमाणुवाद, अणुवाद से ऊर्ध्व में जाते हुए, हम मुनिवरों! उस महत्ता में चले जाएं, जहाँ विज्ञान और मानवीय दर्शन का हम चित्रण करने लगे और आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करके विज्ञान के बल से हम समाज को एक ऊँचा मार्ग दे सकें। रहा यह वाक्य कि वैज्ञानिकों को मृत्यु का भय नहीं रहता, मृत्यु रहती नहीं उनके समीप। जो मानव जान लेता है कि तुम्हारी इन्द्रियों का निर्माण कैसे हुआ है? तुम्हारे शरीर का निर्माण कैसे हुआ है? कौन प्रेरित कर रहा है? माता के गर्भ में कैसे निर्माण हुआ और कैसे उनका क्षय हो जाना है? तो जो यह जानता है, वह वैज्ञानिक है। उस वैज्ञानिक को मृत्यु का भय नहीं होता, मृत्यु का त्रास नहीं होता। अगर मृत्यु का त्रास नहीं होगा तो वह समाज को भी त्रास नहीं देना चाहेगा। कल महानन्द जी यह उच्चारण करेंगे जो ग्रहण की इनेंने चर्चाएं की हैं इस ग्रहण में क्या क्या दूषितपन आता है इस सम्बन्ध में कुछ चर्चाएं करेंगे। कल हम भी उसके सम्बन्ध में वेद के तथ्य वर्णन करेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान : लाक्षागृह बरनाबा समय : दोपहर 3.30 बजे।

२० 23 02 1980 पुष्प 36 वैज्ञानिक और उसका आहार व्यवहार

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है, क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत् मेरे

प्यारे! प्रभु की एक आभा है। हमारे ब हुत पुरातन काल प्यारे प्रभु की एक आभा है। हमने बहुत पुरातनकाल में अपना वाक्य प्रकट करते हुए कहा था कि एक एक वेदमन्त्र को विभक्त करने से प्रायः ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे हम परमपिता परमात्मा की आभा में विद्यमान हैं क्योंकि मानव की प्रत्येक इन्द्रियों में ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। जितना भी ज्ञान और विज्ञान हमें दृष्टिपात आ रहा है वह सर्वत्र मानव की इन्द्रियों में निहित रहता है, क्योंकि मानव परम्परा से ही उड़ान उड़ता चला आया है।

हमारे यहाँ नाना प्रकार के जो कर्म होते हैं, उन नाना प्रकार के कर्मों में एक कर्म ऐसा महान् पवित्र माना जाता है जिसको हमारे यहाँ यज्ञोमय कहते हैं क्योंकि प्रत्येक मानव याज्ञिक बनना चाहता है। संसार का कोई भी मानव ऐसा नहीं है जो अपने को याज्ञिक नहीं बनाना चाहता है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड में मानव की एक ही कामना रहती है कि मैं मृत्यु को प्राप्त न हो जाऊँ। मानव संसार में परम्परा से यह कल्पना करता रहा है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए।

इससे पूर्व शब्दों में हमारे यहाँ महामंगलम् वृतेः देवः पुत्र ने कहा था कि यह संसार में विज्ञानमय धारा नहीं होनी चाहिए। वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य इन्होंने वर्णन किया। विज्ञान की आभाओं में रमण करना यह कोई महान् कार्य नहीं है। अपनी इन्द्रियों को जानना और उनके ऊपर शासन करना एक महान् कार्य कहलाता है। बहुत पुरातनकाल की वार्त्ता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपनी यज्ञशाला में विद्यमान थे। ब्रह्मचारी कवन्धि उनके समीप आ पहुंचे और ब्रह्मचारी कवन्धि ने यह कहा कि महाराज! संसार का महान् कार्य क्या है? तो पूज्यपाद आचार्य ने यह कहा, हे ब्रह्मचारी! संसार की जितनी भी वस्तुएं हैं, जितना भी यह ब्रह्माण्ड और जितना भी यह जगत् पंजीकरण हो रहा है इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल के एक चेतना है और वह चेतना मानव के शरीर में विद्यमान है। वह चेतना सूर्यमण्डल में आभायित करके प्रकाश दे रही है, हमें उस चेतना को जानना बहुत अनिवार्य है।

प्रत्येक मानव याज्ञिक बनना चाहता है। योग का अभिप्राय क्या है कि मृत्यु को विजय करना चाहता है। प्रत्येक मानव को यह कामना लगी हुई है कि मेरी मृत्यु न हो। बेटा!

अज्ञान में सदैव मृत्यु रहती है और ज्ञान में सदैव जीवन रहता है। इसलिए प्रत्येक मानव को सदैव ज्ञान की आवश्यकता रहती है और ज्ञान में लगे रहना, ज्ञान में अनुसन्धान करना, ज्ञान के लिए अपने जीवन को संलग्न कराना है। मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष आभा में नहीं ले जाऊँगा क्योंकि मेरे प्यारे! महानन्द जी भी दो शब्द उच्चारण करेंगे। आज का हमारा विचार क्या है? हे यज्ञमान! म् ब्रह्मः व्रत देवः हमारे यहाँ सौभाग्य अखण्ड बना रहना चाहिए क्योंकि यज्ञमान की विशेषता इसी में होती है। सृष्टि के प्रारम्भ में मुनिवरों! जब सृष्टि का सृजन हुआ और इस संसाररूपी यजशाला का निर्माण हुआ तो पञ्च होता बने और पञ्च होता बन करके ब्रह्मा उद्गान गाने लगा उद्गीत गाने लगा। जब ब्रह्मा बनकर परमात्मा उद्गीत गाने लगा और आत्मा उसमें यज्ञमान बन गया। मेरे प्यारे! 1 यज्ञमान बन करके याग कर रहा है। केसा प्रिय याग हो रहा है? इस मानव ब्रह्माण्ड में आत्म चेतना विद्यमान है। इसी मानव ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म स्वरूप इस चेतना का निर्माण किया इसमें जो दस प्राण बाहरी जगत् में कार्य कर रहे हैं, जो पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच क र्मेन्द्रियां बाहरी जगत् में कार्य हो रही है वह आन्तरिक जगत् में भी हैं, और जो मन की धारायें हैं, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार यह अपने सामान्य रूपों से रमण कर रही हैं। तो यह एक सूक्ष्म से ब्रह्माण्ड का निर्माण है। क्योंकि सृष्टि के सृजनकर्त्ता ने, जब संसार का निर्माण हो गया, अंडज, स्वतेज, स्थावर सर्वत्र यह योनियों का निर्माण हो गया तो मानव वरह गया। जब मानव रह गया तो मानव शरीररूपी यज्ञशाला का निर्माण किया। और यज्ञशाला का जब निर्माण किया तब यह यज्ञशाला बनी। इसमें पञ्च होता अपना कार्य कर रहे हैं। पांचों इन्द्रियां अपना उद्गीत गा रही हैं। परिणाम क्या? कि परमपिता परमात्मा चेतनत्व में रमन कर रहा है। और मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करूंगा।

आज मैं तुम्हें एक ऐसे क्षेत्र में ले जा रहा हूँ जहाँ मानव के जीवन की आभा और तरंगें बन करके, मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारिणी शबरी, ब्रह्म सुकेता यह अपनी यज्ञशाला में विद्यमान थे और यज्ञशाला की आभा में रमण करके वह विज्ञानशाला में पहुंचे। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज अपने ब्रह्मचारियों को

यह शिक्षा दे रहे थे कि यह जो समाज है यह जो अनुवाद मैंने जाना है, नाना प्रकार की चित्रावलियां जानी हैं इन नाना प्रकार की चित्रावलियों को जानना मेरे लिए बहुत अनिवार्य है। परन्तु देखो, जब तक चरित्र का निर्माण नहीं होता तब तक यह नाना चित्रावलियां व्यर्थ हो जाती हैं। भारद्वाज मुनि ने एक वाक्य और कहा था। भारद्वाज मुनि कहता है जब राष्ट्र में अज्ञान आ जाता है और वह विज्ञान के आश्रित बन जाता है तो उस राष्ट्र में अग्नि के काण्ड होने लगते हैं। वह राष्ट्र अग्नि के मुखारबिन्दु में परणित होने लगता है। भारद्वाज मुनि कहता है जब विज्ञान में आध्यात्मिकवाद और विवेक होता है उस समय वह विज्ञान राष्ट्र का निर्माण करने जगता है राष्ट्र को पवित्र बनाने लगता है। मुझे बहुत पूर्वकाल की वार्त्ता स्मरण आती हरती है। आज मैं पुत्रो! तुम्हें उस क्षेत्र में नहीं ले जाऊँगा। केवल विचार विनिमय क्या कि हमारा जीवन महान् बने और पवित्र बनता चला जाए, जिस पवित्रता के लिए प्रत्येक मानव परम्परा से अनुसन्धान करता चला आया है और कर रहा है, करता रहेगा। आज का विचार अब मैं समाप्त कर रहा हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने कुछ विचार व्यक्त करेंगे।

महर्षि महानन्द जी का प्रवचन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी कुछ वाक्य प्रकट कर रहे थे। आज उनका वाक्य चल रहा था कि मानव की इन्द्रियों में सर्वत्र धर्म और विज्ञान समाहित रहता है। परन्तु आज का जो मानव समाज है, आधुनिक काल का जो विज्ञान है वह कुछ और उच्चारण कर रहा हैं मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था कि जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वह यज्ञस्थली बन गई है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! हमारी यह जो वाणी है यह आकाश में रमण करके प्रसारित हो रही है। मैं आज गौरव के सहित उच्चारण कर रहा हूँ कि जिस भूमि को किसी काल में हम शमशान भूमि के रूप में दृष्टिपात कर रहे थे वही भूमि आज यज्ञस्थली बन रही है, वेद ध्वनि का प्रसार हो रहा है और उस ध्वनि को मानव श्रवण कर रहा है। वायुमण्डल पवित्र हो रहा है, वायुमण्डल में परमाणुओं की गतियां हो रही हैं। यह मेरा केसा दुर्भाग्य है? यह मेरी केसी अहोभाग्यता है। जहाँ

मैं दुर्भाग्यता स्वीकार करता हूँ वहाँ मेरा अहोभाग्य भी है। जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों से मानव का मिलन होता रहता है। हे यज्ञमान! मेरे जीवन की सदैव यह कल्पना रहती है, मैं यह कामना करता रहता हूँ कि कल्पना ही नहीं कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, तेरे जीवन में एक महत्ता होनी चाहिए, क्योंकि यज्ञशाला में यज्ञमान ही एक ऐसा होता है जिसकी वाणी को होतागण शोधन करते हैं। उसकी वाणी का शोधन होता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव समय समय पर प्रकट कराते रहते हैं, वाक्यों का विश्लेषण करते रहते हैं। यज्ञमान का रथ बन करके द्यो लोक को जाता है। पुरातनकाल में भारद्वाज गोत्र में यह शंका उत्पन्न हुई यज्ञमानम् ब्रह्मः कृतो देवाः पुत्राणि गथम् ब्रह्मणाः वृत्ति देवः भारद्वाज गोत्र में श्वेत्तान कण्टक ऋषि हुए और श्वेत्तान कण्टक ऋषि महाराज के कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुआ। जब सन्तान न हुई तो पति पत्नी दोनों यह चिन्तन करने लगे। पत्नी कहती है कि भगवन्! सन्तान का अभाव होता जा रहा है। परन्तु विचारा गया। वेदमन्त्रों के ऊपर अनुसन्धान किया गया तो वेद में मन्त्र आए। मन्त्र के आने से दोनों पति पत्नी ने गृह को त्याग दिया और भयंकर वनों में जाकर याग करने लगे, और जब याग कर्म करने लगे तो संकल्प के सहित करने लगे। सन्तान ब्रह्मा संकल्पो जगत् प्रवाहः क्योंकि संकल्प में यह सारा जगत् है। संकल्प में यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। संकल्प में सूर्य सूर्य कहलाता। परन्तु यह संकल्प बन्धन का कारण भी है। यही संकल्प मानव को मुक्ति को ले जाता है। परन्तु संकल्प तप से मानव इस निम्न श्रेणी को न रह करके और वह प्रभु को अर्पित हो करके यह कहते थे, वेद में मन्त्र आता है कि यज्ञ कर्म करने से पुत्र उत्पन्न होते हैं तो उसके ऊपर अनुसन्धान होने लगा। अनुसन्धान होने के पश्चात् मुझे स्मरण है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो यह वर्णन कराया परन्तु मुझे यह स्मरण है कि पुत्र का जन्म बारह वर्षाणि गतम् ब्रह्माणि कृतोः मानों त्रि वर्षों का अभ्यास करने से, यज्ञ करने से यज्ञोमय सन्तान का जन्म होता है। परिणाम क्या? कि आज मैं तुम्हें ऊर्ध्वा में ले जाना नहीं चाहता हूँ। मैं इस सम्बन्ध में उच्चारण करने नहीं आया हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराने

के लिए आया हूँ किस प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ परंपरा से रहा है।

विज्ञानशाला में देखो, ऋषि विद्यमान है वह उड़ान उड़ रहा है कि यह परमाणुवाद की उत्पत्ति कैसे हुई! वह उच्चारण कर रहा है वेद मन्त्रों के द्वारा कि संकल्प में मानव की उत्पत्ति कैसे हुई? जब संसार का जन्म हुआ, मानव जाति उत्पन्न हुई। इस मानव का निर्माण और मानव की उत्पत्ति कैसे हुई? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो कई काल में प्रकट कराया। उन्होंने निर्णय दिया कि वह जो संकल्पमय शक्ति है यह क्या है? जो आत्माएं सृष्टि के सृजन होने पर मोक्ष के निकट होती हैं वह ज्ञान और विज्ञान से कटिबद्ध होती हैं और ज्ञान और विज्ञान से जो कटिबद्ध आत्माएं होती हैं।

वह संकल्प करती हैं और संकल्प करके जो स्वाभाविक परमाणु जागरूक होते हैं जैसे परमाणुओं का जन्म होता है एक महातत्व है और जब उसका विभाजन हुआ और विभाजन होने से उसकी प्रतिभा में गति आने लगी, गति के आने के पश्चात् जब यह पञ्चभौतिक परमाणु अपने अपने स्वाभाव में गति करने लगे इसी प्रकार वह जो संकल्पमय शक्ति थी, जिन आत्माओं की यह इच्छा थी कि मैं मोक्ष को जाना चाहता हूँ मानव के शरीर में प्रवेश करके उन्हीं आत्माओं ने संकल्प किया। संकल्प मात्र से पूर्व संकल्प के आधार पर बिना माता पिता के संकल्प से वह परमाणु अपनी अपनी आभा में परणित हो गए और मानव का प्रादुर्भाव हो गया मानव समाज उत्पन्न हो गया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में यह वर्णन कराया। ऋषि मुनियों की संकल्प की शक्ति जो मोक्ष के निकट आत्मा होती हैं, मोक्ष उनका होता नहीं, कुछ मोक्ष के और निकट होती हैं परन्तु कुछ और त्रि प्रकार के होते हैं वह पूर्व संकल्प के आधार पर परमाणुओं को अपने में धारण कर लेती हैं और वह कैसे धारण करती हैं? यह बड़ा विचित्र वाक्य है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में प्रकट कराया था कि यह कैसे हो सकता है। जैसे जीवन मुक्ति आत्माएं होती हैं, मोक्ष नहीं, जीवन मुक्त आत्माएं ऐसी होती हैं कि यहाँ दृष्टिपात हो रहा था। और वहाँ से ओझल हो गया। मैंने भी सर्वत्रता को प्राप्त किया कि अभी अभी दृष्टिपात हो रहा है। अभी अभी नहीं हो रहा। संकल्प से दृष्टिपात और संकल्प से ओझल हो जाता है इस प्रकार वह कर्म बन गया।

कर्म बनकर के यह संसार की उत्पत्ति हो करके संसार अपनी गलियों में आने लगा, सृष्टियां उत्पन्न होने लगीं।
परन्तु मैं इस विचार में जाना नहीं चाहता हूँ। यह विचार तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का है, महान व्यक्तियों का है। मैं अपनी वार्त्ता, पूज्यपाद गुरुदेव के समीप अपनी भिन्नता (अलग से) प्रकट करने लगूं तो यह मेरे लिए धृष्टता हो जाएगी। परन्तु केवल वाक्य यह उच्चारण करना है, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह निर्णय कराना है आधुनिक काल का विज्ञान। पुरातन काल का विज्ञान यह कहता है कि वैज्ञानिकों का आहार और व्यवहार दोनों पवित्र होने चाहिए। परन्तु आधुनिक काल का विज्ञान यह कहता है वह किसी भी प्रकार की सर्जरी करने वाला हैं वह किसी भी प्रकार के रूपों में अनुसन्धान करने वाला है। आहार और व्यवहार दोनों को विचार में नहीं ला रहा है इसीलिए अज्ञान और त्रासता मुझे दृष्टिपात होती है।
मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को पूर्व काल में अपने वाक्यों को प्रकट कराते हुए कहा था, निर्णय देते हुए कहा था कि संकल्प में जगत् विद्यमान है और यह विज्ञानशाला में विज्ञान का निर्माण कर रहा है। आधुनिक काल का निर्माण कुछ ही समय हुआ परन्तु एक यन्त्र कहते हैं आधुनिक के वैज्ञानिक कि मंगलम्ब्रही कि चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में एक यन्त्रशाला का निर्माण करने के लिए तत्पर हैं। उसका निर्माण भी हो गया। परन्तु उस में वैज्ञानिक विद्यमान हो करके अपनी विज्ञानशालाएं इसके नीचे अनुसन्धान हो रहा है। यह वाक्य यथार्थ है। ऐसी विज्ञानशालाओं का निर्माण होना चाहिए। परन्तु यह अपवाद में आ जाती है। वह यन्त्र चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य में स्थिर हो जाए और स्थिर होकर के वह यन्त्र वहाँ से गति कर जाए यह असम्भव वाक्य है। यह असम्भव है। यह भी असम्भव है कि वह पृथ्वी पर आकर प्राणियों को नष्ट कर दे। परन्तु वैज्ञानिक अपनी बहु सी वार्त्ता मिथ्या उच्चारण कर रहे हैं और वह मिथ्या क्या है कि वहाँ से वह यन्त्र पृथ्वी के आँगन को चल दिया है। प्रायः ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है। राजा रावण के विधाता कुम्भकरण ने और ब्रह्मचारी सुकेता ने ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु और कवन्धि तीन ब्रह्मचारी थे जिन्होंने भारद्वाज की निर्माशाला में यन्त्र का निर्माण किया था

और वह यन्त्र भारद्वाज की निर्माणशाला से उन्होंने पृथ्वी चन्द्रमा के मध्य में स्थिर किया और अपने यन्त्र से उड़ान उड़ करके अनुसन्धानशाला में जाते और दोनों मण्डलों का परीक्षण करते रहे हैं। परन्तु वह जो परीक्षण हो रहा था नीचे उनकी तरंगें आ रही थीं उनको दृष्टिपात किया जा रहा था। यह भारद्वाज की विज्ञानशाला की वार्त्ताएं हैं। परन्तु राजा रावण के यहाँ बहुत सी विज्ञानशालाएं इस प्रकार की थीं। आज भी हो सकती हैं। जो पुरातनकाल में थीं वह वर्तमान में भी हो सकती हैं। परन्तु आधुनिक काल में वह कर्म नहीं किया। संसार में अन्न का दोष होने से, आहार और व्यवहार पवित्र न होने से वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में दूरिता और निराशा के अंकुर उत्पन्न हो करके प्रजा को त्रास देना शुरू कर दिया। इनको यह त्रास क्यों देते हैं कि हमने यह जाना है। अरे, तुमने यह जाना है यह यह ऐसा कोई वाक्य नहीं है।

यह नवीन वाक्य नहीं है परन्तु इसके जानने के साथ तुम्हारी मानवता भी पवित्र होनी चाहिए। तुम्हारी मानवता महान होनी चाहिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी प्रकट कर रहे थे। रहा यह वाक्य, भारद्वाज की विज्ञानशाला के वैज्ञानिक यहाँ से उड़ान उड़ाते हैं लोक लोकान्तरों की यात्रा कर रहे हैं। एक लोक में नहीं, 72 72 लोकों का भ्रमण करके इस पृथ्वी पर अपना यातायात बना रहे हैं। एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह निर्णय कराया कि सतोयुग के काल में महर्षि मारमण्डेय ऋषि महाराज, महर्षि क्रतिका, नेत्रकेतु यह तीनों वैज्ञानिक अपने यन्त्र में विद्यमान हो करके और यह पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्य में जब यह स्थिर हो गये। स्थिर होने से वह यन्त्र उन्हें दृष्टिपात आ रहा था। माता पार्वती और शिव दोनों की दिव्य दृष्टि थी और वह दिव्य दृष्टि से यन्त्र को दृष्टिपात कर रहे थे। हिमालय की कन्दराओं में विद्यमान हो करके पान कर रहे थे। माता पार्वती ने अपने पति से कहा भगवन! यह क्या है? तो जब वह अपने यान में विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष में पहुंचे, दृष्टिपात किया। वह तो महर्षि मार्कण्डेय मुनि महाराज का यन्त्र था। जब यह दृष्टिपात किया वहाँ से वार्त्ता प्रकट कर पृथ्वी मण्डल पर आए परिणाम मेरे इन वाक्यों को उच्चारण करने का यह है, मैं यह कहा करता हूँ, हे भोले प्राणियो, जो आज है वह कल नहीं था यह कैसे हो सकता है? रहा

अणुवाद परमाणुवाद का प्रश्न, परन्तु राजा रावण के यहाँ इस प्रकार के यन्त्र विद्यमान थे जिन यन्त्रों से देखो, सेना संग्राम कर रही हैं और कौन इन्द्रजीत, रावण का पुत्र मेघनाथ वह यन्त्र प्रहार कर रहा है। नीचे जल ही जल हो गया और ऊर्ध्वा में अग्नि की वृष्टि हो रहीह ै सेना अग्नि में भस्म होने लगी। भगवान राम को भारद्वाज मुनि ने एक वरुणास्त्र अस्त्र दिया था। माता अन्नाणि (अनुसूया) ने भी एक यन्त्र माता सीता को प्रदान किया था। उस यन्त्र का जब उन्होंने प्रहार किया तो अग्नि समाप्त हो गई। आज का विज्ञान अग्नि प्रदीप्त कर सकता है परन्तु उसको शान्त नहीं कर सकता। आज के विज्ञान ने इतना जाना है परन्तु मुझे वह काल स्मरण है जब महाभारत का संग्राम हुआ, उसमें भगवान कृष्ण ने एक सोमकृति नामक रेखा को स्थिर किया। उन्होंने जितने क्षेत्र में संग्राम होने वाला था, अणु शक्ति का, परमाणु शक्ति का संग्राम होने वाला था, परन्तु जब संग्राम हुआ, परमाणु जो शक्ति थी उस रेखा से बाहरीय जगत् में नहीं जाती थी। परन्तु आधनिक काल ऐसा है द्वितीय राष्ट्र अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान है और वह यन्त्रों का प्रहार कर रहा है तो राष्ट्र भस्म हो सकता है परन्तु उसको शान्त नहीं कर सकता। आज मैं प्रकट कर रहा हूँ, उच्चारण कर रहा हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव से, इस प्रकार का जो विज्ञान है यह विज्ञान निर्माणित हो गया हैं और इस विज्ञान में कुछ काल में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। ऐसा नहीं कि अग्निकांड नहीं होंगे। जब निर्माण हुआ है परन्तु इनका प्रहार भी होना अनिवार्य है।

यन्त्राणि गच्छताम् देवम् मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि यह विज्ञान किस आँगन को जा रहा है? तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मौन हो जाते हैं, कोई वाक्य उच्चारण नहीं करते। परन्तु विचारना केवल यह है कि क्या ऐसा विज्ञान होना चाहिए? विज्ञान के हम विरोधी नहीं हैं। परन्तु विधान के साथ में चरित्र होना चाहिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक समय वर्णन कराया कि जिस समय राजा रावण के राष्ट्र में अग्नि यन्त्रों का निर्माण हो गया, जलास्त्रों का निर्माण हो गया, चन्द्रमा में यातायात बन गया, मंगल में यातायात बन गया, सर्वत्रता में यातायात बन गया तो कुकुट मुनि ने यह कहा था रावण! तुम्हारा राष्ट्र कोई प्रिय नहीं लग रहा है। यहाँ यन्त्रों का निर्माण है

परन्तु चरित्र का निर्माण नहीं। जब तक चरित्र, मानवता नहीं आ पाती वह विधान तुम्हारा नाशक बना रहेगा, यह विज्ञान मानव को नष्ट करता रहेगा। परन्तु पुरातन के काल में भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में जहाँ परमाणु शक्ति का अनुसन्धान किया जाता था वहाँ उसी यज्ञशाला में, उसी विज्ञानशाला में आध्यात्मिकवाद के परमाणुओं को भी जाना जाता था। आध्यात्मिकवादी अहिंसा परमोधर्मो कैसे बनता है? छात्र कैसे ऊँचा बनता है? आज छात्रों के क्षेत्र में जब मैं प्रवेश करता हूँ तो मानवता की आभा समाप्त होती जा रही है। तो यह सर्वत्र दोषी कौन है? इसका दोष विज्ञान के ऊपर है क्योंकि विज्ञान में आहार और व्यवहार की प्रवृत्ति रही है। विज्ञान यह निर्णय नहीं दे सकता कि अमुक पदार्थ के पान करने से शरीर में क्या क्या वस्तु उत्पन्न होती है। अमुक अन्न के उत्पन्न करने से क्या क्या वस्तु उत्पन्न होती है। अमुक अन्य के उत्पन्न करने से क्या क्या प्राप्त की जा सकती है? परन्तु उस समय वैज्ञानिकां का विचार अपंग बना रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मुझे तो ऐसा दृष्टिपात आ रहा है यह विज्ञान अपंग है। जब तक विद्यालयों में आहार और व्यवहार की शिक्षा नहीं होगी तब तक यह विद्यालय कदापि भी ऊँचे नहीं बन सकते, यह शिक्षा प्रणाली कभी ऊँची नहीं बन सकती। आज मैं विशेष चर्चाओं में नहीं पहुंचूंगा क्योंकि मुझे पूज्यपाद गुरुदेव का संकेत प्राप्त मुझे प्राप्त हो जाए, तो वह कैसे ऊँचा हो सकता है? आज मेरे वाक्य अपवाद में न रह जाएं। पूज्यपाद गुरुदेव के वाक्य अपवाद में न रह जाएं। पूज्यपाद गुरुदेव के वाक्य अपवाद में न रह जाएं यह कैसे हो सकता है? जब तक स्वतन्त्र रूप से विज्ञान अपना निर्णय नहीं देता, विज्ञान आरोपों महारोपों से ऊँचा नहीं होता, इन्द्रियों के ऊपर अनुशासन नहीं होता, धर्म को नहीं विचारा जाएगा तब तक यह समाज ऊँचा नहीं बनेगा। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट कराते हुए कहा था कि सुरा और सुन्दरी का प्रसार होता जा रहा है। जहाँ मेरी माता वीरांगना बन करके विदुषी बन करके राष्ट्र को यह कहा करती थी कि हे राजन! तुझे ऊँचा बनना ही होगा। विदुषी कहती थी आज वह मेरी पुत्रियां माता कौशल्या नहीं रहीं। राम को जन्म देने वाली माता कौशल्या बन जाएं तो राम का जन्म हो सकता है, माता देवकी कारागार

में ऐसे महान पुत्र को जन्म दे सकती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रकट करा रहे थे जब माता देवकी के गर्भ में पुनीत आत्मा का प्रवेश हो गया जब पञ्च माह हुआ तो नेत्रों में एक लालिमा आ गई। नेत्रों में जब लालिमा आई तो पति देव से कहती हैं प्रभु! यह लालिमा क्यों बन गई है? उन्होंने कहा कि ऐसी सन्तान का जन्म होना है जो हमारे कारागार से मुक्त करा सकेगा। यह कौन कह रहा है? यह वासुदेव कह रहा है क्योंकि वह वैज्ञानिक हैं। वह अन्तरात्मा से वार्त्ता प्रकट करते थे। परन्तु राष्ट्र की लोलुपता ने उन्हें कारागार में स्थिर कर दिया था क्योंकि लोलुपता कंस को नहीं होती तो कारागार में नहीं जा सकते थे। जब लालिमा बनी छठा माह उत्पन्न हुआ वह देवकी अपने ही मस्तिष्क से ज्ञान की वार्त्ता प्रकट करने लगी। उन्होंने कहा प्रभु! यह मुझे क्या हो गया है? आज मैं मन्त्रों को उच्चारण कर रही हूँ और मेरा ज्ञान उपजने लगा है। उन्होंने कहा देवी! वह जो पुण्य आत्मा है जो अन्तरिक्ष से आई है, जो गर्भ में प्रवेश हो गई है उसकी जो तरंगें हैं, उसकी जो ज्ञाना है, उसका तुम्हारे मस्तिष्क से समन्वय होने जा रहा है। अब यह महान विज्ञान कहाँ आ गया है, विज्ञान कौन जानता है? विज्ञान को इन वाक्यों को विचारना चाहिए परन्तु देखो, शब्द जब महा लग्नाकृत्य हो गया उस समय वह लालिमा समाप्त हो गई और ऊर्ध्व में ब्रह्मरन्ध्र से ले करके और त्रिवेणी के स्थान तक नारी की आभा में रसों का स्वादन होने लगा। उन्होंने कहा प्रभु! यह क्या हुआ? वासुदेव कहते हैं, हे देवी! तेरे गर्भस्थल से योगी का जन्म होगा। परन्तु देखो, यह आभा बना रहे हैं माता पिता तो वही कहलाते हैं। उनकी सन्तानें संसार में सूर्य और पृथ्वी की तुलना कर सकती हैं। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रकट कर रहा था कि संसार को ऊँचा बनाना है तो वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य है कि रूढ़ियों से पृथक हो जाएं। राष्ट्रवादियों का कर्त्तव्य है। कि रूढ़ियों से पृथक हो जाएं। अरे, यह दूसरों के मांस के आहार करने से तुम्हारी उदर की पूर्ति नहीं होगी। इससे तुम्हारे जीवन में रुग्ण उत्पन्न हो जाएंगे और तुम्हारे यहाँ समाज की आह बलवती होती चली जाएगी। परन्तु यदि तुम्हारा आहार व्यवहार पवित्र बनेगा, ज्ञान की उत्पत्ति होगी तो ज्ञान के द्वारा तुम सन्तान को सुयोग्य बना सकते हो। आज सन्तानें सुयोग्य नहीं रही हैं। उसके मूल में

क्या है? आहार और व्यवहार दोनों का दूषितपन है। आहार और व्यवहार दोनों दूषित हो गए। माता कहती है पुत्र मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। हे माता! तू कैसे आज्ञा का पालन कराना चाहती है? जब मेरे गर्भ स्थल में शिशु था तो उसे दूषित नहीं करना था। जब वह तेरे गर्भस्थल में दूषित हो गया आज तू कहती है वह तेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। आज्ञा का पालन वह पुत्र करता है जब माता अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा का पालन करती है। तो इसलिए मैं आज यह उच्चारण करने जा रहा हूँ। माता कहती हैं सन्तानाम् ब्रह्मणेः आहारों से दूषित हो गया। माता तूने अपने आहारों से उस बालक का निर्माण किया था। इसमें किसी का दोषारोपण नहीं। इसी प्रकार वैज्ञानिकों का यह दोषारोपण है, यह त्रसता जो प्रजा को दी जाती है यह अन्न का सदैव दोष है। परन्तु प्रकृति कुछ कह रही है। और वैज्ञानिक कुछ कह रहे हैं।

मैं उच्चारण कर रहा था कि आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का एक यन्त्र चलता है और वह उच्चारण/घोषणा करता है कि अमुक स्थान में विज्ञान का यन्त्र का प्रहार होगा और वहाँ के प्राणी नष्ट हो जाएंगे। अरे, जिन वैज्ञानिकों को यह प्रतीति नहीं है कि वह कितनी गति से गति कर रहाह ै और वह कौन से दिवस को कहाँ जाएगा कौन सी स्थली को पहुंचेगा? अरे, यह क्या विज्ञान है इस संसार का? यह कोई विज्ञान नहीं कहा जाता मेरी ददृष्टि में। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो यह कहा था कि वह जो यन्त्र है वह यन्त्र नहीं, वह तो सागर की तरंगों में परणित हो जाएगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट कराया जब मैंने प्रश्न किया। परन्तु आज मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ मेरा दृष्टिकोण यह कि वह कोई यन्त्र ही नहीं था और इन वैज्ञानिकों ने संसार को दृष्टि में लाने के लिए यन्त्र एक अपवाद में बन गया। मैं इसलिए यह उच्चारण कर रहा हूँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी प्रकट कराया मेरा भी यह विचार है विज्ञान होना चाहिए, वैज्ञानिक की अपनी यन्त्रशाला में विज्ञानशाला में यन्त्रों का निर्माण होना चाहिए। मैं इसका विरोधी नहीं राजा यन्त्रों में विद्यमान होकर के पृथ्वी लोक का ही नहीं, मंगल लोकों की यात्रा करने वाला हो और बुद्धि की यात्रा करने वाला हो। चन्द्र लोकों की यात्रा करने वाला हो। यहाँ ऐसे विष्णु राजा हुए हैं जो अपने एक अपने

गरुणा रूपी यन्त्र पर विद्यमान हो करके वह यहाँ से उड़ान उड़ते हैं, मंगल और चन्द्रमा की उड़ान उड़ कर पृथ्वी पर आ जाते थे। इस प्रकार के राजा हुए हैं। यान होने चाहिए, विज्ञान होना चाहिए। परन्तु विज्ञान एक महान बन कर रहना चाहिए और इस विज्ञान के साथ मैं आध्यात्मिकवाद समन्वय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट कराया था। मुझे समय मिलेगा तो मैं भी इस विचार को दे सकता हूँ। परन्तु आज का विचार क्या? यह जो नाना प्रकार की रूढ़ियां हैं यह रूढ़ि ही संसार को ऊँचा नहीं बनने देती क्योंकि धर्म की जो रूढ़ि होती है यह धर्म का विनाश कर देती है और यह विज्ञान को अपंग बना देती हैं। इसलिए यह धारा होनी चाहिए। आज का विचार मैं अपना विचार कर रहा हूँ। विचार विनिमय क्या है कि मानवता और विज्ञान का दोनों का समन्वय हो और यदि मानवता और विज्ञान का समन्वय नहीं है तो विलान कोई विधान नहीं। अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! महानन्द जी ने बहुत ऊर्ध्व में एक वाक्य कहा है। विज्ञान का सूक्ष्मपन इन आभाओं को प्रकट कर रहे थे। परन्तु आज का हमारा विचार केवल यह कि अपने विचारों में महान बनाने की आभा हमारे में होनी चाहिए। हमारा जीवन एक जीवन होना चाहिए। इस जीवन को अपनाने के पश्चात् इस के ऊपर विज्ञान ज्ञान और मानवीय दर्शन होना चाहिए। परन्तु आज का केवल इतना विचार जो कि मेरे पुत्र ने वर्णन किया कि वह विज्ञान का यन्त्र नहीं था, न होगा कोई वाक्य नहीं। होगा तब भी कोई वाक्य नहीं परन्तु यह वैज्ञानिकों को विडम्बना विज्ञान में वास्तव में रूढ़ि समाप्त कर देनी चाहिए। मानवीय जो रूढ़ि है यह विधान में आ करके दूषित बना देती है क्योंकि दूसरों के मांस को भक्षण करना जैसे मेरे पुत्र ने कहा है मांस को भक्षण करना यह मानव का आहार नहीं है। क्योंकि उसमें जो आह होती है, दाह होती है। एक विडम्बना होती है वह विडम्बना मानव के अन्तःकरण को निगल जाती है। वह आहार को दूषित हो गया है, वह दूसरे के गर्भ को पान कर रहाह ै। वह उसकी विडम्बना बन करके उसके मानवीय जीवन की हताशता का मूल कारण बन जाता है। तो इसलिए यह नहीं होना चाहिए। यह वैज्ञानिकां को गुण और अवगुण दोनों ही गुणावादन,

अगणुवादन दोनों का विश्लेषण करना समाज के समीप लाना, राष्ट्र को यह देना, राजाओं को प्रजा में प्रचलित करना, यह उनका कर्त्तव्य है। क्योंकि राष्ट्र का जो निर्माण होता है वह समाज को ऊँचा बनाने के लिए होता है समाज को कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए होता है और जो राजा समाज को महान और कर्त्तव्यवादी नहीं बना सकता वह कोई राष्ट्र नहीं होता, न कोई निर्वाचन होता है। चलो कोई वाक्य नहीं। यह वार्त्ता कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। आज के विचार क्या कि मेरे पुत्र ने बहुत सी वार्त्ताएं पुरातन काल की ज्ञान और विज्ञान की वार्त्ताएं प्रकट कीं। नाना वाक्य इन्होंने प्रकट किए। आज का वाक् अब यह समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। लाक्षागृह, बरनावा